केशव-ग्रंथावली

खंड २

(रामचंद्रचंद्रिका, छंदमाला और शिखनख)

संपादक

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र

हिंदी-विभाग, काशी विश्वविद्यालय
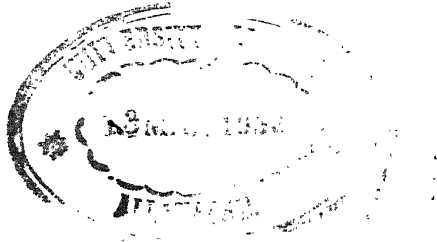
१९५५

हिंदुस्तानी एकेडेमी

उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

हिंदुस्तानी एकेडेमी की एक योजना रही है कि हिंदी के प्रमुख कवियों की समस्त रचनाओं के ऐसे संस्करण प्रकाशित किए जाएँ जिनके पाठ यथासंभव प्रामाणिक तथा सुसंपादित हों। इस योजना के अंतर्गत एकेडेमी से 'जायसी-ग्रंथावली' तथा 'तुलसी-ग्रंथावली' (खंड १) का प्रकाशन हो चुका है अब 'केशव-ग्रंथावली' इस क्रम की नई कड़ी के रूप में पाठकों के समक्ष है।

'केशव-ग्रंथावली' का संपादन अधिकारी विद्वान् श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अनेक नई और पुरानी छपी तथा हस्तलिखित पोथियों के आधार पर किया है, जिसमें 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'रामचंद्रचंद्रिका', 'छंदमाला', 'शिखनख', 'रतनबावनी', 'वीरसिंहदेवचरित', 'जहाँगीरजसचंद्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' ये नौ रचनाएँ सम्मिलित हैं। पूरी ग्रंथावली के तीन खंडों में प्रकाशन का आयोजन है। प्रथम खंड में केशव की दो रचनाएँ 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' प्रस्तुत की जा चुकी हैं। इस द्वितीय खंड में उनकी तीन रचनाएँ 'रामचंद्रचंद्रिका', 'छंदमाला' और 'शिखनख' प्रस्तुत हैं। 'छंदमाला' और 'शिखनख' दो ऐसी रचनाएँ हैं जिनका अभीतक हिंदी-साहित्यजगत् को कोई ज्ञान नहीं था।

आचार्य और कवि केशवदास हिंदी की विभूति हैं। दुःख है कि अभी तक इनके ग्रंथों का सुसंपादित संस्करण प्रकाश में नहीं आ सका था। आशा है प्रस्तुत ग्रंथावली के संपूर्ण होने पर हिंदी के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति होगी।

हिंदुस्तानी एकेडेमी,
उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद
अप्रैल, १९५५

धीरेंद्र वर्मा
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

ग्रंथ-सूची

संकेत

रामचंद्रचंद्रिका

दीन० १—'दीन' (लाला भगवानदीन) के संग्रह का प्राचीन हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८३४ ।
दीन० २—दीनजी के संग्रह का दूसरा हस्तलेख, लिपिकाल अज्ञात ।
दीन०—दीन० १, दीन० २ ।
प्रताप०—प्रतापगढ़ से प्राप्त हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८६६ ।
काशि०—काशिराज के सरस्वतीभंडार का हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८८२ ।
सर०—सरस्वतीभंडार का दूसरा हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८८८ ।
प्रकाशिका—प्रकाशिका टीका, श्रीजानकीप्रसादजी की, सं० १८७२ में लिखित ।
कौमुदी—केशव-कौमुदी टीका, लाला भगवानदीनजी कृत ।
अन्यत्र—अन्य संग्रहादि के हस्तलेख ।

छंदमाला

[श्री वर्द्धमान जैन ग्रंथालय का हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८३६]
चंद्रिका—रामचंद्रचंद्रिका ।

शिखनख

बाल०—बालकृष्णदासजी (ग्रंथस्वामी) का हस्तलेख, सं० १७२४ ।
सुधा०—सुधासर संग्रह, नवीन कवि द्वारा संगृहीत ।
अभय०—अभय जैन भांडार (बीकानेर) का हस्तलेख, लिपिकाल सं० १७५१ ।
वही—पूर्वगामी संकेत ।
ष—ख ।
+—हस्तलेख में संशोधित पाठ ।
÷—हस्तलेख में मूल पाठ ।

रामचंद्रचंद्रिका

१

(दंडक)

बालक मृनालनि ज्यौं तोरि डारै सब काल कठिन कराल त्यौं अकाल दीह दुख कौं।
बिपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम पंक ज्यौं पताल पेलि पठवै कलुष कौं।
दूरि कै कलंक-अंक भव-सीस-ससि सम राखत है 'केसोदास' दास के बपुष कौं।
साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तोरै दसमुख मुख जोवैं गजमुख-मुख कौं॥१॥
बानी जगरानी की उदारता बखानी जाइ ऐसी मति उदित उदार कौन की भई।
देवता प्रसिद्ध सिद्ध रिषिराज तपबृद्ध कहि कहि हारे सब कहि न काहू लई।
भावी भूत बर्तमान जगत बखानत है 'केसोदास' क्यौं हू ना बखानी काहू पै गई।
पति बनैं चारमुख पूत बनैं पाँचमुख नाती बनैं षटमुख तदपि नई नई॥२॥
पूरन पुरान अरु पुरुष पुरान परिपूरन बतावैं न बतावैं और उक्ति कौं।
दरसन देत जिन्हैं दरसन समुझैं न नेति नेति कहैं बेद छाँडि भेद-जुक्ति कौं।
जानि यह 'केसोदास' अनुदिन राम राम रटत रहत न डरत पुनरुक्ति कौं।
रूप देहि अनिमाहि गुन देहि गरिमाहि नाम देहि महिमाहि भक्ति देहि मुक्ति कौं॥३॥

(सुगीत)

सनाढ्य जाति गुनाढ्य है जगसिद्ध सुद्ध सुभाउ।
कृस्नदत्त प्रसिद्ध हैं जहँ मिश्र पंडितराउ।
गनेस सो सुत पाइयो बुध कासिनाथ अगाध।
असेष सास्त्र बिचारियो जिन जानियो मत साधु॥४॥

(दोहा)

उपज्यो तिनके मंदमति सुत कबि 'केसवदास'।
रामचंद्र की चंद्रिका भाषा करी प्रकास॥५॥
सोरह सै अट्ठावना कातिक सुदि बुधवार।
रामचंद्र की चंद्रिका तब लीनो अवतार॥६॥
बालमीकि मुनि स्वप्न मैं दीनो दरसन चारु।
'केसव' यह तिनसौं कह्यो क्यौं पाऊँ सुखसारु॥७॥

---

[१] त्यौं—वै (काशि०)। राखत—देखत (दीन० २)। मुख—जगु (काशि०)। [२] उदित—केसव (दीन० २); कहौ धौं (कौमुदी)। काहू०—काहू पै गई (दीन० २); केहूँ लई (कौमुदी)। [३] भेद—ज्ञान (कौमुदी)। रटत—रटत (प्रकाशिका, कौमुदी); कहत (दीन० २)। [४] जहँ—महि (प्रकाशिका, कौमुदी)। [५] तिनके—तेहि कुल (प्रकाशिका, कौमुदी)। सुत-सठ (कौमुदी)। करी-कियौ (दीन० १)। [६] लीनो—कीनो (दीन० १)।

मुनि—(श्री)—सिद्धि । रिद्धि ॥८॥
(सार)—और नाम । कौन काम ॥९॥
राम नाम । सत्य धाम ॥१०॥
'केसव'—(रमण)—दुख क्यों टरिहै ।
मुनि—हरि जू हरिहै ॥११॥
मुनि—(तरणिजा) बरनिबो बरन सो । जगत को सरन सो ॥१२॥
(प्रिया)—सुखकंद हैं रघुनंदजू । जग यों कहै जगबंद जू ॥१३॥
(सोमराजी)—गुनौ एक रूपी, सुनौ बेद गावैं । महादेव जाकों,सदा चित्त लावैं ॥१४॥
(कुमारललिता)—बिरंचि गुन देखै । गिरा गुननि लेखै ।
अनंत मुख गावै । बिसेषहि न पावै ॥१५॥
मुनि (नगस्वरूपिणी)—भलो बुरो न तू गुनै । बृथा कथा कहै सुनै ।
न रामदेव गाइहै । न देवलोक पाइहै ॥१६॥

(षट्पद)

बोलि न बोल्यो बोल दयो फिर ताहि न दीनो ।
मारि न मार्‍यो सत्रु क्रोध मन बृथा न कीनो ।
जुरि न मुरे संग्राम लोक की लीक न लोपी ।
दान सत्य सनमान सुजस दिसि बिदिसनि ओपी ।
मन लोभ मोह मद काम बस भयो न 'केसवदास' भनि ।
(सोइ) परब्रह्म श्रीराम हैं अवतारी अवतारमनि ॥१७॥

(दोहा)

मुनिपति यह उपदेस दै जबहीं भए अदृस्ट ।
'केसवदास' तहीं कर्‍यो रामचंद्रजू इस्ट ॥१८॥

(गाहा)

रामचंद्र पदपद्मं वृंदारकवृंदाभिवंदनीयम् ।
केशवमतिभूतनयालोचनं चंचरीकायते ॥१९॥

(चतुष्पदी)

जिनको जसहंसा, जगतप्रसंसा, मुनिजनमानसरंता ।
लोचन-अनुरूपनि स्यामसरूपनि अंजनअंजित संता ।
कालत्रयदरसी निर्गुन-परसी होत बिलंब न लागै ।
तिनके गुन कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै ॥२०॥

(दोहा)

जागति जाकी ज्योति जग एकरूप स्वच्छंद ।
रामचंद्र की चंद्रिका बरनत हौं बहु छंद ॥२१॥

---

[८] यह छंद कई हस्तलेखों में नहीं है । [१०] इसके अनंतर 'प्रताप०' में यह छंद अधिक है—(मधु) हरिहरु-चित धरु । [१२] बरन-धरन (दीन० २) । [१७] ग्राम-रन माह (दीन० १) । [२०] जन-मन (प्रताप०)। पुरातन-पुरातम (दीन०) ।

(रोला)

सुभ सूरज-कुल-कलस नृपति दसरथ भए भूपति।
तिनके सुत सुनि चारि चतुर चितचारु चारुमति।
रामचंद्र भुवचंद्र भरत भारत-भुव-भूषन।
लछिमन अरु सत्रुघ्न दीह दानव-दल-दूषन ॥२२॥

(घत्ता)

सरजू-सरिता-तट नगर बसै वर, अवध नाम जसधाम धर।
अघओघबिनासी सब पुरबासी, अमरलोक मानहुँ नगर ॥२३॥

(षट्पद)

गाधिराज को पुत्र साधि सब सत्रु मित्र बल।
दान-कृपान-बिधान बस्य कीनो भुवमंडल।
कै मन अपने हाथ जीति जग इंद्रियगन अति।
तपबल याही देह भए क्षत्रिय तैं रिषिपति।
तिहि पुर प्रसिद्ध 'केसव' सुमति काल अतीतागतति गुनि।
तहँ अद्भुत गति पगु धारियो बिस्वामित्र पवित्र मुनि ॥२४॥

(पद्धटिका)

मुनि आए सरजू-सरित-तीर। तहँ देखे उज्जल अमल नीर।
नव निरखि निरखि दुति गति गभीर। कुछ बरनन लागे सुमति धीर ॥२५॥
अति निपट कुटिल गति जदपि आप। बहु देति सुद्ध गति छुवत आप।
कछु आपुन अध अध गति चलंति। फल पतितन कौं ऊरध फलंति ॥२६॥
मदमत्त जदपि मातंग संग। अति तदपि पतितपावन तरंग।
बहु न्हाइ न्हाइ जिहि जल सनेह। चलि जात स्वर्ग सूकर सदेह ॥२७॥

(नवपदी)

जहँ तहँ लसत महा मदमत्त। बर बानर बार न दल दत्त।
अंग अंग चरचे अति चंदन। मुंडन भुरके देखिय बंदन ॥२८॥

(दोहा)

दीह दीह दिग्गजन के 'केसव' मनहुँ कुमार।
दीन्हे राजा दसरथहिं दिगपालन उपहार ॥२९॥

(अरिल्ल)

देखि बाग अनुराग उपज्जिय। बोलत कल ध्वनि कोकिल सज्जिय।
राजति रति की सखी सुबेषनि। मनहुँ बहति मनमथ-संदेसनि ॥३०॥

---

[२२] भए—भुव (प्रताप०, काशि०)। सुनि—सुभ (दीन० २); भए (कौमुदी)। [२५] मुनि—पुनि (कौमुदी)। [२७] चलि—सब (सर०); सोइ (काशि०)। [२८] बर—बल (दीन०,)। भुरके०—देखि अभ्रक बर (दीन० २, काशि०)। [३०] बहति—कहति (दीन०, सर०)।

मुनि—(श्री)— सिद्धि । रिद्धि ॥८॥
(सार)— और नाम । कौन काम ॥९॥
राम नाम । सत्य धाम ॥१०॥
'केसव'—(रमण)—दुख क्यों टरिहै ।
मुनि—हरि जू हरिहै ॥११॥
मुनि—(तरणिजा) बरनिबो बरन सो । जगत को सरन सो ॥१२॥
(प्रिया)—सुखकंद हैं रघुनंदजू । जग यों कहै जगबंद जू ॥१३॥
(सोमराजी)—गुनौ एक रूपी, सुनौ बेद गावैं । महादेव जाकौं, सदा चित्त लावैं ॥१४॥
(कुमारललिता)—बिरंचि गुन देखै । गिरा गुननि लेखै ।
अनंत मुख गावै । बिसेषहि न पावै ॥१५॥
मुनि (नगस्वरूपिणी)—भलो बुरो न तू गुनै । बृथा कथा कहै सुनै ।
न रामदेव गाइहै । न देवलोक पाइहै ॥१६॥

(षट्पद)

बोलि न बोल्यो बोल दयो फिर ताहि न दीनो ।
मारि न मार्‌यो सत्रु क्रोध मन बृथा न कीनो ।
जुरि न मुरे संग्राम लोक की लीक न लोपी ।
दान सत्य सनमान सुजस दिसि बिदिसनि ओपी ।
मन लोभ मोह मद काम बस भयो न 'केसवदास' भनि ।
(सोइ) परब्रह्म श्रीराम हैं अवतारी अवतारमनि ॥१७॥

(दोहा)

मुनिपति यह उपदेस दै जबहीं भए अदृस्ट ।
'केसवदास' तहीं कर्‌यो रामचंद्रजू इस्ट ॥१८॥

(गाहा)

रामचंद्र पदपद्मं वृंदारकवृंदाभिवंदनीयम् ।
केशवमतिभूतनयालोचनं चंचरीकायते ॥१९॥

(चतुष्पदी)

जिनको जसहंसा, जगतप्रसंसा, मुनिजनमानसरंता ।
लोचन-अनुरूपनि स्यामसरूपनि अंजनअंजित संता ।
कालत्रयदरसी निर्गुन-परसी होत बिलंब न लागै ।
तिनके गुन कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै ॥२०॥

(दोहा)

जागति जाकी ज्योति जग एकरूप स्वच्छंद ।
रामचंद्र की चंद्रिका बरनत हौं बहु छंद ॥२१॥

---

[८] यह छंद कई हस्तलेखों में नहीं है । [१०] इसके अनंतर 'प्रताप०' में यह छंद अधिक है—(मधु) हरिहरु-चित धरु । [१२] बरन—धरन (दीन० २) । [१७] संग्राम—रन माह (दीन० १) । [२०] जन—मन (प्रताप०) । पुरातन—पुरातम (दीन०) ।

(रोला)

सुभ सूरज-कुल-कलस नृपति दसरथ भए भूपति।
तिनके सुत सुनि चारि चतुर चितचारु चारुमति।
रामचंद्र भुवचंद्र भरत भारत-भुव-भूषन।
लछिमन अरु सत्रुघ्न दीह दानव-दल-दूषन॥२२॥

(घत्ता)

सरजू-सरिता-तट नगर बसै बर, अवध नाम जसधाम धर।
अघओघबिनासी सब पुरबासी, अमरलोक मानहुँ नगर॥२३॥

(षट्पद)

गाधिराज को पुत्र साधि सब सत्रु मित्र बल।
दान-कृपान-बिधान बस्य कीनो भुवमंडल।
कै मन अपने हाथ जीति जग इंद्रियगन अति।
तपबल याही देह भए क्षत्रिय तें रिषिपति।
तिहि पुर प्रसिद्ध 'केसव' सुमति काल अतीतागतति गुनि।
तहँ अद्भुत गति पगु धारियो बिस्वामित्र पवित्र मुनि॥२४॥

(पद्धटिका)

मुनि आए सरजू-सरित-तीर। तहँ देखे उज्जल अमल नीर।
नव निरखि निरखि दुति गति गभीर। कुछ बरनन लागे सुमति धीर॥२५॥
अति निपट कुटिल गति जदपि आप। बहु देति सुद्ध गति छुवत आप।
कछु आपुन अध अध गति चलंति। फल पतितन कौं ऊरध फलंति॥२६॥
मदमत्त जदपि मातंग संग। अति तदपि पतितपावन तरंग।
बहु न्हाइ न्हाइ जिहि जल सनेह। चलि जात स्वर्ग सूकर सदेह॥२७॥

(नवपटी)

जहँ तहँ लसत महा मदमत्त। बर बानर बार न दल दत्त।
अंग अंग चरचे अति चंदन। मुंडन भुरके देखिय बंदन॥२८॥

(दोहा)

दीह दीह दिग्गजन के 'केसव' मनहुँ कुमार।
दीन्हे राजा दसरथहिं दिगपालन उपहार॥२९॥

(अरिल्ल)

देखि बाग अनुराग उपज्जिय। बोलत कल ध्वनि कोकिल सज्जिय।
राजति रति की सखी सुवेषनि। मनहुँ बहति मनमथ-संदेसनि॥३०॥

---

[२२] भए—भुव (प्रताप०, काशि०)। सुनि—सुभ (दीन० २); भए (कौमुदी)। [२५] मुनि—पुनि (कौमुदी)। [२७] चलि—सब (सर०); सोइ (काशि०)। [२८] बर—बल (दीन०,)। भुरके०—देखि अभ्रक बर (दीन० २, काशि०)। [३०] बहति—कहति (दीन०, सर०)।

फूलि फूलि तरु फूल बढ़ावत। मोदत महामोद उपजावत।
उड़त पराग न चित्त उड़ावत। भ्रमर भ्रमत नहिं जीव भ्रमावत ॥३१॥

(पादाकुलक)

सुभ सर सोभै। मुनि-मन लोभै। सरसिज फूले। अलि रसभूले ॥३२॥
जलचर डोलैं। बहु खग बोलैं। बरनि न जाहीं। उर उरझाहीं ॥३३॥

(चतुष्पदी)

देखी बनवारी चंचल भारी तदपि तपोधन मानी।
अति तपमय लेखी गृहथित पेखी जगत दिगंबर जानी।
जग जदपि दिगंबर पुष्पवती नर निरखि निरखि मन मोहै।
पुनि पुष्पवती तन अति अति पावन गर्भसहित सब सोहै ॥३४॥
पुनि गर्भसँजोगी रतिरसभोगी जगजनलीन कहावै।
गुनि जगजनलीना नगरप्रबीना अति पति के मन भावै।
अति पतिहिं रमावै चित्त भ्रमावै सौतिन प्रेम बढ़ावै।
अब यों दिनरातिन अद्‌भुत भाँतिन कबिकुल कीरति गावै ॥३५॥

(हाकलिका)

संग लिये रिषि सिष्यन घने, पावक से तपतेजनि सने।
देखत बाग-तड़ागनि भले, देखन औधपुरी कहँ चले ॥३६॥

(मधुभार)

ऊँचे अवास, प्रति ध्वज अकास।
सोभा बिलास, सोभै प्रकास ॥३७॥

(आभीर)

अति सुंदर अति साधु, थिर न रहति पल आधु।
परम तपोमय मानि, दंडधारिनी जानि ॥३८॥

(हरिगीत)

सुभ द्रोन-गिरिगन-सिखर-ऊपर उदित ओषधि सी भनौ।
बहु बायु-बस बारिद बहोरहि अरुझि दामिनि-दुति मनौ।
अति किधौं रुचिर प्रताप पावक प्रगट सुरपुर कौं चली।
यह किधौं सरित सुदेस मेरी करी दिवि खेलति भली ॥३९॥

---

[३१] तरु-तर्न (काशि०); मन (प्रताप०)। [३३] खग-बिधि (दीन०)। [३४] जग-पुनि (प्रताप०); दिन (काशि०)। तन-नर (अन्यत्र)। अति०-०पावन गुन (अन्यत्र)। सब-सुभ (सर०)। [३५] प्रबीना-नवीना (प्रताप०, काशि०)। पति०-पिय के जिय (प्रताप०); पिय कौं जिय तें (काशि०)। गुनि-पुनि ((अन्यत्र)। अब-सब (वही)। [३६] बाग०-सरिता उपबन (सर०)। [३७] प्रति०-बहु ध्वज प्रकास (प्रकाशिका, कौमुदी)। [३८] परम-सबनि (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३९] ऊपर-पर अति (प्रताप०, सर०)। भनौ-गनौ (काशि०)। अति०-किधौं रुचिर चंड (प्रताप०, सर०)। यह-कहि (वही)। सरित०-सरिस सुदेवी मेरु दिवि (प्रताप०); यो सरिता सुदेवी मेरु की (सर०)।

(दोहा)

जीति जीति कीरति लई सत्रुन की बहु भाँति।
पुर पर बाँधी सोभिजै मानौ तिनकी पाँति ॥ ४० ॥

(त्रिभंगी)

सम सब घर सोभैं मुनि-मन लोभैं रिपु-गन छोभैं देखि सबै।
बहु दुंदुभि बाजैं जनु घन गाजैं दिग्गज लाजैं सुनत जबै।
जहँ तहँ श्रुति पढ़हीं बिघन न बढ़हीं जय जस मढ़हीं सकल दिसा।
सबई सब बिधि क्षम बसत जथाक्रम देवपुरी सम दिवस निसा ॥ ४१ ॥
कबिकुलबिद्याधर सकल कलाधर राजराज बर बेष बने।
गनपति सुखदायक पसुपति लायक सूर सहायक कौन गनै।
सेनापति बुधजन मंगल गुरुगन धर्मराज मन बुद्धि घनी।
बहु सुभ मनसाकर करुनामय अरु सुरततरंगिनी सोभसनी ॥ ४२ ॥

(हीरक)

पंडितगन मंडितगुन दंडित मति देखियै।
क्षत्रियबर धर्मप्रबर क्रुद्ध समर लेखियै।
बैस्य सहित सत्य रहित पाप प्रगट मानियै।
सूद्र सकति बिप्र भगति जीव जगति जानियै ॥ ४३ ॥

(सिंहविलोकित)

अति मुनि तन मन तहँ मोहि रह्यो।
कछु बुधि बल बचन न जाइ कह्यो।
पसु पंछि नारि नर निरखि तबै।
दिन रामचंद्र गुन गनत सबै ॥ ४४ ॥

(मरहट्टा)

अति उच्च अगारनि बनी पगारनि जनु चिंतामनि नारि।
बहु सत मखधूपनि धूपित अंगन हरि की सी उनहारि।
चित्री बहु चित्रनि परम बिचित्रनि 'केसवदास' निहारि।
जनु बिस्वरूप की अमल आरसी रची बिरंचि बिचारि ॥ ४५ ॥

(सोरठा)

जग जसवंत बिसाल, राजा दसरथ की पुरी।
चंद्रसहित सब काल, भालथली जनु ईस की ॥ ४६ ॥

---

[४१] सम०-घर घर सुभ (अन्यत्र)। [४२] मनसा०-सुमनसतरु (अन्यत्र)।

(कुंडलिया)

पंडित अति सिगरी पुरी मनहु गिरागति गूढ़।
सिंहचढ़ी जनु चंडिका मोहति मूढ़ अमूढ़।
मोहति मूढ़ अमूढ़ देवसँग दिति ज्यौं सोहै।
सब सिंगार सदेह मनो रति मन्मथ मोहै।
सब सिंगार सदेह सकल सुख सुषमा मंडित।
मनौ सची बिधि रची बिबिध बिधि बरनत पंडित ॥ ४७ ॥

(काव्य)

मूलन ही की जहाँ अधोगति 'केसव' गाइय।
होमहुतासन-धूम नगर एकै मलिनाइय।
दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही मैं।
श्रीफल को अभिलाष प्रगट कबिकुल के जी मैं ॥ ४८ ॥

(दोहा)

अति चंचल जहँ चलदलै बिधवा बनी न नारि।
मन मोह्यो रिषिराज को अद्भुत रूप निहारि ॥ ४९ ॥

(सोरठा)

नागर नगर अपार, महामोहतम-मित्र से।
तृस्नालता-कुठार लोभसमुद्र-अगस्त्य से ॥ ५० ॥

(दोहा)

बिस्वामित्र पवित्र मुनि 'केसव' बुद्धि उदार।
देखत सोभा नगर की गए राजदरबार ॥ ५१ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्वि-
रचितायां विश्वामित्रस्याऽयोध्यागमनं नाम प्रथमः प्रकाशः ॥१॥

२

(हंस)

आवत जात, राज के लोग। मूरतिधारी, मानहु भोग ॥१॥

(मालती)

तहँ दरबारी, सब सुखकारी। कृतयुग कैसे, जनु जन बैसे ॥२॥

---

[४७] सिंह०—सिंहनि जुत (अन्यत्र)। ज्यौं—सी (अन्यत्र)। [४८] नगर—इहै (अन्यत्र)। [४९] मन०—मोहि रहे जू (अन्यत्र)।

(दोहा)

महिष मेष मृग बृषभ कहुँ भिरत मल्ल गजराज ।
लरत कहूँ पायक सुभट कहुँ नर्तत नटराज ॥३॥

(समानिका)

देखि देखिकै सभा । बिप्र मोहियो प्रभा ।
राजमंडली लसै । देवलोक कौं हँसै ॥४॥

(मदनमल्लिका)

देस देस के नरेस । सोभिजै सबै सुबेस ।
जानियै न आदि अंत । कौन दास कौन संत ॥५॥

(दोहा)

सोभत बैठे तेहि सभा सात द्वीप के भूप ।
तहँ राजा दसरथ लसै देवदेव अनुरूप ॥६॥
देखि तिन्हैं तब दूरि तैं गुदरानो प्रतिहार ।
आए बिस्वामित्रजू जनु दूजो करतार ॥७॥
उठि दौरे नृप सुनत ही जाइ गहे तब पाइ ।
लै आए भीतर भवन ज्यौं सुरगुरु सुरराइ ॥८॥

(सोरठा)

सभामध्य बैताल, ताहि समय सो पढ़ि उठ्यो ।
'केसव' बुद्धिबिसाल, सुंदर सूरो भूप सो ॥९॥

बैताल—(घनाक्षरी)

बिधि के समान हैं बिमानीकृतराजहंस बिबिध बिबुधजुत मेरु सो अचलु है ।
दीपति दिपति अति सातो दीप दीपियतु दूसरो दिलीप सो सुदक्षिना को बलु है ।
सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति छनदानप्रिय किधौं सूरज अमलु है ।
सब बिधि समरथ राजै राजा दसरथ, भगीरथपथगामी गंगा कैसो जलु है ॥१०॥

(दोहा)

जद्यपि इँधन जरि गए, अरिगन 'केसवदास' ।
तदपि प्रतापानलनि के, पल पल बढ़त प्रकास ॥११॥

(तोमर)

बहु भाँति पूजि सुराइ । कर जोरिकै परि पाइ ।
हँसिकै कह्यो रिषि मित्र । अब बैठु राज पवित्र ॥१२॥

---

[३] मेष—मेढ़ (सर०) । बृषभ०—बृषभ बहु (दीन०, प्रताप०) । सुभट—नटत (काशि०, सर०, प्रताप०) । [७] गुदरानो—गुदरन गो (सर०, प्रताप०) । दूजो—जग के (वही) । [९] बिसाल—उदार (वही) । [११] बढ़त—होत (प्रताप०) ।

मुनि—(तोमर)

सुनि दान-मानस-हंस । रघुबंस के अवतंस ।
मन माहँ जो अति नेहु । इक बात माँगे देहु ॥१३॥

राजा—(अमृतगति)

सुमति महामुनि सुनियै । तन मन धन सब गुनियै ।
मन महँ होइ सु कहियै । धनि सु जु आपुन लहियै ॥१४॥

ऋषि—(दोधक)

राम गए जब तेँ बन माहीँ । राकस बैर करैँ बहुधा हीँ ।
रामकुमार हमैँ नृप दीजै । तौ परिपूरन जज्ञ करीजै ॥१५॥

राजा—(तोटक)

यह बात सुनी नृपनाथ जबै । सर से लगे आखर चित्त सबै ।
मुख तेँ कुछ बात न जाइ कही । अपराध बिना रिषि देह दही ॥१६॥

राजा—

अति कोमल 'केसव' बालकता । बहु दुष्कर राक्षसघालकता ।
हमहीँ चलिहैँ रिषि संग अबै । सजि सैन चलै चतुरंग सबै ॥१७॥

विश्वामित्र—(षट्पद)

जिन हाथन हठि हरषि हनत हरनी रिपुनंदन ।
तिन न करत संहार कहा मदमत्तगयंदन ।
जिन बेधत सुख लक्ष लक्ष नृपकुँवर कुँवरमनि ।
तिन बानन बाराह बाघ नहिँ मारत सिंहनि ।
नृपनाथनाथ दसरथ्थ सुनि अकथ कथा नहिँ मानियै ।
मृगराज-राज-कुल-कलस कहँ बालक बृद्ध न जानियै ॥१८॥

(सुंदरी)

राजनि मैँ तुम राज बड़े अति । मैँ मुख माँगौँ सुदेहु महामति ।
देव-सहायक हौ नृपनायक । है यह कारज रामहि लायक ॥१९॥

राजा—

मैँ जु कह्यो रिषि देन सु लीजिय । काज करौ हठ भूलि न कीजिय ।
प्रान दिये धन जाहिँ दिये सब । 'केसव' राम न जाहिँ दिये अब ॥२०॥

ऋषि—

राज तज्यो धन धाम तज्यो सब । नारि तजी सु न सोच तज्यो तब ।
आपनपौ जु तज्यो जगबंदह । सत्य न एक तज्यो हरिचंद्रह ॥२१॥

[१३] बात०—बस्तु माँगेहि (कौमुदी) । [१४] मन०—प्रधन सम हय (सर०) । [१७] चलै—चलौ (सर०); चल्यौ (प्रताप०) । [१८] सुनि०—अकथ कथा न बात यह (सर०) । नहिँ—यह (काशि०) । [२०] केसव—केवल (दीन १) ।

राज वहै वह साज वहै पुर। नाम वहै वह धाम वहै गुर।
झूठे सों झूठहि बाँधत हौ मन। छाड़त हौ नृप सत्य सनातन ॥२२॥

(दोहा)

जान्यो बिस्वामित्र के, कोप बढ्यो उर आइ।
राजा दसरथ सों कह्यो, बचन बसिष्ठ बनाइ ॥२३॥

बसिष्ठ—(षट्पद)

इनहीं के तपतेज जज्ञ की रक्षा करिहैं।
इनहीं के तपतेज सकल राक्षसबल हरिहैं।
इनहीं के तपतेज तेज बढ़िहैं तन तूरन।
इनहीं के तपतेज होहिंगे मंगल पूरन।
कहि 'केसव' जयजुत आइहैं इनहीं के तपतेज घर।
नृप बेगि राम लछिमन दुवौ सौंपौ बिस्वामित्र-कर ॥२४॥

(सोरठा)

राजा और न मित्र, जानहु बिस्वामित्र से।
जिनको अमित चरित्र, रामचंद्रमय मानियै ॥२५॥

(दोहा)

नृप पै बचन बसिष्ठ को, कैसे मेट्यो जाइ।
सौंप्यो बिस्वामित्र-कर, रामचंद्र अकुलाइ ॥२६॥

(पंकजवाटिका)

राम चलत नृप के जुग लोचन। बारि भरित भए बारिद-रोचन॥
पाइन परि रिषि के सजि मौनहिं। 'केसव' उठि गए भीतर भौनहिं ॥२७॥

(चामर)

बेदमंत्र-तंत्र सोधि अस्त्र सस्त्र दै भले।
रामचंद्र लक्ष्मनै सु बिप्र क्षिप्र लै चले।
लोभ क्षोभ मोह गर्ब काम कामना हई।
नींद भूख प्यास त्रास बासना सबै गई ॥२८॥

(निशिपालिका)

कामबन राम सब बासतरु देखियो।
नैन सुखदैन मन मैनमय लेखियो।

---

[२२] नाम—बैस (दीन १, प्रताप०)। [२५] जिनको—इनको (सर०, प्रताप०)। मानियै—जानियै (कौमुदी)। [२६] पै—सौं (सर०); ते (प्रताप०)। [२७] रोचन—मोचन (सर०)। [२८] तंत्र०—साधि साधि (सर०)।

ईस जहँ कामतनु कै अतनु डारियो।
छोड़ि वह, जज्ञथल 'केसव' निहारियो ॥२६॥

(दोहा)

रामचंद्र लक्ष्मन सहित तन मन अति सुख पाइ।
देख्यो बिस्वामित्र को परम तपोबन जाइ ॥३०॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामचंद्रलक्ष्मणयोर्विश्वामित्रतपोवनगमनं नाम द्वितीयः प्रकाशः।

३

(षट्पद)

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल बंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर बर।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं।
सारो सुककुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं।
सुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूरगन।
अतिप्रफुलित फलित सदा रहै 'केसवदास' बिचित्र बन ॥१॥

(सुप्रिया)

कहुँ द्विजगन मिलि सुख श्रुति पढ़हीं। कहुँ हरि हरि हर हर रट रटहीं।
कहुँ मृगपति मृगसिसु पय पियहीं। कहुँ मुनिगन चितवत हरि हियहीं ॥२॥

(नराच)

बिचार्यमान ब्रह्म, देव अर्च्यमान मानियै।
अदीयमान दुक्ख, सुक्ख दीयमान जानियै।
अदंडमान दीन, गर्ब दंडमान भेद वै।
अपठ्यमान पापग्रंथ, पठ्यमान बेद वै ॥३॥

(विशेषक)

साधु कथा कथियै दिन 'केसवदास' जहाँ।
निग्रह केवल है मन को दिन मान तहाँ।
पावन बास सदा रिषि को सुख कौं बरषै।
को बरनै कबि ताहि बिलोकत ही हरषै ॥४॥

---

[२६] बास—बाम (सर०, प्रताप०)। वह—यह (सर०)।

[१] तिलक०—लकुच बकुल कुल (सर०, प्रताप०)। [२] हर०—कहुँ हर हर (सर०); हर हर हर (प्रताप०)। [३] गर्ब—बर्ग (सर०, प्रताप०)। [४] दिन—तहँ (काशि०); कहि (प्रताप०)। बास—बंस (सर०)। ही—जी (सर०, कौमुदी)। होम—जज्ञ (प्रताप०, सर०)।

(चंचला)

रक्षिबे कौं जज्ञकूल बैठे बीर सावधान।
होन लाग होम के जहाँ तहाँ सबै बिधान।
भीम भाँति ताड़का सुभंग लागि कर्न आइ।
बान तानि राम पै न नारि जानि छाँडि जाइ ॥५॥

ऋषि—(सोरठा)

करम करति यह घोर, बिप्रन कौं दसहूँ दिसा।
मत्त सहस गज जोर, नारी जानि न छाँडिये ॥६॥

राम—(शशिवदना)

सुनि मुनिराई। जग सुखदाई।
कहि अब सोई। जेहि जस होई ॥७॥

ऋषि—(कुंडलिया)

सुता बिरोचन की हुती दीरघजिह्वा नाम।
सुरनायक वह संहरी परम पापिनी बाम।
परम पापिनी बाम अपर उपजी कपिमाता।
नारायन सो हती चक्र चिंतामनि-दाता।
नारायन सो हती सकल द्विजदूषनसंजुत।
त्यौं अब त्रिभुवननाथ ताड़का तारौ सह सुत ॥८॥

(दोहा)

द्विजदोषी न बिचारिये कहा पुरुष कह नारि।
राम बिराम न कीजिये बाम ताड़का तारि ॥९॥

(मरहट्ठा)

यह सुनि गुरु बानी, धनुगुन तानी, जानी द्विजदुखदानि।
ताड़का सँहारी, दारुन भारी, नारी अति बल जानि।
मारीच बिडार्‍यो, जलधि उतार्‍यो मार्‍यो सबल सुबाहु।
देवन गुन परख्यो, पुष्पनि बरख्यो, हरख्यो अति सुरनाहु ॥१०॥

(दोहा)

पूरन जज्ञ भयो जहीं जान्यो बिस्वामित्र।
धनुषजज्ञ की सुभ कथा लागे सुनन बिचित्र ॥ ११ ॥

---

[६] गज—दस (प्रताप०)। [८] अपर—बहुरि (काशि०, कौमुदी)। तारौ—मारो (कौमुदी। सह०—अदभुत (सर०)। [९] दोषी—द्वेषी (काशि०)। बाम—बान (प्रताप०, काशि०, सर०)। [१०] यह०—सुनि गुरुबर (प्रताप०)। [११] पूरन०—केसव पूरन जज्ञ जहँ (सर०)।

ईस जहँ कामतनु कै अतनु डारियो।
छोड़ि वह, जह्नथल 'केसव' निहारियो ॥२९॥

(दोहा)

रामचंद्र लक्ष्मन सहित तन मन अति सुख पाइ।
देख्यो बिस्वामित्र को परम तपोबन जाइ ॥३०॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामचंद्रलक्ष्मणयोर्विश्वामित्रतपोवनगमनं नाम द्वितीयः प्रकाशः।

३

(षट्पद)

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल बंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर बर।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं।
सारो सुककुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं।
सुभ राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूरगन।
अतिप्रफुलित फलित सदा रहै 'केसवदास' बिचित्र बन ॥१॥

(सुप्रिया)

कहुँ द्विजगन मिलि सुख श्रुति पढ़हीं। कहुँ हरि हरि हर हर रट रटहीं।
कहुँ मृगपति मृगसिसु पय पियहीं। कहुँ मुनिगन चित्तवत हरि हियहीं ॥२॥

(नराच)

बिचार्यमान ब्रह्म, देव अर्च्यमान मानियै।
अदीयमान दुक्ख, सुक्ख दीयमान जानियै।
अदंडमान दीन, गर्ब दंडमान भेद वै।
अपठ्यमान पापग्रंथ, पठ्यमान बेद वै ॥३॥

(विशेषक)

साधु कथा कथियै दिन 'केसवदास' जहाँ।
निग्रह केवल है मन को दिन मान तहाँ।
पावन बास सदा रिषि को सुख कौं बरषै।
को बरनै कबि ताहि बिलोकत ही हरषै ॥४॥

---

[२९] बास—बाम (सर०, प्रताप०)। वह—यह (सर०)।

[१] तिलक०—लकुच बकुल कुल (सर०, प्रताप०)। [२] हर०—कहुँ हर हर (सर०); हर हर हर (प्रताप०)। [३] गर्ब—बर्ग (सर०, प्रताप०)। [४] दिन—तहँ (काशि०); कहि (प्रताप०)। बास—बंस (सर०)। ही—जी (सर०, कौमुदी)। होम—जज्ञ (प्रताप०, सर०)।

(चंचला)

रक्षिबे कौं जज्ञकूल बैठे बीर सावधान।
होन लाग होम के जहाँ तहाँ सबै बिधान।
भीम भाँति ताड़का सुभंग लागि कर्न आइ।
बान तानि राम पै न नारि जानि छाँडि जाइ ॥५॥

ऋषि—(सोरठा)

करम करति यह घोर, बिप्रन कौं दसहूँ दिसा।
मत्त सहस गज जोर, नारी जानि न छाँडिये ॥६॥

राम—(शशिवदना)

सुनि मुनिराई। जग सुखदाई।
कहि अब सोई। जेहि जस होई ॥७॥

ऋषि—(कुंडलिया)

सुता बिरोचन की हुती दीरघजिह्वा नाम।
सुरनायक वह संहरी परम पापिनी बाम।
परम पापिनी बाम अपर उपजी कपिमाता।
नारायन सो हती चक्र चिंतामनि-दाता।
नारायन सो हती सकल द्विजदूषनसंजुत।
त्यौं अब त्रिभुवननाथ ताड़का तारौ सह सुत ॥८॥

(दोहा)

द्विजदोषी न बिचारिये कहा पुरुष कह नारि।
राम बिराम न कीजिये बाम ताड़का तारि ॥९॥

(मरहट्ठा)

यह सुनि गुरु बानी, धनुगुन तानी, जानी द्विजदुखदानि।
ताड़का सँहारी, दारुन भारी, नारी अति बल जानि।
मारीच बिडार्‌यो, जलधि उतार्‌यो मार्‌यो सबल सुबाहु।
देवन गुन परख्यो, पुष्पनि बरख्यो, हरख्यो अति सुरनाहु ॥१०॥

(दोहा)

पूरन जज्ञ भयो जहीं जान्यो बिस्वामित्र।
धनुषजज्ञ की सुभ कथा लागे सुनन बिचित्र ॥ ११ ॥

---

[६] गज—दस (प्रताप०)। [८] अपर—बहुरि (काशि०, कौमुदी)। तारौ—मारो (कौमुदी। सह०—अदभुत (सर०)। [९] दोषी—द्वेषी (काशि०)। बाम—बान (प्रताप०, काशि०, सर०)। [१०] यह०—सुनि गुरुबर (प्रताप०)। [११] पूरन०—केसव पूरन जज्ञ जहँ (सर०)।

(चंचरी)

आइयो तेहि काल ब्राह्मन जज्ञ को थल देखिकै।
ताहि पूछत बोलिकै रिषि भाँति भाँति बिसेषिकै॥
संग सुंदर राम लक्ष्मन देखि देखि सु हर्षई।
बैठिकै सोइ राजमंडल बर्नई सुख बर्षई॥१२॥

ब्राह्मण—(शार्दूलविक्रीड़ित)

सीतासोभनब्याह-उत्सव - सभा-संभार-संभावना।
तत्तत्कार्य-समग्र-ब्यग्र मिथिलाबासीजना सोभना।
राजाराजपुरोहितादि सुहृदा मंत्री महामंत्रदा।
नानादेससमागता नृपगना पूज्या परा सर्बदा॥१३॥

(दोहा)

खंडपरसु को सोभिजै सभामध्य कोदंड।
मानहु सेष असेषधर-धरनहार बरिबंड॥१४॥

(सवैया)

सोभित मंचन की अवली गजदंतमई छबि उज्जल छाई।
ईस मनौ बसुधा मैं सुधारि सुधाधर-मंडली मंडि जोन्हाई।
तामहँ 'केसवदास' बिराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवनि स्यौं जनु देवसभा सुभ सीयस्वयंबर देखन आई॥१५॥

(दोहा)

नचति मंच-पंचालिका करसंकलित अपार।
नाचति है जनु नृपन की चित्तबृत्ति सुकुमार॥१६॥

(सोरठा)

सभामध्य गुनग्राम, बंदीसुत द्वै सोभहीं।
सुमति बिमति यहि नाम, राजन को बर्नन करहिं॥१७॥

सुमति—(दोहा)

को यह निरखत आपनैं पुलकित बाहु बिसाल।
सुरभि स्वयंबर जनु करी मुकुलित साख रसाल॥१८॥

बिमति—(सोरठा)

जेहि जसपरिमल-मत्त चंचरीक-चारन फिरत।
दिसि बिदिसिन अनुरक्त सु तौ मल्लिकापीड़ नृप॥१९॥

---

[१२] पूछत—बूझत (प्रताप०, सर०)। [१७] यहि—तेहि (प्रताप०); इन (सर०)। [१८] सुरभि—सीय (सर०)। जनु०—सोभिजै (वही)।

सुमति—(दोहा)

जाके सुख-मुखबास तें बासित होत दिगंत।
सो पुनि कहि यह कौन नृप सोभित सोभ अनंत ॥ २० ॥

विमति—(सोरठा)

राजराज-दिगबाम-भाल-लाल - लोभी सदा ।
अति प्रसिद्ध जग नाम कासमीर को तिलक यह ॥२१॥

सुमति—(दोहा)

निज प्रताप-दिनकर करत लोचन-कमल-प्रकास ।
पान खात मुसकात मृदु को यह 'केसवदास' ॥२२॥

विमति—(सोरठा)

नृप - मानिक्य - सुदेस, दक्षिन - तिय - जिय - भावतो।
कटितट सुपट सुबेस, कल कांची सुभ मंडई ॥२३॥

सुमति—(दोहा)

कुंडल परसन मिस कहत कहौ कौन यह राज ।
संभु-सरासन-गुन करौं करनालंबित आज ॥२४॥

विमति—(सोरठा)

जानहि बुद्धिनिधान, मत्स्यराज यहि राज कौं।
समर समुद्र-समान, जानत सब अवगाहि कै ॥२५॥

सुमति—(दोहा)

अंगराग-रंजित रुचिर भूषनभूषित देह ।
कहत विदूषक सौं कछू सो पुनि को नृप एह ॥२६॥

विमति—(सोरठा)

चंदन-चित्र-तरंग सिंधुराज यह जानिये ।
बहुत बाहिनी संग मुकुतामाल बिसाल उर ॥२७॥

(दोहा)

सिगरे राजसमाज के कहे गोत-गुन-ग्राम ।
देस स्वभाव प्रभाव अरु कुल बल बिक्रम नाम ॥२८॥

---

[२०] सो०–सु पुनि कहौ (प्रताप०, काशि०, सर०) । [२२] प्रकास–बिकास (कौमुदी) । [२३] कटि०–कटिपट (प्रताप०, कौमुदी) । सुपट–पीत (प्रताप०); पाट (सर०) । [२५] बुद्धि–बिबिध (सर०) । यहि–जुव-(वही) ।

(घनाक्षरी)

पावक पवन मुनि पन्नग पतंग पितृ जेते जोतिवंत जग ज्योतिषिन गाए हैं।
असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथसहित सिंधु 'केसव' चराचर जे बेदन बताए हैं।
अजर अमर अज अंगी औ अनंगी सब बरनि सुनावै ऐसे कौने गुन पाए हैं।
सीता के स्वयंबर को रूप अवलोकिबे कौं भूपनको रूप धरि बिस्वरूप आए हैं ॥२९॥

(सोरठा)

कह्यो बिमति यह टेरि, सकल सभाहि सुनाइकै।
चहूँ ओर कर फेरि, सब ही कौं समुझाइकै ॥३०॥

(गीतिका)

कोउ आजु राजसमाज मैं बल संभु को धनु कर्षिहै।
पुनि श्रवन के परिमान तानि सो चित्त मैं अति हर्षिहै।
वह राज होइ कि रंक 'केसवदास' सो सुख पाइहै।
नृपकन्यका यह तासु के उर पुष्पमालहि नाइहै ॥३१॥

(दोहा)

नेक सरासन-आसनै तजै न 'केसवदास'।
उद्यम कै थाक्यो सबै राजसमाज प्रकास ॥३२॥

(सुंदरी)

सक्ति करी नहिँ भक्ति करी अब। सो न नयो पलु सीस नए सब।
देख्यो मैं राजकुमारन के बर। चाप चढ्यो नहिँ आप चढ़े खर ॥३३॥

(विजय)

दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई च्वै।
भाँड भए उठि आसन तैं कहि 'केसव' संभुसरासन कौं छ्वै।
काहू चढ़ायो न काहू नवायो न काहू उठायो न आँगुरहू द्वै।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ आए है बीर चले बनिता ह्वै ॥३४॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्वि-
रचितायां श्रीस्वयंवरसभावर्णनं नाम तृतीयः प्रकाशः ॥३॥

---

[२९] मुनि—मनि (कौमुदी०)। पितृ—पन्नि (प्रताप०, सर०)। [३०] श्रौन-कर्न (प्रताप०, सर०)। [३१] पुष्पमालहि—हरषि माला (दीन०)। तानि—आनि (वही)। [३३] पलु—तिल (कौमुदी)। देख्यो—देखहु (प्रताप०); देखहि (सर०)। यह छंद 'दीन०२' में और है—

यह सुनि सकल उठे भहराइ। धनुकहि के लग पहुँचे जाइ।
एकनि जाइ गहे कर कोस। एकनि के उर बाढ्यो रोस ॥

[३४] भाँड—कत भाँड (कौमुदी), सब भाँड (प्रताप०)। काहू—अरु काहू (कौमुदी); वह काहू (प्रताप०); सुकाहूँ (सर०)।

४

(दोहा)

सबही के समुझे सबन बल बिक्रम परिमान।
सभामध्य ताही समय आए रावन बान ॥१॥

(डिल्ल)

नर नारि तबै। भयभीत सबै। अचरज्जु यहै। सब देखि कहै ॥२॥

(दोहा)

है राकस दस सीस को दैयत बाहु हजार।
भयो सबन के चित्त भ्रम भय अद्भुत संचार ॥३॥

रावण—(विजोहा)

संभुकोदंड दै। राजपुत्री कितै। टूक द्वै तीन कै। जाउँ लंकाहि लै ॥४॥

विमति—(शशिवदना)

दससिर आवो। धनुष चढ़ावो। कछु बल कीजै। जग जस लीजै ॥५॥

बाण—(गीतिका)

दसकंठ रे सठ, छाँडि दे हठ, बार बार न बोलियै।
अब आजु राजसमाज मैं बल साजु चित्त न डोलियै।
गिरराज ते गुरु जानियै सुरराज को धनु हाथ लै।
सुख पाइ ताहि चढ़ाइकै घर जाहि रे जस साथ लै ॥६॥

(मंथान)

बानी कही बान। कीनी न सो कान।
अद्यापि आनी न। रे बंदि कानीन ॥७॥

बाण—(मालती)

जु पै जिय जोर। तजौ सब सोर। सरासन तोरि। लहौ सुख कोरि ॥८॥

रावण—(दंडक)

बज्र को अखर्ब गर्ब गंज्यो, जेहि पर्वतारि जीत्यो है, सुपर्ब सर्ब भाजे लै लै अंगना।
खंडित अखंड आसु कीन्हो है जलेस-पासु, चंदन सी चंद्रिका सौं कीन्ही चंद बंदना।

---

[१] के–को (काशि०, सर०, कौमुदी); बिधि (प्रताप०)। ताही–तेही (सर०, प्रताप०)। [३] भयो–कियो (प्रताप०; काशि०, सर०, कौमुदी)। भ्रम–रस (वही)। [४] चढावो–उठावो (काशि०, कौमुदी)। [६] गिरराज०–सुरराज को गुर जानिये, गुरराज को धनु हाथ लै (दीन०२)। [८] सुख–हित (प्रताप०, सर०)। कोरि–ओर (प्रताप०); जोरि (सर०)।

दंडक में कीन्हो कालदंडहू को मान खंड मानो कीन्ही काल ही की कालखंड खंडना।
'केसव' कोदंड बिषदंड ऐसो दंड अब मेरे भुजदंडन की बड़ी है बिडंबना ॥९॥

बाण—(तुरंगम)

बहुत बदन जाके। बिबिध बचन ताके।
रावण—बहुभुजजुत जोई। सबल कहिय सोई ॥१०॥

(दोहा)

अति असार भुजभार ही बली होहुगे बान।
बाण—मम बाहुन को जगत में सुनु दसकंठ बिधान ॥११॥

(सवैया)

हौं जबहीं जब पूजन जात पितापद पावन पाप प्रनासी।
देखि फिरौं सिगरे तबहीं तब सातौ रसातल के जे बिलासी।
लै अपने भुजदंड अखंड करौं छितिमंडल छत्रप्रभा सी।
जानै को 'केसव' केतिक बार मैं सेष के सीसन दीन्हि उसासी ॥१२॥

रावण—(कमला)

तुम प्रबल जौ हुते। भुजबलनि संजुते॥
पितहि भुव ल्यावते। जगत जस पावते ॥१३॥

बाण—(तोमर)

पितु आनियै केहि ओक। दिय दक्षिना सब लोक।
यह जानि रावन दीन। पितु ब्रह्म के रस लीन ॥१४॥

(सवैया)

कैटभ सो नरकासुर सो पल मैं मधु सो मुर सो जेहि मार्‍यो।
लोक चतुर्दस रक्षक 'केसव' पूरन बेद पुरान बिचार्‍यो।
श्रीकमलाकुचकुंकुममंडितपंडित देव अदेव निहार्‍यो।
सो कर माँगन को बलि पै करतारहु के करतार पसार्‍यो ॥१५॥

रावण—(दोहा)

हमै तुमै नहिं बूझियै बिक्रमबाद अखंड।
अब जु यहै कहि देहिगो मदनकदन-कोदंड ॥१६॥

---

[९] जेहि—जिहि (प्रताप०); जिन (सर०)। बिषदंड०—बिषदंड ऐसो खंडै (काशि०, कौमुदी)। भुज—बाहु (प्रताप०)। बड़ी०—बड़ोयै (सर०)। [११] असार—आसा (दीन० १), आरस (दीन० २)। [१२] सिगरे०—तबहीं तब 'केसव' (प्रताप०);......रावन (काशि०, कौमुदी)। करौं—धर्‍यो (प्रताप०); धरौं (सर०)। [१३] भुज०—बहुभुजनि (प्रताप०, सर०)। [१४] आनियै—राखियै (वही)। रस— पद (प्रताप०) [१५] जेहि—जिन (प्रताप०, सर०)। के—तैं (प्रताप०); को (कौमुदी)।

विमति—

तुम बलनिधान । धनु अति पुरान ।
यौं सजहु अंग । नहि होहि भंग ॥२५॥

(सवैया)

खंडित मान भयो सबको नृपमंडल हारि रह्यो जगती को ।
व्याकुल बाहु निराकुल बुद्धि थक्यो बल बिक्रम लंकपती को ।
कोटि उपाय किये कहि 'केसव' केहूँ न छाँडत भूमि रतीको ।
भूरि बिभूति सुभाव प्रभावहि ज्यौं न चलै चित जोग-जती को ॥२६॥

(पद्धटिका)

धनु अति पुरान लंकेस जानि । यह बात बान सौं कही आनि ।
हौं पलक माहँ लेहौं चढ़ाइ । कछु तुमहूँ तौ देखौ उठाइ ॥२७॥

बाण—(दोहा)

मेरे गुरु को धनुष यह सीता मेरी माइ ।
दुहु भाँति असमंजसै, बान चले सिर नाइ ॥२८॥

रावण—(तोटक)

अब सीय लिये बिन हौं न टरौं । कहुँ जाहुँ न तौ लगि नेम धरौं ।
जब लौं न सुनौं अपने जन को । अति आरत सब्द हते तन को ॥२९॥

ब्राह्मण—(मोदक)

काहू कहूँ सर आसर मारिय । आरत सब्द अकास पुकारिय ।
रावन के वह कान पर्‌यो जब । छोड़ि स्वयंबर जात भयो तब ॥३०॥

(दोहा)

जब जान्यो सबको भयो सब ही बिधि ब्रतभंग ।
धनुष धर्‌यो लै भवन मैं राजा जनक अनंग ॥३१॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां बाणरावणयोर्वाग्विवादवर्णनं नाम चतुर्थः प्रकाशः ॥ ४ ॥

---

[२५] यौं—इमि (प्रताप०,); औ (कौमुदी) । [२६] उपाय०—विचार विचारत (प्रताप०) । जोग—भोग (दीन०) । [२७] तौ०—धौं देखहु आइ (सर०) । [२८] सिर—सुख पाइ (काशि०, सर०, कौमुदी) । [२९) हते०—सुनो तिनको (प्रताप०) । [३०] आसर—मासर (प्रताप०); मारिच (सर०) । [३१] अनंग—अभंग (दीन० २) ।

५

ब्राह्मण—(तारक)

जब आनि भई सबकौं दुचिताई। कहि 'केसव' काहू पै मेटि न जाई।
सिय संग लिये रिषि की तिय आई। इक राजकुमार महासुखदाई ॥१॥

(मोहन)

सुंदर बपु अति स्यामल सोहै। देखत सुर नर को मन मोहै।
लाइय लिखि सिय को बरु ऐसो। राजकुँअर यह देखिय जैसो ॥२॥

(तोटक)

रिषिराज सुनी यह बात जहीँ। सुख पाइ चले मिथिलाहि तहीँ।
बन राम सिला दरसी जबहीँ। तिय सुंदर रूप भई तबहीँ ॥३॥

(दोहा)

पूछी बिस्वामित्र सौँ रामचंद्र अकुलाइ।
पाहन तेँ तिय क्यौँ भई कहिये मोहिँ समुझाइ ॥४॥

विश्वामित्र —(सोरठा)

गौतम की यह नारि, इंद्रदोष दुर्गति गई।
देखि तुम्हैँ नरकारि परम पतित पावन भई ॥५॥

(कुसुमविचित्रा)

तेहि अति रूरे रघुपति देखे। सब गुन पूरे तन मन लेखे।
यह बरु माँग्यो दियो न काहू। तुम मम मन तेँ कतहुँ न जाहू ॥६॥

(कलहंस)

तहँ ताहि दै बरु कौं चले रघुनाथ जू। अति सूर सुंदर यौँ लसैँ रिषिसाथ जू।
जनु सिंह के सुत दोउ सिद्धिहि श्री रए। बन जीव देखत यौँ सबै मिथिला गए ॥७॥

---

[१] 'केसव'०—क्यौँ हू सु (प्रताप०); कैसेहु (सर०)। [२] स्यामल—दिर्गज (दीन० २)। लिखि०—आनिय लिखि (प्रताप०, काशि०, सर०)। ऐसो—जैसो (प्रताप०); तैसो (सर०)। राज०—राजकुमारहि यह देखिय तैसो (कौमुदी०); राजकुमार .... (काशि०); रामकुमार देखियो ... (सर०)। [३] दरसी—परसी (प्रताप०)। [४] प्रताप०, काशि०, सर० मेँ नहीँ है। [५] गई—मई (प्रताप०); भई (सर०)। मन—ही (प्रताप०)। कतहुँ—कबहुँ (प्रताप०, सर०)।

(दोहा)

काहू को न भयो कहूँ ऐसो सगुन न होत।
पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र-उद्दोत ॥८॥

राम—(चौपाई)

कछु राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मन के अनुराग भरे।
चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसै। चोर-चकोर-चिता सी लसै ॥९॥

लक्ष्मण—(षट्पद)

अरुन गात अतिप्रात पद्मिनी-प्राननाथ भय।
मानहु 'केसवदास' कोकनद कोक प्रेममय।
परिपूरन सिंदूर पूर कैधौं मंगलघट।
किधौं सक्र को छत्र मढ्यो मानिकमयूख-पट।
कै श्रोनित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।
यह ललित लाल कैधौं लसत दिगभामिनि के भाल को ॥१०॥

(तोटक)

पसरे कर कुम्दिनि काज मनो। किधौं पद्मिनि कौं सुखदेन घनो।
जनु रिक्ष सबै यहि त्रास भगे। जिय जानि चकोर फँदानि ठगे ॥११॥

राम—(चंचरी)

ब्योम में मुनि देखिजै अति लालश्री मुख साजहीं।
सिंधु में बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल बिराजहीं।
पद्मरागनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भई।
सूर-बाजिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हई ॥१२॥

विश्वामित्र—(सोरठा)

चढ़ो गगन तरु धाइ, दिनकर बानर अरुनमुख।
कीन्हो झुकि झहराइ, सकल तारका कुसुम बिन ॥१३॥

लक्ष्मण—(दोहा)

जहीं बारुनी की करी रंचक रुचि द्विजराज।
तहीं कियो भगवंत बिन संपति सोभा साज ॥१४॥

(तोमर)

चहुँ भाग बाग तड़ाग। अब देखियै बड़ भाग।
फल फूल सौं संजुक्त। अलि यौं रमैं जनु मुक्त ॥१५॥

---

[८] न होत—जु होत (सर०)। [९] चोर—अति चारु (प्रताप०)। [१०] प्रात—प्रीति (सर०)। किल—कलि (सर०)। [११] जिय—जन (प्रताप०); जनु (सर०)। [१२] देखिजै—सोभिजै (सर०)। मुख—सुख (प्रताप०, काशि०, सर०)। [१३] कीन्हो—दीन्हो (प्रताप०); कीनी (सर०)। कुसुम०—कुसुम बन (प्रताप०)। [१४] कियो—करी (प्रताप०); करो (सर०)। [१५] चहुँ—बहु (प्रताप०)। सौं०—सोभाजुक्त (प्रताप०)।

राम—(दोहा)

तिन नगरी तिन नागरी प्रतिपद हंसक-हीन।
जलजहार सोभित न जहँ प्रगट पयोधर पीन ॥१६॥

(सवैया)

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय मैं जब जाने ।
बीसबिसे ब्रतभंग भयो सु कहौ अब 'केसव' को धनु ताने।
सोक की आगि लगी परिपूरन आइ गए घनस्याम बिहाने।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुन्य पुराने ॥१७॥

(दोधक)

आइ गए रिषिराजहिं लीने । मुख्य सतानँद बिप्र प्रबीने।
देखि दुवौ भए पायनि लीने। आसिष सीरषबासु लै दीने ॥१८॥

विश्वामित्र—(सवैया)

'केसव' ये मिथिलाधिप हैं जग मैं जिन कीरति-बेलि बई है।
दान-कृपान-बिधानन सौं सिगरी बसुधा जिन हाथ लई है।
अंग छ-सातक आठक सौं भव तीनिहु लोक मैं सिद्धि भई है।
बेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरनता सुभ जोगमई है ॥१९॥

जनक—(सोरठा)

जिन अपनो तन स्वर्न, मेलि तपोमय अग्नि मैं ।
कीन्हो उत्तम बर्न, तेई बिस्वामित्र ये ॥२०॥

लक्ष्मण—(मोहन)

जन राजवंत । जग जोगवंत ।
तिनको उदोत । केहि भाँति होत ॥२१॥

श्रीराम—(विजय)

सब क्षत्रिन आदि दै काहू छुई न छिये बिजनादिक बात डगै।
न घटै न बढ़ै निसिबासर 'केसव' लोकन को तमतेज भगै।
भवभूषन-भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै।
जलहू थलहू परिपूरन श्री निमि के कुल अद्भुत जोति जगै ॥२२॥

---

[१६] न०—हियँ (प्रताप०); जहाँ (सर०)। [१७] भनु—न सु (सर०)। परि०—पुर पूरन (प्रताप०, सर०); उर मैं तब (अन्यत्र)। सब—तब (सर०)। [१८] प्रबीने—नबीने (सर०)। सीरष—श्रीरिषि (वही)। [१९] सौं—कै (सर०)। सौं—लौं (वही)। मैं०-प्रसिद्ध (वही)। सुभ—सब (वही)। [२०] उत्तम—उज्जल (सर०)। [२१] जोग—ज्योति (सर०)। तिनको—तिनके (वही)। [२२] छिये—छुए (काशि०, कौमुदी); लगै (सर०)। लोकन०—लोकन सोरह तेज भगै (दीन०२)।

जनक—(तारक)

यह कीरति और नरेसन सोहै। सुनि देव अदेवन को मन मोहै।
हम को बपुरा सुनियै रिषिराई। सब गाँउ छ-सातक की ठकुराई ॥२३॥

विश्वामित्र—(विजय)

आपने आपने ठौरनि तौ भुवपाल सबै भुव पालैं सदाई।
केवल नामहिँ के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई।
भूपन की तुम ही धरि देह बिदेहन मैं कल कीरति गाई।
'केसव' भूषन कौं भवभूषन भू-तल तैं तनुजा उपजाई ॥२४॥

जनक—(दोहा)

इहि बिधि की चित चातुरी तिनको कहा अकथ्थ।
लोकनि की रचना रुचिर रचिबे कौं समरथ्थ ॥२५॥

जनक—(सवैया)

लोकन की रचना रचिबे कौं जहीँ परिपूरन बुद्धि बिचारी।
है गई 'केसवदास' तहीँ सब भूमि अकास प्रकासित भारी।
सुद्ध सलाक समान लसी अति रोषमई दृग दीठि तिहारी।
होत भए तब सूर सुधाधर पावक सुभ्र सुधा रँगधारी ॥२६॥

(दोहा)

'केसव' बिस्वामित्र के रोषमई दृग जानि।
संध्या सी तिहुँ लोक के किहिनि उपासी आनि ॥२७॥

जनक —(दोधक)

ये सुत कौन के सोभहिँ साजैं। सुंदर स्यामल गौर बिराजैं।
जानत हौं जिय सोदर दोऊ। कै कमला-बिमलापति कोऊ ॥२८॥

बिश्वामित्र—(चौपाई)

सुंदर स्यामल राम सु जानौ। गौर सु लक्ष्मन नाम बखानौ।
आसिष देहु इन्हैं सब कोऊ। सूरज के कुलमंडल दोऊ ॥२९॥

(दोहा)

नृपमनि दसरथ नृपति के प्रगटे चारि कुमार।
राम भरत लक्ष्मन ललित अरु सत्रुघ्न उदार ॥३०॥

---

[२३] सुनि–मुनि (सर०)। [२४] तौ–तैं (प्रताप०) भूषन–भूपनि (सर०)। भू०–भूतन (काशि०, कौमुदी)। तैं०–तैं तनया (सर०, कौमुदी)। [२६] रचिबे०–कहँ चित्त (प्रताप०, सर०)। बुद्धि–चित्त (सर०)। मई–रची (सर०)। दीठि–दीह (प्रताप०, सर०)। तब–सव (सर०)। [२७] मई–भरी (सर०)।

विश्वामित्र—(घनाक्षरी)

दानिन के सील पर दान के प्रहारी दिन, दानवारि ज्यौं निदान देखिजै सुभाय के।
दीपदीप हू के अवनीपन के अवनीप, पृथु सम 'केसोदास' दास द्विज गाय के।
आनँद के कंद सुरपालक से बालक ये, परदारप्रिय साधु मन बच काय के।
देह धर्मधारी पै बिदेहराजजू से राज, राजत कुमार ऐसे दसरथ राय के॥३१॥

(सोरठा)

जब तैं बैठे राज, राजा दसरथ भूमि मैं।
सुख सोयो सुरराज, ता दिन तैं सुरलोक मैं॥३२॥

(स्वागता)

राजराज दसरथ्थ-तने जू। रामचंद भुवचंद बने जू।
त्यौं बिदेह तुम हू अरु सीता। ज्यौं चकोरतनया सुभगीता॥३३।

विश्वामित्र—(तारक)

रघुनाथ सरासन चाहत देख्यो। अति दुष्कर राजसमाजनि लेख्यो।
जनक—रिषि है वह मंदिर माँझ मँगाऊँ। गहि ल्यावहिं हौं जनजूथ बुलाऊँ॥३४॥

(पद्धटिका)

अब लोग कहा करिबे अपार। रिषिराज कही यह बारबार।
इन राजकुमारनि देहु जान। सब जानत हैं बल के निधान॥३५॥

जनक—(दंडक)

वज्र तैं कठोर है कैलास तैं बिसाल कालदंड तैं कराल सब काल काल गावई।
'केसव' त्रिलोक के बिलोकि हारे देव सब, छाड़ि चंद्रचूड़ एक और को चढ़ावई।
पन्नग प्रचंडपति प्रभु की पनच पीन पर्बतारि पर्बतप्रभा न मान पावई।
बिनायक अनेक पै आवै ना पिनाक ताहि कोमल कमलपानि राम कैसे ल्यावई॥३६॥

विश्वामित्र—(दोहा)

राम हत्यो मारीच जेहि अरु तारका सुबाहु।
लक्ष्मन कौं यह धनुष दै तुम पिनाक कौं जाहु॥३७॥

जनक—(त्रिभंगी)

सिगरे नरनायक असुर-बिनायक रक्षसपति हिय हारि गए।
काहू न उठायो थल न छुड़ायो टर्‍यो न टार्‍यो भीत भए।

---

[३१] दानिन–दानन (प्रताप०, सर०)। राजत–राघव (सर०)। [३३] तने–जने (प्रताप०, सर०)। [३४] ल्यावहिं०–लाइबे कौं (प्रताप०)। बुलाऊँ–पठाऊँ (वही)। [३६] अनेक–एक हूँ (कौमुदी०)। [३७] कौं–पह (प्रताप०)।

इन राजकुमारनि अति सुकुमारनि लै आए हौ पैज करै।
व्रतभंग हमारो भयो तुम्हारो रिषि तपतेज न जानि परै ॥३८॥

विश्वामित्र—(तोमर)

सुनि रामचंद्र कुमार। धनु आनिये यहि बार।
पुनि बेगि ताहि चढ़ाउ। जस लोकलोक बढ़ाउ ॥३९॥

जनक—(दोहा)

रिषिहि देखि हरषै हियो राम देखि कुभिलाइ।
धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डुलाइ ॥४०॥

(स्वागता)

रामचंद्र कटि सोँ पटु बाँध्यो। लीलही सोँ हर को धनु साध्यो।
नेकु ताहि करपल्लव सोँ छ्वै। फूल मूल जिमि टूक कर्‍यो द्वै ॥४१॥

(सवैया)

उत्तमगाथ सनाथ जबै धनु श्रीरघुनाथजू हाथ कै लीनो।
निर्गुन तैँ गुनवंत कियो सुख 'केसव' संत अनंतन दीनो।
ऐँच्यो जहीँ तबहीँ कियो संजुत तिच्छ कटाक्ष नराच नवीनो।
राजकुमार निवारि सनेह सोँ संभु को साँचो सरासन कीनो ॥४२॥

सतानंद—(दंडक)

प्रथम टंकारि झुकि झारि संसार-मद चंड कोदंड रह्यो मंडि नवखंड कोँ।
चालि अचला अचल घालि दिगपालबल पालि रिषिराज के बचन परचंड कोँ।
सोधु दै ईस कोँ बोधु जगदीस कोँ क्रोधु उपजाइ भृगुनंद बरिबंड कोँ।
बाँधि बर स्वर्ग कोँ साधि अपवर्ग धनुभंग को सब्द गयो भेदि ब्रह्मंड कोँ ॥४३॥

जनक—(दोहा)

सतानंद आनंदमति तुम जु हुते उन साथ।
बरज्यो काहे न धनुष जब तोर्‍यो श्रीरघुनाथ ॥४४॥

सतानंद—(तोमर)

सुनि राजराज बिदेह। जब हौँ गयो वहि गेह।
कछु मैँ न जानी बात। कब तोरियो धनु तात ॥४५॥

---

[३८] लै०—लै आए रिषि (दीन०१); लै आए जिन (दीन० २)। [३९] बढ़ाउ—पठाउ (प्रताप०)। [४०] महा—हिये (सर०)। [४१] मूल०—माल सम (सर०)। [४२] तैँ—तौ (सर०)। अनंतन—असंतनि (प्रताप०)। [४३] चालि—चले (प्रताप०)। चंड—दंडि (सर०)। घालि—निछले (दीन० २); छंडि (प्रताप०); हालि (सर०)। बरि—बल (वही)। भेदि—बेधि (प्रताप०)। [४४] काहे०—तब काहे नहीँ जब (सर०)। तोर्‍यो—ऐँच्यो (वही)। [४५] वहि—उठि (सर०)।

(दोहा)

सीताजू रघुनाथ कौं अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सबनि की हृदयावलि-भूपाल ॥४६॥

(चित्रपद)

सीय जहीं पहिराई। रामहिं माल सुहाई।
दुंदुभि देव बजाए। फूल तहीं बरसाए ॥४७॥

इति श्रीमदिंद्रजीतविरचितायां समस्तलोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायां
धनुषभंजनो नाम पञ्चमः प्रकाशः।

६

सतानंद—(तोटक)

बिनती रिषिराज की चित्त धरौ। चहुँ भैयन के अब ब्याह करौ।
अब बोलहु बेगि बरात सबै। दुहिता समदौ सुख पाइ अबै ॥१॥

(दोहा)

पठई तब ही लगन लिखि अवधपुरी सब बात।
राजा दसरथ सुनत सजि चार्‍यो चलीं बरात ॥२॥

(मोटनक)

आए दसरथ्थ बरात सजे। दिगपाल गयंदनि देखि लजे।
चार्‍यो दल दूलह चारु बने। मोहे सुर औरनि कौन गने ॥३॥

(तारक)

बनि चारि बरात चहूँदिसि आई। नृप चारि चमू अगवान पठाई।
जनु सागर कौं सरिता पगु धारी। तिनके मिलिबे कहँ बाँह पसारी ॥४॥

(दोहा)

बारोठे को चारु करि कहि 'केसव' अनुरूप।
द्विज दूलह पहिराइयो पहिराए सब भूप ॥५॥

---

[१] बोलहु—बोलिये (दीन०२)। दुहिता—बिटिया (दीन० १, प्रताप०); मिलि जाहि सबै (सर०)। अबै—तबै (वही)। [२] सजि—ही (प्रताप० काशि०, सर०, कौमुदी)। चार्‍यो—चाह्यौ (प्रकाशिका)। [५] द्विज—नृप (प्रताप०, सर०)। पहिराइयो—पहिराइ कै (वही)।

(त्रिभंगी)

दसरथ्थ-सँघाती सकल बराती बनि बनि मंडप माहँ गए।
आकासबिलासी प्रभाप्रकासी जलजगुच्छ जनु नखत नए।
अति सुंदर नारी सब सुखकारी मंगल गारी देन लगीं।
बाजे बहु बाजत जनु घन गाजत जहँ तहँ सुभ सोभ जगीं ॥६॥

(दोहा)

रामचंद्र सीतासहित सोभत हैं तेहि ठौर।
सुबरनमय मनिमय खचित सुभ सुंदर सिरमौर ॥७॥

(छप्पय)

बैठे मागध सूत बिबिध बिद्याधर चारन।
'केसवदास' प्रसिद्ध सिद्ध सब असुभनिवारन।
भरद्वाज जाबालि अत्रि गौतम कस्यप मुनि।
बिस्वामित्र पवित्र चित्रमति बामदेव पुनि।
सब भाँति प्रतिष्ठित निष्ठमति तहँ बसिष्ठ पूजत कलस।
सतानंद मिलि उच्चरत साखोच्चार सबै सरस ॥८॥

(अनुकूला)

पावक पूज्यो समिध सुधारी। आहुति दीनी सब सुखकारी।
दै तब कन्या बहु धन दीन्हो। भाँवरि पारि जगत जस लीन्हो ॥९॥

(स्वागता)

राजपुत्रिकनि स्यों छबि छाए। राजराज सब डेरहि आए।
हीर चीर गज बाजि लुटाए। सुंदरीन बहु मंगल गाए ॥१०॥

(सोरठा)

बासर चौथे जाम, सतानंद आगैं दए।
दसरथ नृप के धाम, आए सकल बिदेह बनि ॥११॥

(भुजंगप्रयात)

कहूँ सोभना दुंदुभी दीह बाजैं। कहूँ भीम भंकार कर्नाल साजैं।
कहूँ सुंदरी बेनु बीना बजावैं। कहूँ किन्नरी किन्नरी लै सुगावैं ॥१२॥

---

[६] जलज०-जनु जगछत्र नछत्र गए (सर०)। सुभ-सब (प्रताप०, सर०)। [७] सहित-बने (प्रताप०, सर०)। खचित-सुखद (वही); सहित (कौमुदी)। [८] सब-अब (प्रताप०); सुभ (काशि०)। भाँति-जगत (प्रताप०, सर०)। सतानंद-सुभ सतानंद (कौमुदी)। [९] तब०-कन्या बहुतै (सर०)। पारि०-पारि जग (प्रताप०)। [११] आगैं दए-आगू दिये (काशि०, प्रकाशिका, कौमुदी); अग्या दियो (प्रताप०)। [१२] सुंदरी-नवीनी (दीन०१)। लै सुगावैं-गीत गावैं (दीन० २, सर०)।

कहूँ नृत्यकारी नचैं सोभ साजैं। कहूँ भाँड बोलैं कहूँ मल्ल गाजैं ॥
कहूँ भाट भाख्यो करैं मान पावैं। कहूँ लोलिनी बेड़िनी गीत गावैं ॥१३॥
कहूँ बैल भैंस भिरैं भीम भारे। कहूँ एन एनीन के हेतकारे ॥
कहूँ बोक बाँके कहूँ मेष सूरे। कहूँ मत्त दंती लरैं लोहपूरे ॥१४॥

(दोहा)

आगे ह्वै दसरथ लिये भूपति आवत देखि।
राज राज मिलि भेटियो ब्रह्म ब्रह्मरिषि लेखि ॥१५॥

सतानंद—(शोभना)

सुनि भरद्वाज बसिष्ठ अरु जाबालि बिस्वामित्र।
सबै हौ तुम ब्रह्मरिषि संसार सुद्ध चरित्र।
कीन्ही जु तुम या बंस पै कहि एक अंस न जाइ।
स्वाद कहिबे कौं समर्थ न गूँग ज्यौं गुर खाइ ॥१६॥

(सुखदा)

ज्यौं अति प्यासो पावै मग मैं गंगजलु।
प्यास न एक बुझाइ, बुझै त्रैतापबलु।
त्यौं तुम तैं हमकौं न भयो अब एक सुख।
पूजे मन के काम, जु देख्यो रामसुख ॥१७॥

जनक —(सवैया)

सिद्ध समाधि सजैं अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई।
रुद्र के चित्त-समुद्र बसै नित ब्रह्महु पै बरनी नहिँ जाई।
रूप न रंग न रेख बिसेष अनादि अनंत जु बेदन गाई।
'केसव' गाधि के नंद हमैं वह ज्योति सो मूरतिवंत दिखाई ॥१८॥

अन्यच्च—(तारक)

जिनके पुरिषा भुव गंगहि ल्याए। नगरी-सँग स्वर्ग सदेह सिधाए।
जिनके सुत पाहन तैं तिय कीनी। हर को धनु भंग अमे पुर तीनी ॥१९॥
जिन आपु अदेव अनेक सँहारे। सब काल पुरंदर के रखवारे।
जिनकी महिमा महि अंत न पायो। हम को बपुरा जस बेदन गायो ॥२०॥

---

[१३] भाँड–भाट (कौमुदी)। भाट०–भाँड़ भाँड्यो (कौमुदी)। भिरैं–लरैं (सर०)। [१५] भेटियो–बैठियो (प्रताप०, काशि०, सर०, कौमुदी, प्रकाशिका)। [१६] अरु–मुनि (प्रताप०), यो (सर०)। पै–कौं (प्रताप०, सर०)। [१७] पावै०–पाइ पियै मग (प्रताप०); माँगि नीर लहै (कौमुदी)। अब–कछु कौमुदी)। [१८] समाधि–समाजि (दीन० १)। नहिँ–जो न (काशि०)। [१९] सँग–सुभ (कौमुदी)। अमे–भए (सर०)। अनेक–न नेक (वही)। [२०] महिमा०–महिमाहि अनंत पायो (काशि०, कौमुदी)। जस–सब (प्रताप०)। बेदन–देवन (कौमुदी)।

(तारक)

बिनती करियै जन जौ जिय लेखौ। दुख देख्यो ज्यौं कालिह त्यौं आजहु देखौ।
यह जानि हिये ढिठई मुख भाषी। हम हैं चरनोदक के अभिलाषी ॥२१॥

(तामरस)

जब रिषिराज बिनै करि लीनो। सुनि सबके करुनारस भीनो।
दसरथ राय यहै जिय मानी। यह वह एक भई रजधानी ॥२२॥

दसरथ—(दोहा)

हमकौं तुमसे नृपति की दासी दुर्लभ राज।
पुनि तुम दीन्ही कन्यका त्रिभुवन की सिरताज ॥२३॥

भरद्वाज—(तामरस)

सुख दुख आदि सबै तुम जीते। सुर नर को बपुरे बलरीते।
कुल महँ होइ बड़ो लघु कोई। प्रतिपुरुषानि बड़ो सु बड़ाई ॥२४॥

वसिष्ठ—(विजय)

एक सुखी इहि लोक बिलोकिय है उहि लोक निरै पगु धारी।
एक इहाँ दुख देखत 'केसव' होत उहाँ सुरलोकबिहारी।
एक इहाँऊ उहाँ अति दीन सु देत दुहूँ दिसि के जन गारी।
एकहि भाँति सदा सब लोकनि है प्रभुता मिथिलेस तिहारी ॥२५॥

जाबालि—(विजय)

ज्यौं मनि मैं अति जोति हुती रबि तैं कछु और महाछबि छाई।
चंदहि बंदत हैं सब 'केसव' ईस तैं बंदनता अति पाई।
भागीरथी हुतियै अति पावन बावन तैं अति पावनताई।
त्यौं निमिबंस बड़ोई हुत्यो भई सीयसँ-जोग बड़ीयै बड़ाई ॥२६॥

विश्वामित्र—(मालिनी)

गुनगन-मनिमाला चित्त चातुर्यसाला। जनक सुखद गीता पुत्रिका पाइ सीता।
अखिल-भुवनभर्ता ब्रह्मरुद्रादि-कर्ता। थिरचर-अभिरामी कीय जामातु नामी ॥२७॥

(दोहा)

पूजि राजरिषि ब्रह्मरिषि दुंदुभि दीह बजाइ।
जनक कनकमंदिर गए गुरुसमेत सुख पाइ ॥२८॥

---

[२१] ज्यौं—ज्यौं (काशि०); सु (सर०)। आजहु—आपुहि (दीन० २)। [२२] राम—राज (प्रताप०, सर०)। यहै जिय—महासुख (दीन० २)। [२४] आदि—आशु (प्रताप०) [२५] मिथिलेस—सब लोक (दीन० २)। [२६] महा—कछू (सर०)। बंदनता—बंदकता (प्रताप०, सर०)।

(चामर)

आसमुद्र के क्षितीस और जाति को गनै ।
राजभौन भोज कौं सबै जने गए बनै ।
भाँति भाँति अन्न पान व्यंजनादि जँवहीं ।
देत नारि गारि पूरि भूरि भूरि भँवहीं ॥२९॥

(हरिगीत)

अब गारि तुम कहँ देहिं हम कहि कहा दूलह रामजू ।
कछु बाप प्रियपरदार सुनियत करी कहत कुबाम जू ।
को गनै कितने पुरुष कीन्हे कहत सब संसार जू ।
सुनि कुँवर चित दै बरनि ताको कहिय सब ब्यौहार जू ॥३०॥

बहु रूप स्यों नवयौबना बहु रतनमय वपु मानिये ।
पुनि बसन रत्नाकर बन्यो अति चित्त चंचल जानिये ।
सुभ सेष-फन-मनिमाल पलिका परति पद्धति प्रबंध जू ।
करि सीस पस्चिम पाइ पूरुब गात सहज सुगंध जू ॥३१॥

वह हरी हठि हिरनाक्ष दैयत देखि सुंदर देह सौं ।
बर बीर जज्ञ बराह बरहीं लई छीनि सनेह सौं ।
ह्वै गई बिह्वल अंग पृथु फिर सजे सकल सिंगार जू ।
पुनि कछुक दिन बस भई ताके लियो सरबसु सार जू ॥३२॥

वह गयो प्रभु परलोक कीन्हो हिरनकस्यप नाथ जू ।
तेहि भाँति भाँतिन भोगियो भ्रमि पल न छोड्यो साथ जू ।
वह असुर श्रीनरसिंह मार्‍यो लई प्रबल छड़ाइकै ।
लै दई हरि हरिचंद राजहिं बहुत जिय सुख पाइकै ॥३३॥

हरिचंद बिस्वामित्र कौं दइ दुष्टता जिय जानिकै ।
तेहि बरो बलि बरिबंड बरहीं बिप्र तपसी मानिकै ।
बलि बाँधि छल बल लई बामन दई इंद्रहि आनिकै ।
इंद्र तजि पति कर्‍यो अर्जुन सहसभुज पहिचानिकै ॥३४॥

---

[२९] जँवहीं–को गनै (सर०)। भँवहीं–भेवनै (वही)। [३०] कितने–जितने (प्रताप०, सर०)। सब–यह (वही)। [३१] परति–पौढ़ि (कौमुदी)। पद्धति–करति (काशि०)। [३२] बरहीं–सोवत (दीन० २); तब वह (प्रताप०, सर०)। पृथु०–पृथवी (दीन० १)। सरबसु–सब रस (दीन० १, प्रताप०, सर०)। प्रभु–पृथु (दीन० १)। [३४] दुष्टता०–दुष्टतन मन (प्रताप०, सर०)। बल–करि (प्रताप०)। भुज–कर (सर०)।

तब तासु छबिमद छक्यो अर्जुन हत्यो रिषि जमदग्निजू।
परसुराम सो सकुल जाख्यो प्रबल बल की अग्निजू।
तेहिँ बैर तब तिन सकल क्षत्रिन मारि मारि बनाइकै।
इकईस बेरा दई बिप्रन रुधिरजल अन्हवाइकै ॥३५॥

वह रावरे पितु करी पत्नी तजी बिप्रन थूँकिकै।
अरु कहत हैँ सब रावनादिक रहे ताकहँ ढूँकिकै।
यहि लाज मरियत ताहि तुमसौँ भयो नातो नाथजू।
अब और मुख निरखै न ज्यौँ त्यौँ राखिये रघुनाथजू ॥३६॥

(सोरठा)

प्रात भए सब भूप, बनि बनि मंडप मैँ गए।
जहाँ रूप अनुरूप, ठौर ठौर सब सोभिजैँ ॥३७॥

(नराच)

रची बिरंचि बास सी निथंबराजिका भली।
जहाँ तहाँ बिछावने बने घने थली थली।
बितान सेत स्याम पीत लाल नीलिका रँगे।
मनो दुहूँ दिसान के समान बिंब से जगे ॥३८॥

(पद्धटिका)

गजमोतिन की अवली अपार। तहँ कलसनि पर उरमति सुढार।
सुभ पूरित रति जनु रुचिर धार। जहँ तहँ अकासगंगा उदार ॥३९॥

गजदंतन की अवली सुदेस। तहँ कुसुमराज राजत सुबेस।
सुभ नृपकुमारिका करत गान। जनु देवनि के पुष्पक बिमान ॥४०॥

(तामरस)

इत उत सोभन सुंदरि डोलैँ। अरथ अनेकनि बोलनि बोलैँ।
सुख मुखमंडल चित्तनि मोहैँ। मनहु अनेक कलानिधि सोहैँ ॥४१॥

भृकुटि-बिलास प्रकासित देखे। धनुष-मनोज मनोमय लेखे।
चरचित हास चंद्रिकनि मानौ। सुख मुखबासनि बासित जानौ ॥४२॥

---

[३५] तिन—उन (प्रताप०); ही (काशि०)। इक०—इकबीस (कौमुदी)। बेरा—बार सु (प्रताप०); बेरिनि (सर०)। [३६] अरु—अत्र (प्रताप०)। 'सर०' मैँ इतना और है—बहु भाँति भाँतिन बरनिकै सब गारि गाइ सुनाइयौ। श्रीरामचंद्ररु सहित सीता सुनत अति सुख पाइयौ ॥ [३७] रूप—ठौर (सर०)। अनुरूप—बहुरूप (प्रताप०, सर०)। ठौर०—सबही बिधि (सर०)। [३८] बिरंचि—बिचित्र (दीन० १, प्रताप०, सर०)। नीलिका—नील के (कौमुदी)। [३९] अवली—दुलरी (दीन० २)। तहँ कलसनि०—कलसनि ऊपर सुरमनि सुढार (दीन० २)। [४१] सोभन—सोभित (काशि०)। [४२] मनो०—मनौ बिधि (सर०)। मानौ—जानौ (प्रताप०, सर०)। जानौ—मानौ (वही)।

(दोहा)

अमल कपोलै आरसी, बाँहैं चंपकमार।
अवलोकनै बिलोकिजै, मृगमदमय घनसार ॥४३॥

गति के भार महाउरै अंग अंस के भार।
'केसव' नखसिख सोभिजै सोभाई सिंगार ॥४४॥

(सवैया)

बैठे जराय-जरे पलिका पर रामसिया सबके मन मोहैं।
ज्योतिसमूह रहो मढ़िकै सुर भूलि रहे बपुरा नर को हैं।
'केसव' तीनहु लोकन की अवलोकि बृथा उपमा कबि टोहैं।
सोभन सूरजमंडल माँझ मनौ कमला-कमलापति सोहैं ॥४५॥

(दोहा)

गंगाजल की पाग सिर सोहत श्रीरघुनाथ।
सिवसिर गंगाजल किधौं चंद्र चंद्रिका साथ ॥४६॥

(तोमर)

कछु भृकुटि कुटिल सुबेस। अति अमल सुमिल सुदेस।
बिधि लिख्यो सोधि सुतंत्र। जनु जयाजय के मंत्र ॥४७॥

(दोहा)

जदपि भृकुटि रघुनाथ की कुटिल देखियत जोति।
तदपि सुरासुर नरनि की निरखि सुद्ध गति होति ॥४८॥

श्रवन मकर कुंडल लसत मुख सुषमा एकत्र।
ससि-समीप सोहत मनो श्रवन मकर नक्षत्र ॥४६॥

(पद्धटिका)

अति बदन सोभ सरसी सुरंग। तहँ कमल नयन नासा तरंग।
जग जुवति-चित्त बिभ्रम-बिलास। तेइ भँवर भँवत रस-रूप-आस ॥५०॥

(निशिपालिका)

सोभिजति दंतरुचि सुभ्र उर आनिये।
सत्य जनु रूप अनुरूपक बखानिये।
ओठरुचि-रेख सबिसेष सुभ श्रीरये।
सोधि जनु ईस सुभ लक्षन सबै दये ॥५१॥

---

[४३] बाहैँ—बाहू (काशि०); बाहुइ (कौमुदी)। [४४] अंस—अंग (काशि०)। [४५] सोभन—सोभत (प्रताप०)। [४६] किधौँ—कियो (प्रताप०)। [४७] जयाजय—मयाजय (सर०)। [४६] श्रवन०—श्रवनन्ह मकर नछत्र (सर०)। [५०] सोभ—जोति (दीन० २)। तहँ—जहँ (प्रताप०)। जग—जनु (काशि०); जन (कौमुदी)। बिभ्रम—नासा (दीन० २)। [५१] जनु०—अनुरूप जनु रूपक (प्रताप०, सर०)। सुभ०—सह है रयो (प्रताप०); सह हे रये (सर०)।

(दोहा)

ग्रीवा श्रीरघुनाथ की लसति कंबु-बरबेष।
साधु मनो बच काय की, मानो लिखी त्रिरेख ॥५२॥

(सुंदरी)

सोभन दीरघ बाहु बिराजत। देव सिहात अदेव ति लाजत।
बैरिन कौं अहिराज बखानहु। है हितकारिन की धुज मानहु ॥५३॥
यों उर मैं भृगुलात बखानहु। श्रीकर को सरसीरुह मानहु।
सोहति है उर मैं मनि यों जनु। जानकि को अनुराग रह्यो मनु ॥५४॥

(दोहा)

सोहत जनरत राम उर देखत तिनको भाग।
आइ गयो ऊपर मनो अंतर को अनुराग ॥५५॥

(पद्धटिका)

सुभ मोतिन की दुलरी सुदेस। जनु बेदन के आखर सुबेस।
गजमोतिन की माला बिसाल। मन मानहु संतन के रसाल ॥५६॥

(विशेषक)

स्याम दुवौ पग लाल लसै दुति यों तल की।
मानहु सेवति जोति गिरा जमुनाजल की।
पाटजटी अति सेत सु हीरन की अवली।
देवनदी-कन मानहु सेवत भाँति भली ॥५७॥

(दोहा)

को बरनै रघुनाथ-छबि, 'केसव' बुद्धिउदार।
जाकी सोभा सोभिजति, सोभा सब संसार ॥५८॥

(दंडक)

को है दमयंती इंदुमती रति रातिदिन,
होहिं न छबीली छिनछबि जौ सिँगारिये।
'केसव' लजात जलजात जातबेद ओप,
जातरूप बापुरो बिरूप सो निहारिये।

---

[५२] बर—कें (प्रताप०, सर०)। [५३] ति—नि (प्रताप०); ते (काशि०); त (कौमुदी)। [५४] यौं—ज्यौं (सर०)। लात-लता (वही)। [५५] जनरत-पनरत (प्रताप०); पानत (सर०)। अंतर०—उरअंतर (वही)। [५६] सुभ—अति (प्रताप०)। रसाल—मराल (काशि०)। [५७] सेवति—सोहति (सर०)। [५८] को—क्यौं (प्रताप०, सर०)। उदार—तुसार (प्रताप०)। सोभा—किरपा (कौमुदी)।

मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो,
चंद बहुरूप अनुरूपकै बिचारिये।
सीताजू के रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूप ही रूपक तौ वारि वारि डारिये ॥५६॥

(गीतिका)

तहँ सोभिजैं सखि सुंदरी जनु दामिनी बपु मंडिकै।
घनस्याम कौं जनु सेवहीं जड़ मेघ-ओघनि छंडिकै।
इक अंग चर्चित चारु चंदन चंद्रिका तजि चंद कौं।
जनु राहु के भय सेवहीं रघुनाथ आनँदकंद कौं ॥६०॥

मुख एक है नत लोल-लोचन लोक-लोचन कौं हरे।
जनु जानकी-सँग सोभिजै सुभ लाज देहनि कौं धरे।
तहँ एक फूलन के बिभूषन एक मोतिन के किये।
जनु छीर-सागर देवता तनु छीर छीटन कौं छिये ॥६१॥

(सोरठा)

पहिरे बसन सुरंग, पावकजुत स्वाहा मनो।
सहज सुगंधित अंग, मानहु देवी मलय की ॥६२॥

(चामर)

मत्त दंतिराज राजि बाजिराज राजि कै।
हेम हीर हार मुक्त चीर चारु साजिकै।
बेष बेष बाहिनी असेष बस्तु सोधियो।
दायजो बिदेहराज भाँति भाँति को दियो ॥६३॥

बस्त्र भौन स्यौं बितान आसने बिछावने।
अस्त्र सस्त्र अंगत्रान भाजनादि को गने।
दासि दास बासि बास राम पाट को कियो।
दायजो बिदेहराज भाँति भाँति को दियो ॥६४॥

---

[५६] छिनछबि—छबि इन (काशि०)। निरूपम०—निरूप निरूपम तौ निरूप (प्रताप०); निरूपति न रूप मानि रूप (सर०)। को हैं—होत (सर०)। रूपक०—रूप कौं तौ (प्रताप०); रूप केतौ (सर०)। [६०] बपु—दुति (प्रताप०)। कौं जनु—को तन (सर०, कौमुदी)। [६१] [कौं—कै (कौमुदी)। संग—सुभ (सर०)। देहनि—देहहिं (कौमुदी)। कौं—सौं (सर०)। छीटनि—की छिटकनि (सर०)। [६३] राजि कै—साजिकै (प्रताप०)। साजिकै—आजिकै (वही)। [६४] भाजनादि—भोजनादि (सर०)।

(दोहा)

जनकराइ पहिराइयो, राजा दसरथ साथ।
छत्र चमर गज बाजि दै आसमुद्र क्षितिनाथ ॥६५॥

(निशिपालिका)

दान दिय राइ दशरथ्थ सुख पाइकै।
सोधि रिषिब्रह्म रिषिराजन बुलाइकै।
तोषि जाचक सकल दादुर मयूर से।
मेघ जिमि बर्षि गज बाजि पयपूर से ॥६६॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां श्रीसीतारामविवाहवर्णनं नाम षष्ठः प्रकाशः ॥

७

(दोहा)

बिस्वामित्र बिदा भए जनक फिरे पहुँचाइ।
मिले आगिली फौज कौं परसुराम अकुलाइ ॥१॥

(चंचरी)

मत्त दंति अमत्त ह्वै गए देखि देखि न गाजहीँ।
ठौर ठौर सुदेस 'केसव' दुंदुभी नहि बाजहीँ।
डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लय भाजहीँ।
काटिकै तनत्रान एकनि नारि भेषन साजहीँ ॥२॥

(दोहा)

बामदेव रिषि सौँ कह्यो, परसुराम रनधीर।
महादेव को धनुष यह कैँ तोर्यो बलबीर ॥३॥

---

[६५] जनकराइ–जनकराज (काशि०, सर०)। [६६] जाचक०–सब जाचकनि (प्रताप०)।

[२] एकनि–एक ते (काशि०); एकहि (कौमुदी)। [३] यह–कहि (प्रताप०, सर०)। कैँ–को (कौमुदी)।

वामदेव—(दोहा)

महादेव को धनुष यह परसुराम रिषिराज।
तोर्‍यो 'रा' यह कहत ही समुझ्यो रावनराज ॥४॥

परशुराम—(दोहा)

अति कोमल नृपसुतन की ग्रीवा दली अपार।
अब कठोर दसकंठ के काटहि कंठ कुठार ॥५॥

(विजय)

बाँधिकै बाँध्यो जु बालि बली पलना पर लै सुत के हित ठाटै।
हैहयराज लियो गहि 'केसव' आयो हो छुद्र जु छिद्रनि डाटै।
बाहर काढ़ि दियो बलिदासिन जाइ पर्‍यो जु पताल की बाटै।
तोकौं कुठार बड़ाई कहा कहि ता दसकंठ के कंठनि काटै ॥६॥

(सोरठा)

जद्यपि है अति दीन, मोहि तऊ खल मारने।
गुरु-अपराधहि लीन, 'केसव' क्योंकरि छाँडियै ॥७॥

(चंद्रकला)

बर बान सिखीन असेष समुद्रहि सोखि सखा सुखहीं तरिहौं।
पुनि लंकहि औटि कलंकित कै फिरि पंक कनंकहि की भरिहौं।
सब भूँजिकै राकस खाकस कै दुख दीरघ देवन को हरिहौं।
सितिकंठ के कंठन को कठुला दसकंठ के कंठन कौं करिहौं ॥८॥

(संयुक्ता)

परशुराम—यह कौन को दल देखियै ?
वामदेव— यह राम को प्रभु लेखियै।
परशुराम—कहि कौन राम बिचारियै ?
वामदेव— सर ताड़का जिहि मारियै ॥९॥

(त्रिभंगी)

परशुराम—ताड़का सँहारी, तिय न बिचारी, कौन बड़ाई ताहि हने।
बामदेव— मारीचहु तो सँग, प्रबल सकल खल, अरु सुबाहु काहू न गने।

[४] यह–सुनि (प्रताप०, सर०)। [५] काटहि–काटहु (काशि०, सर०, कौमुदी)। [६] के–सो (प्रताप०, सर०)। छिद्रनि–छिद्रहि (कौमुदी)। बाटै–हाटै (प्रताप०, सर०)। [७] तऊ०–तथापि सु (प्रताप० सर०)। क्यों०–कैसे (प्रताप०, सर०)। [८] पुनि–अरु (कौमुदी)। कै०–की पुनि (वही)। सब–भल (वही)। राकस०–राख सुखै करि (वही)। [९] यह राम–कह राम (प्रताप०); जहाँ राम (सर०)। बिचारियै–न जानियो (काशि०, कौमुदी)। जिहि०–जेहि भानियो (काशि०); जिमि मारियै (सर०); जिन मारियो (कौमुदी)।

करि क्रतु रखवारी, गुरु सुखकारी, गौतम की तिय सुद्ध करी।
जिन हर-धनु खंड्यो, रघुकुल मंड्यो सीय स्वयंबर माँझ बरी ॥१०॥

परशुराम—(दोहा)

हरहू होतो दंड द्वै धनुष चढ़ावत कष्ट।
देखौ महिमा काल की कियो सो नरसिसु नष्ट ॥११॥

(किरीट)

बोरौं सबै रघुबंस कुठार की धार मैं बारन बाजि सरथ्थहि।
बान की बायु उड़ाइकै लच्छन लक्ष करौं अरिहा समरथ्थहि।
रामहि बामसमेत पठै बन कोप के भार मैं भूँजौं भरथ्थहि।
जौं धनु हाथ धरै रघुनाथ तौ आजु अनाथ करौं दसरथ्थहि ॥१२॥

(सोरठा)

राम देखि रघुनाथ, रथ तैं उतरे बेगि दै।
गहे भरथ को हाथ, आवत राम बिलोकियो ॥१३॥

परशुराम—(दंडक)

अमल सजल घनस्याँम बपु 'केसोदास',
चंद्रहू तैं चारु मुख सुषमा को ग्राम है।
कोमल कमलदल दीरघ बिलोचननि,
सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नाम है।
बालक बिलोकियत पूरन पुरुष गुन,
मेरो मन मोहियत ऐसो एक धाम है।
बैर मानि बामदेवजू को धनु तोख्यो इन,
जानत हौं बीस बिसे रामबेष काम है ॥१४॥

भरत—(गीतिका)

कुसमुद्रिका समिधै श्रुवा कुस औ कमंडल कौं लियैं।
कटिमूल स्रुबन-तर्कसी भृगुलात सी दरसै हियैं।
धनु बान तिक्ष कुठार 'केसव' मेखला मृगचर्म स्यौं।
रघुबीर को यह देखिये रस बीर सात्विक धर्म स्यौं ॥१५॥

---

[१०] क्रतु—मख (प्रताप०)। रघुकुल—जगयश (कौमुदी)। [११] देखौ—देखौ (प्रताप०)। [१२] कोप—सोक (काशि०)। भूँजौं—भूजि (प्रताप०, सर०)। धरै—लियो (काशि०, सर०)। [१४] एक—रूप (कौमुदी)। मानि०—जियमानि बामदेव को धनुष तोरो (वही)। [१५] कटि—कर (काशि०, सर०)। सुब्रन—सर्वन (काशि०); सुभ्रस (प्रताप०); श्रौननि (कौमुदी)। दरसै—समझौ (सर०); समुझै (दीन० १, २)। स्यौं—सो (काशि०, सर०)।

राम—(नराच)

प्रचंड हैहयाधिराज दंडमान जानिये। अखंड कीर्ति लेय भूमि देयमान मानिये।
अदेव देव जेय भीत रक्षमान लेखिये। अमेय तेज भर्गभक्त भार्गवेस देखिये ॥१६॥

(तोमर)

सह भर्थ लक्ष्मन राम। चहुँ कीन आनि प्रनाम।
भृगुनंद आसिष दीन। रन होहु अजय प्रबीन ॥१७॥
परशुराम—सुनि रामचंद्र कुमार। मन बचन कीर्ति उदार।
रामचंद्र— भृगुबंस के अवतंस। मनवृत्ति है केहि अंस ॥१८॥

परशुराम—(मदिरा)

तोरि सरासन संकर को सुभ सीय स्वयंबर माँझ बरी।
तातेँ बढ़्यो अभिमान महा मन मेरियौ नेक न संक करी।
राम— सो अपराध परो हमसोँ अब क्योँ सुधरै तुम ही धौँ कहौ।
परशुराम—बाहु दै दोऊ कुठारहिं 'केसव' आपने धाम को पंथ गहौ ॥१९॥

राम—(कुंडलिया)

टूटै टूटनहार तरु बायुहि दीजत दोष।
त्योँ अब हर के धनुष को हम पर कीजत रोष।
हम पर कीजत रोष कालगति जानि न जाई।
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई।
होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै।
होइ तिनूका बज्र बज्र तिनुका ह्वै टूटै ॥२०॥

परशुराम—(माधवी)

'केसव' हैहयराज को मास हलाहल कौरन खाइ लियो रे।
ता लगि मेद महीपन को घृत घोरि दियो न सिरानो हियो रे।
मेरो कह्यो करि कोप कराल जौ चाहत है बहुकाल जियो रे।
तौ लौँ नहीँ सुख जौ लहु तू रघुबंस को सोन सुधा न पियो रे ॥२१॥

---

[१७] कीन–किये (काशि०, सर०, कौमुदी)। [१८] कीर्ति–प्रकृति (सर०) मन–मम (प्रताप०, सर०)। [१९] सुभ–सुख (सर०)। परो०–अगाध परो (प्रताप०) अगाध कर्यो (सर०)। धौँ–तो (कौमुदी)। [२०] बायुहि–बातहि (प्रताप०, सर०) पर–सह (सर०)। मेटी–केहूँ (सर०)। होइ०–ह्वै तिनुका सम (प्रताप०); ह्वै तिनुका ते (सर०) ह्वै–सम (प्रताप०)। [२१] कोप०-मित्र कुठार (कौमुदी)। बहु–चिर (प्रताप०)। मेरो०-बीर षड़ानन को मद 'केसव' सो पल मैँ करि पान लियो रे (काशि०)। लहु–लग (कौमुदी) रघुबंस–रघुबीर (वही)।

भरत—(तन्वी)

बोलत कैसे, भृगुपति सुनिये, सो कहिये तन मन बनि आवै।
आदि बड़े हौ, बड़प्पन राखौ जातें सब जगजन सुख पावै।
चंदन हू में अति तन घरषे, आगि उठै यह गुनि सब लीजै।
हैहय मारे, नृपति सँघारे, यह जस लै किन जुग जुग जीजै ॥२२॥

परशुराम—(नराच)

भली कही भरथ्थ तैं उठाउ आगि अंग तैं।
चढ़ाउ चोपि चाप आप बान लै निषंग तैं।
प्रभाउ आपनो दिखाउ छाँडि बाल भाइ कै।
रिझाउ राजपुत्र मोहिं राम लै छड़ाइ कै ॥२३॥

(सोरठा)

लियो चाप जब हाथ, तीनहु भैयन रोष करि।
बरज्यो श्रीरघुनाथ, तुम बालक जानौ कहा ॥२४॥

राम—(दोहा)

भगवंतनि नहिं जीतिये कबहूँ कीन्हें सक्ति।
जीतिय एकै बात तैं, कीन्हें केवल भक्ति ॥२५॥

(हरिगीत)

जब हन्यो हैहयराज इन बिन क्षत्र क्षितिमंडल कर्यो।
गिरिबेध षनमुख जीति तारकनंद को जब ज्यौं हर्यौ।
सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतनंदिनी।
वह रेनुका तिय धन्य धरनी में भई जगबंदिनी ॥२६॥

परशुराम—(तोमर)

सुनि राम सीलसमुद्र। तव बंधु हैं अति क्षुद्र।
मम बाड़वानल कोप। अब कियो चाहत लोप ॥२७॥

शत्रुघ्न—(दोधक)

हौ भृगुनंद बली जग माहीँ। राम बिदा करिये घर जाहीँ।
हौं तुमसौं फिरि जुद्धहि माँडौं। क्षत्रियबंस को बैर लै छाँडौं ॥२८॥

---

[२२] तन०—जो तन मन भावै (प्रताप०)। जातैं०—जातैं तुम सब जग जसु पावौ (काशि०); जा हित तूँ सब जग जस पावै (कौमुदी)। घरषे—घसिये (वही)। गुनि—मम मतु (प्रताप०)। नृपति०—नृपजन सँहरे सो (कौमुदी)। [२३] चोपि—खैंचि (प्रताप०)। लै—कौं (प्रताप०, सर०)। [२४] जानौ—जानत (कौमुदी)। [२५] बात—बार (प्रताप०)।

(तोटक)

यह बात सुनी भृगुनाथ जबै। कहि रामहि लै घर जाहु अबै।
इन पै जग जीवत जौ बचिहौं। रन हौं तुमसौं फिरि कै रचिहौं ॥२९॥

परशुराम—(दोहा)

निज अपराधी क्यौं हतौं गुरु-अपराधी छाँडि।
तातैं कठिन कुठार अब रामहिँ सौं रन माँडि ॥३०॥

(माधवी)

भूतल के सब भूपन को मद भोजन तौ बहु भाँति कियोई।
मोद सौं तारकनंद को मेद पछ्यावरि पान सिरायो हियोई।
खीर षड़ानन को मद 'केसव' सो पल मैं करि पान लियोई।
राम तिहारेइ कंठ को सोनित पान कौं चाहै कुठार पियोई ॥३१॥

लक्ष्मण—(तोटक)

जिनको सु अनुग्रह बृद्धि करै। तिनको किमि निग्रह चित्त परै।
जिनके जग अक्षत सीस धरै। तिनको तन सक्षत कौन करै ॥३२॥

राम—(मदिरा)

कंठ कुठार परै अब हार कि फूलै असोक कि सोक समूरो।
कै चित्रसारि चढ़ै कि चिता, तन चंदन-चित्र कि पावक पूरो।
लोक मैं लोक बड़ो अपलोक, सु 'केसवदास' जु होउ सु होऊ।
बिप्रन के कुल कौं भृगुनंदन सूर न सूरज के कुल कोऊ ॥३३॥

परशुराम—(विशेषक)

हाथ धरे हथियार सबै तुम सोभत हौ।
मारनहारहि देखि कहा मन छोभत हौ।
क्षत्रिय के कुल ह्वै किमि बैन न दीन रचौ।
कोटि करौ उपचार न कैसहु मीचु बचौ ॥३४॥

लक्ष्मण—

क्षत्रिय ह्वै गुरु लोगन को प्रतिपाल करैं।
भूलिहु तौ तिनके गुन औगुन जी न धरैं।
तौ हमकौं गुरुदोष नहीं अब एक रती।
जौ अपनी जननी तुम ही सुख पाइ हती ॥३५॥

---

[३१] मद-भिरि (प्रताप०, सर०)। करि०—यह खाइ (प्रताप०)। कियोई—पियोई (कौमुदी)। [३२] परै—धरै (प्रताप०, सर०)। [३३] चित्र—चारु (प्रताप०, सर०); चर्चि (कौमुदी)। बड़ो-बढ़ै (प्रताप०, सर०)। [३४] किमि०—कोउ दीन न बैन रचै (प्रताप०, सर०)। [३५] तौ, जौ-त्यौं, ज्यौं (प्रताप०, सर०)।

परशुराम—(मदिरा)

लक्ष्मन के पुरिषान कियो पुरुषारथ सो न कह्यो परई।
बेष बनाइ कियो बनितानि को देखत 'केसव' ह्यौ हरई।
कूर कुठार निहारि तजे फल ताको यहै जु हियो जरई।
आजु तैं 'केसव' ताकों महा धिक क्षत्रिन पै जु दया करई ॥३६॥

(गीतिका)

तब एक बिंसति बेर मैं बिन क्षत्र की पृथिवी रची।
बहु कुंड सोनित सों भरे पितृ-तर्पनादि क्रिया सची।
उबरे जु क्षत्रिय क्षुद्र भूतल सोधि सोधि सँघारिहौं।
अब बाल बृद्ध न ज्वान छाँड़हुँ धर्म निर्दय पारिहौं ॥३७॥

राम—(दोहा)

भृगुकुल-कमल-दिनेस सुनि, जीति सकल संसार।
क्यों चलिहै इन सिसुन पै, डारत हौ जसभार ॥३८॥

परशुराम—(सोरठा)

राम सबंधु सँभारि, छोड़त हौं सर प्रानहर।
देहु हथ्यारनि डारि, हाथ-समेतनि बेगि दै ॥३९॥

राम—(पद्धटिका)

सुनि सकल लोकगुरु जामदग्नि। तपबिसिष अनेकन की जु अग्नि।
सब बिसिष छाँडि सहिहौं अखंड। हरधनुष कह्यो जिन खंडखंड ॥४०॥

परशुराम—(माधवी)

बान हमारेन के तनत्रान बिचारि बिचारि बिरंचि करे हैं।
गोकुल, ब्राह्मन, नारि, नपुंसक जे जग दीन स्वभाव भरे हैं।
राम कहा करिहौ तिनको तुम बालक देव अदेव डरे हैं।
गाधि के नंद तिहारे गुरू जिनतें रिषिबेष कियें उबरे हैं ॥४१॥

राम—(छप्पय)

भगन भयो हरधनुष साल तुमकों अब सालै।
बृथा होइ बिधि-सृष्टि ईस आसन तें चालै।

---

[३६] 'केसव०'—तो कहँ बंधु (कौमुदी)। [३७] पितृ—पितु (कौमुदी)। ज्वान—तरुन (प्रताप०, काशि०)। [३८] पै—सिर (प्रताप०, सर०)। [३९] सबंधु—सुबंधु (कौमुदी)। [४०] सब०—सबिसेष (प्रताप०, सर०)। जिन—हम (प्रताप०)। [४१] बिचारि—ते पाँच (दीन० २); ति पंच (सर०)। करिहौ—सहिहौ (सर०)।

सकल लोक संघरै सेष सिर तें धर डारै ।
सप्त सिंधु मिलि जाहिँ होइ सब ही तम भारै ।
अति अमल ज्योति नारायनी कहि 'केसव' बुझि जाइ बरु ।
भृगुनंद सँभारु कुठार मैं कियो सरासनजुक्त सरु ।।४२।।

(स्वागता)

राम राम जब कोप कर्‍यो जू । लोकलोक भय भूरि भर्‍यो जू ।
बामदेव तब आपुन आए । रामदेव दोउन समझाए ।।४३।।

(दोहा)

महादेव कौं देखिकै दोऊ राम बिसेष ।
कीन्हो परम प्रनाम उन आसिष दियो असेष ।।४४।।

महादेव—(चतुष्पदी)

भृगुनंदन सुनिये, मन मँह गुनिये, रघुनंदन निरदोषी ।
निजु ये अबिकारी, सब सुखकारी, सबहीँ बिधि संतोषी ।
एकै तुम दोऊ, और न कोऊ, एकै नाम कहायो ।
आयुर्बल खूट्यो, धनुष जू टूट्यो, मैं तन मन सुख पायो ।।४५।।

(पद्धटिका)

तुम अमर अनंत अनादि देव । नहि बेद बखानत सकल भेव ।
सबकौं समान नहि बैर-नेह । सब भक्तन कारन धरत देह ।।४६।।
अब आपनपौ पहिचानि बिप्र । सब करहु आगिलो काज क्षिप्र ।
तब नारायन को धनुष जानि । भृगुनाथ दियो रघुनाथ पानि ।।४७।।

(मोटनक)

नारायन को धनु बान लियो । ऐंच्यो हँसि देवन मोद कियो ।
रघुनाथ कह्यो अब काहि हनौं । त्रयलोक कँप्यौ भय मानि घनौं ।
दिग्देव दहे बहु बात बहे । भूकंप भए गिरिराज ढहे ।
आकास बिमान अमान छए । हा हा सबहीँ यह सब्द रए ।।४८।।

परशुराम —(शशिवदना)

जगगुरु जान्यो । त्रिभुवन मान्यो ।
मम गति मारौ । समय बिचारौ ।।४९।।

---

[४२] भयो०—कियो भव (कौमुदी)। सालै—सालौं (वही) । बृथा०—नष्ट करौं (वही) । चालै—चालौं । संघरै-संहरहुँ (वही) । डारै, मारै—डारौं, मारौं (काशि०, सर०, कौमुदी) । [४३] दोउन—दोउहि (प्रताप०); सु दोउ (काशि०); दोऊ (सर०) । [४४] दियो—दीन (कौमुदी)। [४६] अमर—अमल (काशि०, कौमुदी) । [४८] रघुनाथ—श्रीराम (प्रताप०, सर०) । रए—भए (सर०) । [४९] समय—हृदय (काशि०) ।

(दोहा)

बिषयी की ज्यौं पुष्पसर गति कौं हनत अनंग।
रामदेव त्यौंहीं करी परसुराम-गति भंग ॥५०॥

(चतुष्पदी)

सुरपुर-गति भानी, सासन मानी, भृगुपति को सुख भारौ।
आसिष-रस-भीने, सब सुख दीने, अब दसकंठहि मारौ।
अति अमल भए रबि, गगन बढ़ी छबि, देवन मंगल गाए।
सुरकुल सब हरषे, पुष्पनि बरषे, दुंदुभि दीह बजाए ॥५१॥

(दोहा)

सोवत सीतानाथ के भृगु दीन्ही ही लात।
भृगुकुलपति की गति हरी, मनो सुमिरि वह बात ॥५२॥

(मधुभार)

दसरथ जगाइ। संभ्रम भगाइ।
चले रामराइ। दुंदुभि बजाइ ॥५३॥

(विजय)

तारिका तारि सुबाहु सँघारि कै गौतम नारि के पातक टारे।
चाप हत्यो हर को हँसि 'केसव' देव अदेव हुते सब हारे।
सीतहि ब्याहि अभीत चले गिरिगर्ब चढ़ भृगुनंद उतारे।
श्रीगरुड़ध्वज को धनु लै रघुनंदन औधपुरी पगु धारे ॥५४॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां परशुरामसंवादवर्णनं नाम सप्तमः प्रकाशः ॥ ७ ॥

---

[५०] रामदेव०–रामचंद्रजू त्यौं कयो भृगुपति की (प्रताप०, सर०)। [५१] रपुर–सुरपति (कौमुदी)। सब०–यह बर दीनो (प्रताप०)। सुरकुल–सुरपुर (कौमुदी)। ५२] भृगु०–भृगु मुनि दीन्ही (कौमुदी); भृगुपति–दीन्ही (सर०)। हरी–हनी (प्रताप०, ः०)। मनो०–सुमिरि पाछिली बात (दीन० २)। [५४] हँसि–हठि (कौमुदी)।

८

(सुमुखी)

सब नगरी बहु सोभ रए। जहँ तहँ मंगलचार ठए।
बरनत हैं कबिराज घने। तन मन बुद्धि बिबेक सने ॥१॥

(मोटनक)

ऊँची बहुबर्न पताक लसैं। मानो पर दीपति सी दरसैं।
देवी गन ब्योम बिमान बसैं। सोभैं तिनके सुभ अंचल सैं ॥२॥

(दोहा)

कलभनि लीन्हैं कोट पर खेलत सिसु चहुँ ओर।
अमल कमल ऊपर मनो चंचरीक चितचोर ॥३॥

(कलहंस)

पुर आठ आठ दरबार बिराजैं। जुत आठ आठ सेना बल साजैं।
रह चार चार घटिका परिमानैं। घर जाहिं और जब आवत जानैं ॥४॥

(दोहा)

आठौ दिसि के सील गुन भाषा भेष बिचार।
बाहन बसन बिलोकिये 'केसव' एकहि बार ॥५॥

(कुसुमविचित्रा)

अति सुभ बीथी रज परिहारी। मलयज लीपी पुहपनि धारी।
दुहु दिसि दीसैं सुबरन भाए। कलस बिराजैं मनिमय छाए ॥६॥

(तामरस)

घरघर घंटनि के रव बाजैं। बिचबिच संख जु झालरि साजैं।
पटह पखाउज आउझ सोहैं। मिलि सहनाइन सौं मन मोहैं ॥७॥

(हीर)

सुंदरि सब सुंदर प्रति मंदिर पुर यौं बनी।
मोहनगिरिसृंगनि पर मानहु महि मोहनी।

---

[१] रए-भए (प्रताप०, सर०)। ठए-छए (प्रताप०)। [२] पुर-सब (प्रताप०)। ब्योम०-देखति ब्योम (सर०)। लसैं-बसैं (प्रताप०, सर०)। सुभ-मुख (कौमुदी)। [३] कलभनि-कलसनि (सर०)। ऊपर-पुरपर (प्रताप०, सर०)। [४] बल-पति (प्रताप०, काशि०)। जाहिं-जात (कौमुदी)। [६] परिहारी-परिहरे (काशि०, सर०, कौमुदी)। धारी-धरे (वही)। भाए-भए (वही)। छाए-नए (वही)। [७] बाजैं-राजैं (प्रताप०)। जु-सु (प्रताप०, सर०)। साजैं-बाजैं (प्रताप०); राजैं (सर०)।

भूषनगन भूषित तन भूरि चितन चोरहीं।
देखत जनु रेखत तनु बान-नयन - कोरहीं ॥८॥

(सुंदरी)

संकर-सैल चढ़ी मन मोहति। सिद्धन की तनया जनु सोहति।
पद्मनि ऊपर पद्मिनि मानहु। रूपनि ऊपर दीपति जानहु ॥९॥
कीरतिश्री जयसंजुत सोहति। श्रीपति-मंदिर की मनमोहति।
ऊपर मेरु मनो मनरोचन। स्वर्नलता जनु रोचति लोचन ॥१०॥

(विशेषक)

एक लिये कर दर्पन चंदन चित्र करे।
मोहति है मन मानहु चंदन चंद्र धरे।
नैन बिसालनि अंबर लालनि ज्योति जगी।
मानहु रागिनि राजति है अनुराग रँगी ॥११॥
नील निचोलन कौं पहिरे इक चित्त हरै।
मेघनि की दुति मानहु दामिनि देह धरै।
एकनि के तन सूक्षम सारि जराय जरी।
सूर-करावलि सी जनु पद्मिनि देह धरी ॥१२॥

(तोटक)

बरषै कुसुमावलि एक घनी। सुभ सोभन कामलता सी बनी।
बरषै फल फूलन लायक की। जनु हैं तरुनी रतिनायक की ॥१३॥

(दोहा)

भोर भए गज पर चढ़े श्रीरघुनाथ बिचारि।
तिनहिं देखि बरनत सबै नगर नागरी नारि ॥१४॥

(तोटक)

तमपुंज लियो गहि भानु मनो। गिरि अंजन ऊपर सोम भनो।
मनमथ्थ बिराजत सोभ तरे। जनु भासत दानहि लोभ धरे ॥१५॥

(मरहट्टा)

आनंदप्रकासी सब पुरबासी करत ते दौरादौरि।
आरती उतारैं सरबसु वारैं अपनी अपनी पौरि।
पढ़ि मंत्र असेषनि करि अभिषेकनि आसिष दै सबिसेष।
कुंकुम करपूरनि मृगमद चूरनि बर्षत बर्षा बेष ॥१६॥

---

[८] तनु—मनु (प्रताप०, सर०)। [१०] की—को (कौमुदी)। रोचति—लोचति (प्रताप०, सर०)। [१५] सोम०—सोभ सनै (सर०)। जनु०—जनु राजत काम सिंगार करे (दीन०१, सर०)। [१६] चूरनि—पूरनि (प्रताप०,सर०)।

(आभीर)—यहि विधि श्रीरघुनाथ। गहे भरथ को हाथ।
पूजित लोक अपार। गए राज-दरबार ॥१७॥
गए एक ही बार। चार्यौ राजकुमार।
सहित बधून सनेह। कौसल्या के गेह ॥१८॥

(त्रिभंगी)

बाजे बहु बाजैं, तारनि साजैं, सुनि सुर लाजैं, दुख भाजैं।
नाचैं नवनारी, सुमन सिँगारी, गति मनुहारी, सुख साजैं।
बीनानि बजावैं, गीतनि गावैं, मुनिन रिझावैं, मन भावैं।
भूषन पट दीजै, सब रस भीजै, देखत जीजै, छबि छावैं ॥१९॥

(सोरठा)—रघुपति पूरन चंद, देखि देखि सब सुख मढ़ैं।
दिन दूने आनंद, ता दिन तेँ तेहि पुर बढ़ैं ॥२०॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजितविरचितायां
धनुषभंजनो नाम अष्टमः प्रकाशः।

९

(दोहा)—रामचंद्र लछिमन सहित घर राखे दशरथ्थ।
बिदा कियो ननसार कौं सँग सत्रुघ्न भरथ्थ ॥१॥

(तोटक)

दसरथ्थ महा मन मोद रए। तिन बोलि बसिष्ठहि मंत्र लए।
दिन एक कहो सुभ सोभ रयो। हम चाहत रामहि राज दयो ॥२॥
यह बात भरथ्थ की मातु सुनी। पठऊँ बन रामहि बुद्धि गुनी।
तेहि मंदिर माँ नृप सौं बिनयो। बर देहु हुतो हमकौं जु दयो ॥३॥
नृप बात कही हँसि हेरि हियो। बर माँगि सुलोचनि मैं जु दियो।
कैकेयी—नृपता सु बिसेष भरथ्थ लहैं। बरषैं बन चौदह राम रहैं ॥४॥

(पद्धटिका)

यह बात लगी उर बज्रतूल। हिय फाट्यो ज्यौं जीरन दुकूल।
उठि चले बिपिन कहँ सुनत राम। तजि तात मातु तिय बंधु धाम ॥५॥

---

[१९] छबि–हँसि लीजै (दीन०, प्रताप०, सर०)।
[२] बसिष्ठहि–बसिष्ठ सु (प्रताप०); बसिष्ठ सौं (सर०, कौमुदी)। रयो–मयो (प्रताप०)।
[५] तिय–प्रिय (प्रताप०, सर०)।

(हरिलीला)

छूटे सबै सबनि के सुख क्षुतिपिपास। बिद्रदूबिनोद गुन गीतबिधान बास।
ब्रह्मादि अंत्यजनि अंत अनंत लोग। भूले असेष सबिसेषनि राग भोग ॥६॥

(मोतियदाम)

गए तहँ राम जहाँ निज मात। कही यह बात की हौं बन जात।
कछू जिनि जी दुख पावहु माइ। सु देहु असीस मिलौं फिरि आइ ॥७॥

कौशल्या—रहौ चुप ह्वै सुत क्यौं बन जाहु। न देखि सकैं तिनके उर दाहु।
लगी अब बाप तुम्हारेहि बाइ। करैं उलटी बिधि क्यौं कहि जाइ ॥८॥

राम—(ब्रह्मरूपक)—अन्न देइ सीख देइ राखि लेइ प्रान जात।
राज बाप मोल लै करै जु पोषि दीह गात।
दास होइ पुत्र होइ सिष्य होइ कोइ माइ।
सासना न मानई तौ कोटि जन्म नर्क जाइ ॥९॥

कौसल्या—(सारवती)

मोहि चलौ बन संग लियैं। पुत्र तुम्हैं हम देखि जियैं।
औधपुरी महँ गाज परै। कै अब राज भरथ्थ करै ॥१०॥

राम—(तोमर)—तुम क्यौं चलौ बन आजु। जिन सीस राजत राजु।
जिय जानियै पतिदेव। करि सर्ब भाँतिन सेव ॥११॥
पति देइ जौं अति दुख्ख। मन मानि लीजै सुख्ख।
सब जक्त जानि अमित्र। पति जानि केवल मित्र ॥१२॥

(अमृतगति)—नित पतिपंथहि चलिये। दुखसुख कौं दलु दलिये।
तन मन सेवहु पति कौं। तब लहिये सुभ गति कौं ॥१३॥

(स्वागता)

जोग जाग ब्रत आदि जु कीजै। न्हान, गानगुन, दान जु दीजै।
धर्म कर्म सब निष्फल देवा। होहिं एक फल कै पतिसेवा ॥१४॥
तात मातु जन सोदर जानौ। देवर जेठ सगे सब मानौ।
पुत्र पुत्रसुत श्री छबिछाई। हैं बिहीन भरता दुखदाई ॥१५॥

(कुंडलिया)—नारी तजै न आपनो सपनेहूँ भरतार।
पंगु गुंग बौरो बधिर अंध अनाथ अपार।

---

[६] बिद्रद्बिनोद—बिद्याबिनोद (दीन० प्रताप०)। [७] तहँ—तब (प्रताप०, सर०)। [८] ह्वै—कै (प्रताप०, सर०)। [९] सिष्य—इष्ट (दीन० २)। तौ—सु (प्रताप०, सर०)। [१२] जक्त—जीव (प्रताप०)। [१३] नित पति-नितप्रति (प्रताप०, काशि०, सर०)। [१४] गुन—गन (प्रताप०, काशि०); दिन (सर०)। [१५] जन—सुत (प्रताप०, सर०)। देवर०—देव जेठ सब संगिहु (कौमुदी); देवर जेठ सगे सो बखानौ (काशि०)।

अंध अनाथ अपार बृद्ध बावन अति रोगी।
बालक पंडु कुरूप सदा कुबचन जड़ जोगी।
कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी बिभिचारी।
अधम अभागो कुटिल कुपति पति तजै न नारी ॥१६॥

(पंकजवाटिका)

नारि न तजहि मरे भरतारहि। ता सँग सहहि धनंजय-झारहि।
जौं केहुँ मिसु करतार जियावत। तौ तेहि कहँ यह बात सुनावत ॥१७॥

(निशिपालिका)—गान बिन मान बिन हास बिन जीवहीं।
तप्त नहिं खाहिं जल सीतल न पीवहीं।
तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोवहीं।
सीत जल न्हाइ नहिं उष्न जल जोवहीं ॥१८॥
खाहिं मधुरान्न नहिं पाँइ पनहीं धरैं।
काय मन बाच सब धर्म करिबो करैं।
कृच्छ्र उपवास सब इंद्रियन जीतहीं।
पुत्रसिख-लीन तन जौं लगि अतीतहीं ॥१६॥

(दोहा)—पतिहित पितु पर तनु तज्यो सती साखि दै देव।
लोकलोक पूजित भई, तुलसी पति की सेव ॥२०॥
मनसा बाचा कर्मना हमसौं छाड़हु नेहु।
राजा कौं बिपदा परी तुम तिनकी सुधि लेहु ॥२१॥

(पद्धटिका)—उठि रामचंद्र लछिमन समेत। तब गए जनकतनया-निकेत।
सुनि राजपुत्रिके एक बात। हम बन पठए हैं नृपति तात ॥२२॥
तुम जननि-सेव कहँ रहहु बाम। कै जाहु आजु ही जनक-धाम।
सुनि चंद्रबदनि गजगमनि ऐनि। मन रुचै सो कीजै जलजनैनि ॥२३॥

सीताजू—(नराच)—न हौं रहौं न जाउँ जू बिदेह-धाम कौं अबै।
कही जु बात मातु पै सु आजु मैं सुनी सबै।
लगै क्षुधाहि माँ भली बिपत्ति माँझ नारियै।
पियास-त्रास नीर बीर जुद्ध मैं सँभारियै ॥२४॥

---

[१६] कुपति–कुमति (कौमुदी)। [१७] सहहि–सहति (प्रताप०, काशि०, सर०)। मिसु–बिधि (कौमुदी)। जियावत–जियावहिं (कौमुदी)। सुनावत–जनावत (प्रताप०); चेतावत (सर०); बतावहिं (कौमुदी)। [१८] खाहिं०–खाय जल सीत नहिं (कौमुदी)। नहिं०–नित उत्सव न (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२४] पै–सौं (प्रताप०, सर०)।

लक्ष्मण—(सुप्रिया)

बन महँ बिकट बिबिध दुख सुनियै। गिरि गहवर मग अगम ति गुनियै।
कहुँ अहि हरि कहुँ निसिचर रहहीँ। कहुँ दवदहन दुसह दुख दहहीँ॥२५

सीताजू—(दंडक)

'केसोदास' नींद भूख प्यास उपहास त्रास, दुख को निवास बिष मुखहू गह्यो परै।
बायु को बहन दिन दावा को दहन, बड़ी बाड़वा अनल ज्वालजाल मैं रह्यो परै।
जीरन जनमजात जोर जुर घोर परिपूरन प्रगट परिताप क्यों कह्यो परै।
सहिहौँ तपन ताप पर के प्रताप रघुबीर को बिरह बीर मोसों न सह्यो परै॥२६॥

राम—(विशेषक)—धाम रहौ तुम लक्ष्मन राज की सेव करौ।
मातनि के सुनि तात सुदीरघ दुक्ख हरौ।
आइ भरथ्थ कहाँ धौं करैं जिय भाइ गुनौ।
जौं दुख देइँ तौ लै उरगौ यह सीख सुनौ॥२७॥

लक्ष्मण—(दोहा)—सासन मेटी जाइ क्यों, जीवन मेरे हाथ।
ऐसी कैसे बूझिये, घर सेवक बन नाथ॥२८॥

(द्रुतविलंबित)

बिपिनमारग राम बिराजहीँ। सुखद सुंदरि सोदर भ्राजहीँ।
बिबिध श्रीफल सिद्धि मनो फल्यो। सकल साधन सिद्धिहि लै चल्यो॥२९॥

(दोहा)—राम चलत सब पुर चल्यो जहँ तहँ सहित उछाह।
मनो भगीरथ-पथ चल्यो, भागीरथी-प्रबाह॥३०॥

(चंचला)—रामचंद्र धाम तैं चले सुने जबै नृपाल।
बात को कहै सुनै सु ह्वै गए महा बिहाल।
ब्रह्मरंध फोरि जीव यों मिल्यो बिलोक जाइ।
गेह चूरि ज्यों चकोर चंद्र मैं मिलै उड़ाइ॥३१॥

(चित्रपदा)—रूपहि देखत मोहैं। ईस कहौ नर को हैं।
संभ्रम चित्त अरूझैं। रामहि यों सब बूझैं॥३२॥

(चंचरी)—कौन हौ कित तैं चले कित जात हौ केहि काम जू।
कौन की दुहिता बहू कहि कौन की यह बाम जू।

---

[२५] ति–हिँ (कौमुदी०)। रहहीँ–करहीँ (वही)। दहहीँ–सरहीँ (वही)। [२६] उपहास–उपवास (दीन० २, प्रताप०)। पर के–पति के (काशि०); राम के (दीन० २)। [२७] जिय०–यह बात (प्रताप०, सर०)। [२९] भ्राजहीँ–साजहीँ (प्रताप०, दीन० २); साथ ही (दीन० १, सर०)। सिद्धि–सिंधु (प्रताप०, सर०)। [३१] बिलोक–जु लोक (कौमुदी)। चूरि–दूरि (सर०); तूरि (कौमुदी)।

एक गाँउ रहौ कि साजन मित्र बंधु बखानियै।
देस के परदेस के किधौं पंथ की पहिचानियै ॥३३॥

(जगमोहन दंडक)

किधौं यह राजपुत्री बरही बरी है किधौं उपधि बरयो है यहि सोभा अभिरत हौ।
किधौं रति रतिनाथ जस साथ 'केसोदास' जात तपोबन सिवबैर सुमिरत हौ।
किधौं मुनिसापहत किधौं ब्रह्मदोषरत, किधौं सिद्धिजुत सिद्ध परम बिरत हौ।
किधौं कोऊ ठग हौ ठगौरी लीन्हे किधौं तुम,हर हार श्री हौ सिवा चाहत फिरत हौ३४

(मत्तमातंगलीलाकर दंडक)

मेघ मंदाकिनी चारु सौदामिनी रूप रूरे लसैं देहधारी मनो।
भूरि भागीरथी भारती हंसजा अंस के हैं मनो, भाग भारे भनो।
देवराजा लिए देवरानी मनो पुत्रसंजुक्त भूलोक में सोहिये।
पक्ष दूसंधि संध्या सँधी है मनो लक्षिये स्वच्छ प्रत्यक्ष ही मोहिये ॥३५॥

(अनंगशेखर दंडक)

तड़ाग नीरहीन ते सनीर होत 'केसोदास' पुंडरीक झुंड भौंर मंडलीन मंडहीं।
तमाल बल्लरी समेत सूखि सूखिकै रहे ते बाग फूलि फूलिकै समूल सूल खंडहीं।
चितै चकोरनी चकोर मोर मोरनी समेत हंस हंसिनी सुकादि सारिका सबै पढ़ैं।
जहीँ जहीँ बिराम लेत रामजू तहीँ तहीँ अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सौं बढ़ैं ३६

(सुंदरी)

वाम को राम समीप महाबल। सीतहि लागत है अति सीतल।
ज्यौं घनसंजुत दामिनि के तन। होत है पूषन के कर भूषन ॥३७॥
मारग की रज तापित है अति। 'केसव' सीतहि सीतल लागति।
प्यौ-पदपंकज ऊपर पाइनि। दै जु चलै तेहि तें सुखदाइनि ॥३८॥

(दोहा)—प्रतिपुर औ प्रतिग्राम की प्रतिनगरन की नारि।
सीताजू कौं देखिकै बरनत हैं सुखकारि ॥३९॥

(प्रकर्ष दंडक)

वासौं मृगअंक कहैं तोसौं मृगनैनी सब, वह सुधाधर तुहूँ सुधाधर मानिये।
वह द्विजराज तेरे द्विजराजि राजै, वह कलानिधि तुहूँ कलाकलित बखानिये।
रत्नाकर के हैं दोऊ 'केसव' प्रकासकर, अंबरबिलास कुवलयहितू गानिये।
वाके अति सीतकर तुहूँ सीता सीतकर, चंद्रमा सी चंद्रमुखी सब जग जानिये ॥४०॥

---

[३३] रहौ–बसौ (प्रताप०, सर०)। [३४] श्री०–सिवा श्रीहि (प्रताप०, सर०); सिवा सिद्धि (दीन० २)। [३५] सँधी–सुधी (प्रताप०); सुधा (सर०)। [३६] ते–के (प्रताप०, सर०)। [३७] महा–सबै (प्रताप०, सर०)। [३९] देखि०–निरखि मुख (प्रताप० सर०)। [४०] तुहूँ–तहीं (प्रताप० सर०)।

अन्य उवाच—(मनहरण दंडक)

कलित कलंककेतु, केतुअरि, सेत गात, भोग जोग को अजोग रोग ही को थल सो।
पून्योई कौं पूरन पै प्रतिदिन दूनो दीन, छिनछिन छीन होत छीलर को जल सो।
चंद सो जो बरनत रामचंद की दोहाई, सोई मतिमंद कबि 'केसव' कुसल सो।
सुंदर सुबास अरु कोमल अमल अति, सीताजू को मुख सखि केवल कमल सो ॥४१॥

अन्य उवाच

एकै कहैं अमल कमल मुख सीताजू को, एकै कहैं चंदसम आनँद को कंद री।
होइ जौ कमल तौ रयनि मैं न सकुचै री,चंद जौ तौ बासर न होइ दुति मंद री।
बासर ही कमल रजनि ही मैं चंद, मुख बासर हू रजनि बिराजै जगबंद री।
देखे मुख भावै अनदेखई कमल चंद, तातैं मुख मुखै सखी कमलै न चंद री ॥४२॥

(दोहा)—सीतानयन चकोर सखि, रबिबंसी रघुनाथ।
रामचंद्र सिय कमलमुख, भलो बन्यो है साथ ॥४३॥

(चंद्रकला)

बहु बाग तड़ाग तरंगिनि तीर तमाल की छाँह बिलोकि भली।
घटिका इक बैठत हैं सुख पाइ बिछाइ तहाँ कुस काँस थली।
मग को श्रम श्रीपति दूर करैं सिय को, सुभ बाकल अंचल सौं।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि 'केसव' चंचल चारु दृगंचल सौं ॥४४॥

(सोरठा)—श्री रघुबर के इष्ट, अश्रुबलित सीता-नयन।
साँची करी अदृष्ट, झूठी उपमा मीन की ॥४५॥

(दोहा)—मारग यौं रघुनाथजू, दुख सुख सबहीं देत।
चित्रकूट पर्बत गए, सोदर-सिया समेत ॥४६॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामस्य चित्रकूटगमन्नाम नवमः प्रकाशः ॥

---

[४१] रोग०—जोग जोग ही के बलु सो (दीन० २)। प्रति०—आन दिन ऊनो ऊनो (कौमुदी)। कुसल—मुसल (वही)। [४२] सम—भय (प्रताप०, सर०)। भावै०—भावतो न देख्यौई (प्रताप०, सर०)। [४४] बहु—कहुँ (कौमुदी)। सुभ—सुचि (प्रताप०, सर०)। सौं—कै (वही)।

१०

(दोध)—आनि भरथ्थ पुरी अवलोकी। थावर जंगम जीव ससोकी।
भाट नहीँ बिरदावलि साजैँ। कुंजर गाजैँ न दुंदुभि बाजैँ॥१॥
राजसभा न बिलोकिय कोऊ। सोक गहे तब सोदर दोऊ॥
मंदिर मातु बिलोकि अकेली। ज्यौँ बिन बृक्ष बिराजति बेली॥२॥

(तोटक)—तब दीरघ देखि प्रनाम कियो। उठि कै उन कंठ लगाइ लियो।
न पियो जल संभ्रम भूलि रहे। तब मातु सौँ बात भरथ्थ कहे॥३॥

(चंद्रकला)

कहु मातु कहाँ नृप ? तात गए सुरलोकहि, क्यौँ ? सुत सोक लए।
सुत कौन सु ? राम, कहाँ हैँ अबै ? बन लक्ष्मन सीय समेत गए।
बन काज कहा कहि ? केवल मो सुख, यामैँ कहा सुख तोकौँ भए।
तुमकौँ प्रभुता, धिक तोकौँ कहा अपराध बिना सिगरेई हए॥४॥

(दोहा)— भर्ता-सुत-बिद्वेषिनी सब ही कौँ दुखदाइ।
यह कहि देखे भरथ तब कौसल्या के पाइ॥५॥

(तोटक)—तब पाइनि जाइ भरथ्थ परे। उन भेटि उठाइकै अंक भरे।
सिर सूँघि बिलोकि बलाइ लई। सुत तो बिन या बिपरीति भई॥६॥

भरत—(तारक)

सुनु मातु भई यह बात अनैसी। जु करी सुत-भर्तृ-बिनासिनि जैसी।
यह बात भई अब जानत जाके। द्विजदोष परैँ सिगरे सिर ताके॥७॥

भरत—जिनके रघुनाथबिरोध बसै जू। मठधारिन के तिन पाप ग्रसै जू।
रसराम-रस्यो मन नाहिन जाको। रन मैँ नित होइ पराजय ताको॥८॥

कौसल्या-जनि सौँह करौ तुम पुत्र सयाने। अति साधु चरित्र तुम्हैँ हम जाने।
सबकौँ सब काल सदा सुखदाई। जिय जानति हौँ सुत ज्यौँ रघुराई॥९॥

(चंचरी)—हाइहाइ जहाँ तहाँ सब ह्वै रही सिगरी पुरी।
धामधामनि सुंदरी प्रगटीँ सबै जे हुतीँ दुरी।
लै गए नृपनाथ कौँ सब लोग श्रीसरजूतटी।
राजपत्नि-समेत पुत्रनि बिप्रलाप-गटी रटी॥१०॥

---

[२] सोक–सोच (प्रताप०, सर०)। [३] तब–पुनि (कौमुदी)। बात–बैन (वही)। [४] केवल–केसव (दीन० २)। [६] या–ह्याँ (प्रताप०, सर०)। [७] अब–जिय (प्रताप०); कछु (सर०)। [९] हम–सब (प्रताप०, सर०)। [१०] सब–अति (प्रताप०, सर०)। हुतीँ–रहीँ (कौमुदी)।

(सोमराजी)—करी अग्निअर्चा। मिटी प्रेतचर्चा।
सबै राजधानी। भई दीन बानी ॥११॥

(कुमारललिता)—क्रिया भरथ कीनी। बियोगरस-भीनी।
तजी गति नवीनी। मुकुंदपद-लीनी ॥१२॥

(तोटक)-पहिरे बकला सु जटा धरिकै। निज पाइन पंथ चले अरिकै।
तरि गंग गए गुह संग लिये। चित्रकूट बिलोकत छाँडि दिये ॥१३॥

(मदनमोहन दंडक)

सब सारस हंस भए खग खेचर बारिद ज्यौं बहु बारन गाजे।
बन के नर बानर किन्नर बालक लै मृग ज्यौं मृगनायक भाजे।
तजि सिद्ध समाधिन 'केसव' दीरघ दौरि दरीन मैं आसन साजे।
भूतल भूधर हाले अचानक आइ भरध्थ के दुंदुभि बाजे ॥१४॥

(दोहा)—रामचंद्र लक्ष्मनसहित, सोभित सीतासंग।
'केसवदास' सहास उठि, चढ़े धरनिधरसृंग ॥१५॥

लक्ष्मण—(मोहन)

देखहु भरथ चमू सजि आए। जानि अबल हमकौं उठि धाए।
हींसत हय बहु बारन गाजैं। दीरघ जहँ तहँ दुंदुभि बाजैं ॥१६॥

(तारक)-गजराजनि ऊपर पाखर सोहैं। अति सुंदर सीस-सिरी मन मोहैं।
मनिघूँघुर घंटनि के रव बाजैं। तड़िताजुत मानहुँ बारिद गाजैं ॥१७॥

(मत्तगयंद)-जुद्ध कौं आजु भरध्य चढ़े धुनि दुंदुभि की दसहूँ दिसि धाई।
प्रात चली चतुरंग चमू बरनी सु न 'केसव' कैसेहु जाई।
यौं सबके तनत्राननि मैं झलकी अरुनोदय की अरुनाई।
अंतर तैं जनु रंजन कौं रजपूतन की रज ऊपर आई ॥१८॥

(तोटक)-उड़िकै धर धूरि अकास चली। बहु चंचल बाजिखुरीन दली।
भुव हालति जानि अकासहि ये। जनु थंभित ठौरनि ठौर किये ॥१९॥

(तारक)-रन राजकुमार अरूझहिँगे जू। अति सन्मुख घायनि जूझहिँगे।
जनु ठौरनि ठौरनि भूमि नवीने। तिनके चढ़िबे कहँ मारग कीने ॥२०॥

सीताजू

(तोटक)-रहि पूरि बिमाननि ब्योमथली। तिनकौं जनु टारन धूरि चली।
परिपूरि अकासहिं धूरि रही। सु गयो मिटि सूरप्रकास सही ॥२१॥

---

[१२] गति–मति (प्रताप०, सर०)। [१४] आइ–आनि (प्रताप०,सर०)। [१५] सहित–हुवौ (प्रताप०, सर०)। [१८] ऊपर–बाहर (कौमुदी)। [१९] उड़ि–उठि (काशि०, सर०)। अकासहि–अकालहि (कौमुदी)। [२०] सन्मुख–सामुहे (दीन०, प्रताप०)। [२१] धूरि–भूमि (कौमुदी)। सही–मही (प्रताप०); तही (सर०)।

(दोहा)—अपने कुल को कलह क्यौं देखहिं रवि भगवंत।
यहै जानि अंतर कियो मानो मही अनंत ॥२२॥

(तोटक)—बहु तामहँ दीह पताक लसैं। जनु धूम मैं अग्नि की ज्वाल बसैं।
रसना किधौं काल कराल घनी। किधौं मीचु नचै चहुँ ओर बनी ॥२३॥

(दोहा)—देखि भरथ की चल ध्वजा धूरनि मैं सुख देति।
जुद्ध जुरन कौं मनहुँ प्रतिजोधनि बोले लेति ॥२४॥

लक्ष्मण—(मनहरण दंडक)

मारि डारौं अनुज समेत यहि खेत आजु मेटि डारौं दीरघ बचन निज गुर को।
सीतानाथ सीतासाथ बैठे देखि छत्रतर यहि सुख सोखौं सोक सबही के उर को।
'केसोदास' सबिलास बीसबिसे बास होइ कैकेई के अंगअंग सोक पुत्रजुर को।
रघुनाथजू को साज सकल छड़ाइ लेउँ भरथहिं आजु राजु देउँ प्रेतपुर को ॥२५॥

(दोहा)—एक राज महँ प्रगट जहँ द्वै प्रभु 'केसवदास'।
तहाँ बसत है रैनिदिन मूरतिवंत बिनास ॥२६॥

(कुसुमविचित्रा)

तब सब सेना वहि थल राखी। मुनिजन लीने सँग अभिलाषी।
रघुपति के चरननि सिर नाए। उन हँसिकै गहि कंठ लगाए ॥२७॥

भरत (दोधक)—मातु सबै मिलिबे कहँ आईं। ज्यौं सुत कौं सुरभी सु लवाईं।
लक्ष्मन स्यौं उठिकै रघुराई। पाइनि जाइ परे दोउ भाई ॥२८॥
मातनि कंठ उठाइ लगाए। प्रान मनो मृत देहनि पाए।
आनि मिली तब सीय सभागी। देवर सासुन के पग लागी ॥२९॥

(तोमर)—तब पूछियो रघुराइ। सुख है पिता तन माइ।
तब पुत्र को मुख जोइ। क्रम तैं उठीं सब रोइ ॥३०॥

(दोधक)—आँसुनि सौं सब पर्बत धोए। जंगम को जड़ जीवनि रोए।
सिद्धबधू सिगरी सुनि आईं। राजबधू सबई समुझाईं ॥३१॥

(सुखदा)—धरि चित्त धीर। गए गंगतीर। सुचि ह्वै सरीर। पितु तर्पि नीर ॥३२॥

भरत—(तारक)

घर कौं चलिये अब श्रीरघुराई। जन हौं तुम राज सदा सुखदाई।
यह बात कही जल सौं गल भीनो। उठि सोदर पाँव परे तब तीनो ॥३३॥

---

[२५] मेटि०—मेटि पारौं (कौमुदी)। दीरघ—केवल (प्रताप०); केसव (दीन०, सर०)। रघुनाथ—रघुराज (काशि०, सर०)। प्रेत—जम (वही)। [२७] सब—उन (प्रताप०, सर०)। चरननि—पायनि (वही)। [२८] सु लवाईं—अलवाईं (प्रताप०, सर०)। दोउ०—रघुराई (प्रताप०); अकुलाई (सर०)। [३१] जंगम०—जड़ जंगम कों जीवहु (कौमुदी); जीव कहा जड़ जंगम (प्रताप०)।

११

(रथोद्धता)—चित्रकूट तब रामजू तज्यो । जाइ जज्ञथल अत्रि को भज्यो ।
राम लक्ष्मनसमेत देखियो । आपनो सफल जन्म लेखियो ॥१॥

अत्रि—(चंद्रवर्त्म)

स्नान दान तप जप जो करियो । सोधि सोधि ब्रत जो उर धरियो ।
जोग जाग हम जा लग गहियो । रामचंद्र सबको फल लहियो ॥२॥

(वंशस्थविल)—अनेकधा पूजन अत्रिजू कस्यो । कृपालु ह्वै श्रीरघुनाथजू धस्यो ।
पतिव्रता देवि महर्षि की जहाँ । सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहाँ ॥३॥

(दोहा)—पतिव्रतन की देवता अनुसूया सुभगाथ ।
सीताजू अवलोकियो जरा-सखी के साथ ॥४॥

(चतुष्पदी)—सिर सेत बिराजै, कीरति राजै, जनु 'केसव' तपबल की ।
तनु बलित पलित जनु, सकल बासना, निकसि गई थलथल की ।
काँपति सुभ ग्रीवाँ, सब अँग सीवाँ, देखत चित्त भुलाहीँ ।
जनु अपने मन प्रति, यह उपदेसति, या जग मैँ कछु नाहीँ ॥५॥

(प्रमिताक्षरा)

हरुवाइ जाइ सिय पाँइ परी । रिषिनारि सूँघि सिर गोद धरी ।
बहु अंगराग अँगअंग रए । बहु भाँति ताहि उपदेस दए ॥६॥

(स्रग्विणी)

राम आगे चले मध्य सीता चली । बंधु पाछे भए सोभ सोभै भली ।
देखि देही सबै कोटिधा कै भनो । जीव जीवेस के बीच माया मनो ॥७॥

(मालती)—बिपिन बिराध बलिष्ठ देखियो । नृपतनया भयभीत लेखियो ।
तब रघुनाथ बान कै हयो । निज निरबान-पंथ कौँ ठयो ॥८॥

(दोहा)—रघुनायक सायक धरे सकल लोक-सिरमौर ।
गए कृपा करि भक्तिबस रिषि अगस्ति के ठौर ॥९॥

(वसंततिलक)

श्रीराम लक्ष्मन अगस्ति सनारि देख्यो । स्वाहासमेत सुभ पावकरूप लेख्यो ।
साष्टांग क्षिप्र अभिबंदन जाइ कीन्हो । सानंद आसिष असेष रिषीस दीन्हो ॥१०॥

---

[२] ब्रत०—मन जो उर (काशि०, सर०); उर माँझ जु (कौमुदी)। [६] सिय०—पगु सीय (प्रताप०, सर०)। गोद०—अंक भरी (वही)। बहु०—अरु भाँति भाँति (वही)। [८] नृप०—अपनो जनम सुफल कै (दीन० २)। ठयो—गयो (प्रताप०, सर०)।

बैठारि आसन सबै अभिलाष पूजे। सीतासमेत रघुनाथ सबंधु पूजे।
जाके निमित्त हम जज्ञ जज्यो सु पायो। ब्रह्मांडमंडन स्वरूप जु बेद गायो ॥११॥

अगस्त्य—(पद्धटिका)

ब्रह्मादि देव जब बिनय कीन। तट छीरसिंधु के परम दीन।
तुम कह्यो देव अवतरहु जाइ। सुत ह्वै दसरथ को होत आइ ॥१२॥
हम तबतेँ मन आनंद मानि। मग चितवत तव आगमन जानि।
ह्याँ रहिजे करिजे देवकाजु। मम फूलि फल्यो तपबृक्ष आजु ॥१३॥

राम (पृथ्वी)—अगस्ति रिषिराजजू बचन एक मेरो सुनौ।
प्रसस्त सब भाँति भूतल सुदेस जी मैं गुनौ।
सनीर तरुखंडमंडित समृद्ध सोभा धरैं।
तहाँ हम निवास कौं बिमल पर्नसाला करैं ॥१४॥

अगस्त्य—(पद्मावती)

जद्यपि जग करता, पालक हरता, पूरन बेदन गाए।
तदपि कृपा करि, मानुषबपु धरि, थल पूछन हमसौं आए।
सुनि सुरबरनायक, रक्षसघायक, रक्षहु मुनि जस लीजै।
सुभ गोदावरितट, बिसद पंचबट, पर्नकुटी तहँ कीजै ॥१५॥

(दोहा)—'केसव' कहे अगस्ति के पंचबटी के तीर।
पर्नकुटी पावन करी, रामचंद्र रनधीर ॥१६॥

(त्रिभंगी)—फलफूलनि पूरे, तरुबर रूरे कोकिलकुल कलरव बोलैं।
अति मत्त मयूरी, पियरस पूरी, बनबन प्रति नाचति डोलैं।
सारी सुक पंडित, गुनगनमंडित, भावनमय अरथ बखानैं।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मनहु मदन रति मधु जानैं ॥१७॥

लक्ष्मण—(दुर्मिला)

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हूँ घटी जगजीव जतीन की छूटी तटी।

---

[१२] होत–होव (कौमुदी)। [१३] तव–बन (कौमुदी)। तप–नय (काशि०)। [१४] कौं–की (कौमुदी)। [१५] पूरन–परिपूरन (प्रताप०, काशि०,सर०,कौमुदी)। तदपि–अति तदपि (काशि०, कौमुदी); अब तदपि (सर०)। मानुष–माया (प्रताप०, सर०)। रक्षहु०–रक्षहु मुनिजन (कौमुदी); सब रक्षहु मुनि (प्रताप०)। तहँ–तहँ प्रभु (सर०, कौमुदी)। [१७] अरथ–बचन (प्रताप०, सर०)।

अघओघ की बेरी कटी बिकटी निकटी प्रकटी गुरुज्ञान-गटी।
चहुँ ओरनि नाचति मुक्तिनटी गुन धूरजटी जटी पंचबटी ॥१८॥

(हाकलिका)—सोभत दंडक की रुचि बनी। भाँतिन भाँतिन सुंदर घनी।
सेव बड़े नृप की जनु लसै। श्रीफल भूरि भाव जहँ बसै ॥१६॥
बेर भयानक सी अति लगै। अर्कसमूह जहाँ जगमगै।
नैननि कौं बहु रूपनि ग्रसै। श्रीहरि की जनु मूरति लसै ॥२०॥

राम—(दोधक)

पांडव की प्रतिमा सम लेखौ। अर्जुन भीम महामति देखौ।
है सुभगा सम दीपति पूरी। सिंदुर कौं तिलकावलि रूरी ॥२१॥

सीता—

राजति है यह ज्यौं कुलकन्या। धाइ बिराजति है सँग धन्या।
केलिथली जनु श्रीगिरिजा की। सोभ धरे सितिकंठप्रभा की ॥२२॥

राम—

अति निकट गोदावरी पापसहारिनी। चल तरंगतुंगावली चारु संचारिनी।
अलि कमल सौगंध लीला मनोहारिनी। बहुनयन देवेस-सोभा मनोधारिनी ॥२३॥

(दोधक)—रीति मनो अबिबेक की थापी। साधुन की गति पावत पापी।
कंजज की मति सी बड़भागी। श्रीहरिमंदिर सौं अनुरागी ॥२४॥

(अमृतगति)—निपट पतिब्रतधरनी। मग-जन कौं सुखकरनी।
निगति सदा गति सुनिये। अगति महापति गुनिये ॥२५॥

(दोहा)—बिषमय यह गोदावरी अमृतनि के फल देति।
'केसव' जीवनहार को दुख असेष हरि लेति ॥२६॥

(त्रिभंगी)—जब जब धरि बीना प्रकट प्रबीना बहु गुनलीना सुख सीता।
पिय जियहि रिझावै दुखनि भजावै बिबिध बजावै गुनगीता।
तजि मतिसंसारी बिपिनबिहारी सुखदुखकारी घिरि आवैं।
तबतब जगभूषन रिपुकुलदूषन सबकौं भूषन पहिरावैं ॥२७॥

---

[१८] जतीन-जटीन (दीन०, प्रताप०, सर०)। चटी-तटी (कौमुदी)। जटी-यह (प्रताप०); बन (कौमुदी)। [१६] रुचि-बहु (प्रताप०, सर०)। [२०] लसै-बसै (काशि०)। [२१] कौं-सौं (सर०); औ (कौमुदी)। [२२] राजति-सोहति (प्रताप०, सर०)। [२३] निकट-निकट सुबेस (प्रताप०, सर०)। चल-तरलतर (वही)। अलि०-अमल कमल सुभ्र (प्रताप०)। देवेस-सुरेस (प्रताप०, सर०)। [२५] मगजन-मगजग (प्रताप०); जगजन (काशि०, सर०)। सुख०-दुखहरनी (काशि०)। निगति-निगम (काशि०)। महापति-महागति (प्रताप०); महामति (सर०)। [२७] गुन-रस

(तोटक)—कबरी कुसुमालि सिखीन दई। गजकुंभनि हारनि सोभ भई।
मुकुता सुक-सारिक-नाक रचे। कटि-केहरि किंकिनि सोभ सचे ॥२८॥
दुलरी कल कोकिलकंठ बनी। मृग खंजन अंजन भाँति घनी।
नृपहंसनि नूपुर सोभ भिरी। कलहंसनि कंठनि कंठसिरी ॥२९॥
मुखबासनि बासित कीन तबै। तृन गुल्म लता तरु सैल सबै।
जलहूँ थलहूँ यहि रीति रमैं। बनजीव जहाँ तहँ संग भ्रमैं ॥३०॥

(दोहा)—सहज सुगंध सरीर की दिसि बिदिसनि अवगाहि।
दूती ज्यौं आई लियें 'केसव' सूपनखाहि ॥३१॥

(मरहट्टा)—एक दिन रघुनायक, सीय सहायक, रतिनायक अनुहारि।
सुभ गोदावरितट, बिसद पंचबट, बैठे हुते मुरारि।
छबि देखतहीं मन, मदन मथ्यो तन, सूर्पनखा तेहि काल।
अति सुंदर तनु करि, कछु धीरज धरि, बोली बचन रसाल ॥३२॥

सूर्पणखा—(मत्तगयंद)

किन्नर हौ नररूप बिचक्षन जक्ष कि स्वच्छ सरीरनि सोहौ।
चित्त चकोर के चंद किधौं मृगलोचन चारु बिमाननि रोहौ।
अंग धरे कि अनंग हौ 'केसव' अंगी अनेकन के मन मोहौ।
बीर जटान धरे धनुबान लिये बनिता बन मैं तुम को हौ ॥३३॥

राम—(मनोरमा)

हम हैं दसरथ्थ महीपति के सुत। सुभ राम सु लक्ष्मन नामनि संजुत।
यह सासन दै पठए नृप कानन। मुनि पालहु मारहु राकस के गन ॥३४॥

सूर्पणखा—

नृप रावन की भगिनी गनि मोकहँ। जिहि की ठकुराइति तीनहु लोकहँ।
सुनिजै दुखमोचन पंकजलोचन। अब मोहि करौ पतिनी मनरोचन ॥३५॥

(तोमर)—तब यों कह्यो हँसि राम। अब मोहि जानि सबाम।
तिय जाइ लक्ष्मन देखि। सम रूप जौबन लेखि ॥३६॥

सूर्पणखा—(दोधक)

राम सहोदर मो तन देखौ। रावन की भगिनी जिय लेखौ।
राजकुमार रमौ सँग मेरे। होहिं सबै सुख संपति तेरे ॥३७॥

---

[२९] भाँति–सोभ (कौमुदी)। घनी–ठनी (काशि०); भनी (सर०)। नृप–पग (प्रताप०)। [३१] सुगंध–सुबास (प्रताप०, सर०)। दिसि०–बन उपबन (दीन० २)। [३२] बिसद–बिमल (कौमुदी)। तनु–बपु (प्रताप०, सर०)। [३३] अनेकन–अनंगनि (प्रताप०, सर०)। [३४] यह०–हौं सिख (दीन० २); नृप सासन लै (सर०)। मारहु–घालहु (कौमुदी)।

लक्ष्मण—(दोधक)

वै प्रभु हौं जन जानि सदाई। दास भए महँ कौनि बड़ाई।
जौ भजिये प्रभु तौ प्रभुताई। दासि भए उपहास सदाई ॥३८॥

(मल्लिका)—हास के बिलास जानि। दीह मानखंड मानि।
भक्षिबे कौं चित्त चाहि। सामुहँ भई सियाहि ॥३९॥

(तोमर)—तब रामचंद्र प्रवीन। हँसि बंधु त्यौं दृग दीन।
गुनि दुष्टता सह लीन। श्रुति नासिका बिनु कीन ॥४०॥

(दोहा)—सोनछिंछि छूटत बदन भीम भई तेहि काल।
मानो कृत्या कुटिल जुत पावकज्वाल कराल ॥४१॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां शूर्पणखाश्रवणनासिकाछेदननामैकादशः प्रकाशः ॥११॥

१२

(तोटक)—गइ सूपनखा खरदूषन पै। सजि ल्याई तिन्हैं जगभूषन पै।
सर एक अनेक ते दूरि किये। रबि के कर ज्यौं तमपुंज पिये ॥१॥

(मनोरमा)

बृष के खरदूषन ज्यौं खर दूषन। तब दूरि किये रबि के कुलभूषन।
गदसत्रु त्रिदोष ज्यौं दूरि करै बर। त्रिसिरा-सिर त्यौं रघुनंदन के सर ॥२॥

(दोहा)—खरदूषन सौं जुद्ध बड़ भयो अनंत अपार।
सहस चतुर्दस राकसन मारत लगी न बार ॥३॥
गई अंध दसकंध पै खरदूषनहि जुझाइ।
सूपनखा लखि मन सिया बेष सुनायो जाइ ॥४॥

(दंडक)

मयकी सुता धौं को है मोहनी ह्वै मोहै मन आजुलौं न सुनी सु तौ नैननि निहारिये।
देहदुति दामिनीहू नेह कामकामिनीहू, एक लोम ऊपर पुलोमजा बिचारिये।
भाग पर कमला सुहाग पर बिमलाहू, बानी पर बानी 'केसोदास' सुखकारिये।
सातदीप सातलोक सातहु रसातल की तीयन की गीता सबै सीता पर वारिये ॥५॥

---

[३८] महँ—तोहिं (प्रताप०); तुम (सर०)। [४०] बंधु—अनुज (प्रताप०, काशि०, सर०)।

[२] बृष—बिधि (दीन० २)। तब—सब (कौमुदी)। [५] ह्वै—हि (प्रताप०); (हू सर०)। मन—ऐसी (प्रताप०, सर०)। नेह—मोह (प्रताप० [illegible]—पोत (कौमुदी)।

(मनोरमा)

भजि सूपनखा गइ रावन पै तब । त्रिसिरा-खरदूषन नास करो सब ।
तब सुपनखा मुख बात सबै सुनि । उठि रावन गो जहँ मारिच हो मुनि ॥६॥

(दोधक)—रावन बात कही सिगरी त्यों । सूपनखाहिं विरूप करी ज्यों ।
राकस राम अनेक सँघारे । दूषन स्यौं त्रिसिरा खर मारे ॥७॥

तू अब होहि सहायक मेरो । हौं बहुतै गुन मानिहौं तेरो ।
जौ हरि सीतहि ल्यावन पैहैं । वै भ्रमि सोकनहीं मरि जैहैं ॥८॥

मारीच—(दोधक)

रामहि मानुष कै जनि जानौ । पूरन चौदह लोक बखानौ ।
जाहु जहाँ तिय लै सु न देखौं । हौं हरि कौं जलहू थल लेखौं ॥९॥

रावण—(सुंदरी)

तू अब मोहि सिखावत है सठ । मैं बस जक्त कियो अपनी हठ ।
बेगि चलै अब देहि न उत्तर । देव सबै जन एक नहीं हर ॥१०॥

(दोहा)—जानि चल्यो मारीच मन मरन दुहूँ विधि आसु ।
रावन के कर नरक है हरिकर हरिपुरबासु ॥११॥

राम—

राजसुता एक मंत्र सुनौ अब । चाहत हौं भुवभार हर्यो सब ।
पावक मैं निज देहहि राखहु । छाय-सरीर मृगैं अभिलाषहु ॥१२॥

(चामर)

आइयो कुरंग एक चारु हेम हीर को । जानकी समेत चित्त मोहि राम बीर को ।
राजपुत्रिका समीप साधु बंधु राखिकै । हाथ चाप बान लै गए गिरीस नाखिकै ॥१३॥

(दोहा)—रघुनायक जबहीं हन्यो, सायक सठ मारीच ।
'हा लछिमन' यह कहि गिरो, श्रीपति के स्वर नीच ॥१४॥

(निशिपालिका)

राजतनया तबहिं बोल सुनि यों कह्यो । जाहु चलि देवर न जात हम पै रह्यो ।
हेममृग होहि नहिं रैनिचर जानियो । दीन स्वर राम केहि भाँति मुख आनियो १५

---

[६] सबै–जबै (कौमुदी) । मुनि–पुनि (प्रताप०, सर०) । [७] सूप०–सूपनखा सु (प्रताप०, सर०) । राकस–एकहि (कौमुदी) । स्यौं–त्यौं (प्रताप०) । [८] जौ–हौं (प्रताप० सर०) । [९] तिय–सिय (कौमुदी) । [१०] जक्त०–लोक करे (कौमुदी) । हर–हरि (दीन० २) । [११] है–निजु (प्रताप०, सर०) । [१४] सठ–एक (प्रताप०); सो (सर०) । श्रीपति–रघुपति (सर०) । [१५] जात–जाइ (प्रताप०, सर०) ।

लक्ष्मण—(निशिपालिका)

सोच अति पोच उर मोचि दुखदानिये। मातु यह बात अवदात मम मानिये।
रैनिचर छद्म बहु भाँति अभिलाषहीं। दीन स्वर राम कबहूँ न मुख भाषहीं॥१६॥

(चंचला)

पक्षिराज जक्षराज प्रेतराज जातुधान। देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान।
पर्बतारि अर्ब खर्ब सर्ब सर्बथा बखानि। कोटि कोटि सूर चंद्र रामचंद्र-दास मानि॥१७॥

(चामर)

राजपुत्रिका कह्यो सु और को कहै सुनै। कान मूँदि बार बार सीस बीसधा धुनै।
चापकीय रेख खाँचि देव साखि दै चले। नाखिहैं ते भस्म होहिं जीव जे बुरे भले॥१८॥

(चामर)—छिद्र ताकि छुद्रबुद्धि लंकनाथ आइयो।
भक्षु जानि जानकी सु भीख कौं बुलाइयो।
सोच पोच मोचिकै सकोच भीम भेष को।
अंतरिक्ष ही हरी ज्यौं राहु चंद्ररेख को॥१९॥

(दंडक)

धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु की सिखा कै धूमजोनिमध्य रेखा सुधाधाम की।
चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगरूरे माहिं, संबर छड़ाइ लई कामिनी कै काम की।
पाखंडी की श्रद्धा कै मठेसबस एकादसी, लीनी कै स्वपचराज साखा सुद्ध साम की।
'केसव' अदृष्टसाथ जीवजोति जैसी तैसी, लंकनाथ हाथ परी छायाजाया राम की।२०।

सीता—(वसंततिलका)

हा राम हा रमन हा रघुनाथ धीर। लंकाधिनाथबस जानहु मोहि बीर।
हा पुत्र लक्ष्मन छुड़ावहु बेगि मोहि। मार्तंडबंसजस की सब लाज तोहि॥२१॥
पंछी जटायु यह बात सुनंत धाइ। रोक्यो तुरंत बल रावन दुष्ट जाइ।
कीन्हो प्रचंड रथ छत्रध्वजाबिहीन। छोड्यो बिपक्ष तब भो जब पक्षहीन॥२२॥

(संयुक्ता)—दसकंठ सीतहि लै चल्यो। अति बृद्ध गीधहि यौं दल्यो।
चित जानकी अध कौं कियो। हरि तीन-द्वै अवलोकियो॥२३॥
पद पद्म की सुभ घूँघरी। मनिनील हाटक सौं जरी।
जुत-उत्तरीय बिचारिकै। भुव डारि दी पग टारिकै॥२४॥

(दोहा)—सीता के पदपद्म के नूपुर-पट जनि जानु।
मनहुँ कह्यो सुग्रीव-घर राजश्री-प्रस्थानु॥२५॥

---

[१६] मम–उर (प्रताप०); मन (सर०)। [१९] हरी–करी (काशि०)। [२०] श्रद्धा–सिद्धि (कौमुदी)। [२१] रघुनाथ–जगनाथ (प्रताप०, सर०, दीन०)। [२२] बस–रथ (प्रताप०)। प्रचंड–तुरंग (सर०)। रथ–रन (कौमुदी)। तब–जब (प्रताप०)। जब–निजु (वही)। [२५] इसके अनंतर सर० में यह दोहा अधिक है—
सोदर सहित बिलोकियो रघुपति सूनो सद्म। सुभता सौं न सुगंधजुत ज्यौं पद्मा बिनु पद्म॥

जद्यपि श्रीरघुनाथजू सम सर्वग सर्वज्ञ।
नर कैसी लीला करत जेहि मोहत सब अज्ञ ॥२६॥

राम—(दुर्मिला)

निज देखौं नहीं सुभ गीतहि सीतहि कारन कौन कहौ अबहीं।
अति मो हित कै बन माँझ गई सुर-मारग में मृग मारयो जहीं।
कटु बात कछू तुमसौं कहि आई किधौं तेहि त्रास डेराइ रहीं।
अब है यह पर्नकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मन होइ नहीं ॥२७॥

(दोधक)—धीरज सौं अपनो मन रोक्यो। गीध जटायु परयो अवलोक्यो।
छत्रध्वजा रथ देखिकै बूझ्यो। गीध कहौ रन कौन सौं जूझयो ॥२८॥

(जटायु)—राघव लै गयो रावन सीता। हा रघुनाथ रटै सुभगीता।
मैं बिनु छत्रध्वजा रथ कीनो। ह्वै गयो हौं बल-पक्ष-बिहीनो ॥२६॥

मैं जग मैं सब तैं बड़भागी। देहदसा तव कारन लागी।
जो बहु भाँतिन बेदनि गायो। रूप सो मैं अवलोकन पायो ॥३०॥

राम (दोधक)—साधु जटायु सदा बड़भागी। तो मन मो बपु सौं अनुरागी।
छूटो सरीर सुनी यह बानी। रामहि मैं तब जोति समानी ॥३१॥

(तोटक)—दिसि दक्षिन कौं करि दाह चले। सरिता गिरि देखत बृक्ष भले।
बन अंध कबंध बिलोकतहीं। दोउ सोदर खैंचि लिये तबहीं ॥३२॥

जब खैंचेहि कौं जिय बुद्धि गुनी। दुहुँ बाननि लै दोउ बाहु हनी।
वह छाँडिकै देह चल्यो जबहीं। यह ब्योम मैं बात कही तबहीं ॥३३॥

कबंध (मोटनक)—पीछे मघवा मोहि साप दई। गंधर्ब तैं राक्षस-देह भई।
फिरिकै मघवा सह जुद्ध भयो। उन क्रोध कै सीस पै बज्र हयो ३४

(दोहा)—गयो सीस गड़ि पेट मैं परयो धरनि पर आइ।
कछु करुना जिय मैं भई दीन्ही बाहु बढ़ाइ ॥३५॥

बाहु दई द्वै कोस की 'आवै तेहि गहि खाउ।
रामरूप सीता-हरन उधरहु गहन उपाउ' ॥३६॥

गंधर्व—सुरसरि तैं आगे चले मिलिहैं कपि सुग्रीव।
दैहैं सीता की खबर बाढ़ै सुख अति जीव ॥३७॥

---

[२७] निज—निजु (प्रताप०)। डेराइ—दुराइ (कौमुदी)। [३०] मैं जग—हौं जग (प्रताप०, सर०)। कारन—कारज (वही)। [३१] छूटो—छूटि (प्रताप०, सर०)। तब—वह (सर०)। [३२] दोउ०—सुरलोक गयो सर लागतहीं (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३३] संख्या ३३ से ३७ तक 'दीन०,प्रताप०,सर०' में नहीं है। खैंचेहि—खैबेहि (कौमुदी)। [३४] पै—मैं (काशि०)।

(तोटक)—सरिता इक 'केसव' सोभरई। अवलोकि तहाँ चकवा-चकई।
उर मैं सियप्रीति समाइ रही। तिनसों रघुनायक बात कही ॥३८॥

अवलोकत हे जबहीं जबहीं। दुख होत तुम्हैं तबहीं तबहीं।
वह बैर न चित्त कछू धरिये। सिय देहु बताइ कृपा करिये ॥३९॥

ससि के अवलोकन दूर किये। जिनके मुख की छबि देखि जिये।
कृति चित्त चकोर कछूक धरौ। सिय देहु बताइ सहाइ करौ ॥४०॥

लक्ष्मण—(चंद्रकला)

कहि 'केसव' जाचक के अरि चंपक सोक असोक लिये हरिकै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीक्षन जानि तजे डरिकै।
सुनि साधु तुम्हैं हम बूझन आए रहे मन मौन कहा धरिकै।
सिय को कछु सोधु कहौ करुना करुनामय सौं करुना करिकै ॥४१॥

राम (नराच)—हिमांसु सूर सो लगै सो बात बज्र सो बहै।
दिसा लगै कृसानु ज्यों बिलेप अंग कों दहै।
बिसेष कालराति सी कराल राति मानिये।
बियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये ॥४२॥

(पद्धटिका)—यहि भाँति बिलोके सकल ठौर। गए सबरी पै दोउ देवमौर।
लियो पादोदक तेहि पद पखारि। पुनि अर्घादिक दीन्हे सुधारि ॥४३॥
हर देत मंत्र जिनको बिसाल। सुभ कासी मैं पुनि मरनकाल।
ते आए मेरे धाम आज। सब सफल करन जप-तप-समाज ॥४४॥
फल भोजन कौं तेहि धरे आनि। भये जज्ञपुरुष अतिप्रीति मानि।
तिन रामचंद्र-लक्ष्मन-स्वरूप। तब धरे चित्त जगजोति-रूप ॥४५॥

(दोहा)—सबरी पावकपंथ तब, हरषि गई हरिलोक।
बननि बिलोकत हरि गए, पंपातीर ससोक ॥४६॥

(तोटक)—अति सुंदर सीतल सोभ बसै। जहँ रूप अनेकनि लोभ लसै।
बहु पंकज पक्षि बिराजत हैं। रघुनाथ बिलोकत लाजत हैं ॥४७॥

---

[३८] रई—मई (प्रताप०, सर०)। [४०] छबि०—रुचि पीकै (प्रताप०, सर०)। [४१] सोक—कोप (दीन०, प्रताप०)। जाति०—जाल गुलाल (प्रताप०, सर०)। कहौ—करौ (प्रताप०)। करुना०—करुना हे करुना (कौमुदी)। [४२] दिसा—निसा (प्रताप०, सर०)। [४३] पुनि—अरु (प्रताप०); तब (सर०); दीन्हे—कीनो (प्रताप०); आसन (सर०)। [४६] बननि—कानन (सर०)। ससोक—असोक (प्रताप०, सर०)। [४७] सोभ०—सुभ्र लसै (प्रताप०)। रूप—भाँति (दीन०)। अनेकनि—समूहनि (प्रताप०)। लोभ०—सोम बसै (प्रताप०, सर०, दीन०)।

सिगरी रितु सोभित सुभ्र जहीँ। लह ग्रीषम पै न प्रबेस सही।
नव नीरज नील तहाँ सरसैँ। सिय के सुभ लोचन से दरसैँ ॥४८॥

(विजय)—सुंदर सेत सरोरुह मैँ करहाटक हाटक की दुति को है।
तापर भौँर भलो मनरोचन लोक-बिलोचन की रुचि रोहै।
देखि दई उपमा जलदेबिन दीरघ देवनि के मन मोहै।
केसव 'केसवराय' मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै ॥४६॥

लक्ष्मण—(दुर्मिला)

मिलि चक्रिन चंदन बात बहै अति मोहत न्यायनहीँ मति कौँ।
मृगमित्र बिलोकत चित्त जरै लिये चंद्र निसाचर-पद्धति कौँ।
प्रतिकूल सुकादिक होहिँ सबै जिय जानै नहीँ इनकी गति कौँ।
दुख देत तड़ाग तुम्हैँ न बनै कमलाकर है कमलापति कौँ ॥५०॥

(दोहा)—रिष्यमूक पर्बत गए 'केसव' श्रीरघुनाथ।
देखे बानर पंच बिभु मानो दक्षिन हाथ ॥५१॥

(कुसुमविचित्रा)—तब कपि राजा रघुपति देखे। मन नर-नारायन सम लेखे।
द्विजबपु धरि तहँ हनुमत आए। बहु बिधि दै आसिष मन भाए ॥५२

हनुमान—सब बिधि रूरे बन महँ को हौ। तन-मन-सूरे मनमथ मोहौ।
सिरसि जटा बालक-बपुधारी। हरिहर मानौ बिपिनबिहारी ॥५३॥

परम बियोगी सम रसभीने। तन-मन एकै जुग तन कीने।
अब तुम को, का लगि बन आए। केहि कुल हौ कौनहिँ पुनि जाए ॥५४॥

राम (चंचरी)—पुत्र श्रीदसरथ्थ के बन राजसासन आइयो।
सीय सुंदरि संग ही बिछुरी सु सोधु न पाइयो।
रामलक्ष्मन-नामसंजुत सूरबंस बखानिये।
रावरे बन कौन हौ केहि काज क्यौँ पहिचानिये ॥५५॥

हनुमान (दोहा)—या गिरि पर सुग्रीव नृप, ता सँग मंत्री चारि।
बानर लई छड़ाइ तिय, दीन्हो बालि निकारि ॥५६॥

(दोधक)—वा कहँ जौ अपनो करि जानौ। मारहु बालि बिनै यह मानौ।
राज दै देहु जौ वाकी तिया कौँ। तौ हम देहिँ बताइ सिया कौँ ॥५७॥

---

[४८] जहीँ–जहाँ (प्रताप०, सर०)। सही–तहाँ (वही)। नील–नीर (काशि०, कौमुदी)। [५०] जरै–दहै (प्रताप०, सर०)। [५२] मन०–तनमन (प्रताप०, सर०)। धरि०–धारी (प्रताप०); करिकै (सर०); कै श्री (कौमुदी)। [५५] बन–तुम (प्रताप०, सर०)। काज–भाँति (दीन०, प्रताप०, सर०)। [५७] दै०–देउ दै वाकि (कौमुदी)।

लक्ष्मण—आरत की प्रभु आरति टारौ। दीन अनाथन कौं प्रतिपारौ।
थावर जंगम जीव जु कोऊ। संमुख होत कृतारथ सोऊ ॥५८॥

बानर ह्वै हनुमान सिधाथ्यो। सूरज को सुत पाइनि पाथ्यो।
राम कह्यो उठि बानरराई। राजसिरी सखि स्यौं तिय पाई ॥५६॥

(दोहा)—उठे राज सुग्रीव तब, तन-मन अति सुख पाइ।
सीताजू के पटसहित, नूपुर दीन्हो आइ ॥६०॥

(तारक)—रघुनाथ जबै पट-नूपुर देखे। कहि 'केसव' प्रान-समानहि लेखे।
अवलोकत लक्ष्मन के कर दीन्हे। उन आदर सौं सिर मानिकै लीन्हे ॥६०॥

(दंडक)

पंजर की खंजरीट नैनन को किधौं मीन मानस को 'केसोदास' जलु है कि जारु है।
अंगको कि अंगराग गेंडुआ कि गलसुई कैधौं कटिजेब ही को उरको कि हारु है।
बंधन हमारो कामकेलि को कि ताड़िबे को ताजनो कि बिजन कि चामर बिचारु है।
मान की जमनिका की कंजमुख मूँदिबे को सीताजू को उत्तरीय सब सुखसारु है ॥६२॥

(स्वागता)—बानरेंद्र तब यौं हँसि बोल्यो। भीतिभेद जिय को सब खोल्यो।
आगि बारि परतक्ष करी जू। रामचंद्र हँसि बाँह धरी जू ॥६३॥
सूरपुत्र तब जीवन जान्यो। बालिजोर बहु भाँति बखान्यो।
नारि छीनि जेहि भाँति लई जू। सो असेष बिनती बिनई जू ॥६४॥
एक बार सर एक हनौ जौ। सात ताल बलवंत गनौं तौ।
रामचंद्र हँसि बान चलायो। ताल बेधि फिरिकै कर आयो ॥६५॥

सुग्रीव—(तारक)

यह अद्भुत कर्म न और पै होई। सुर सिद्ध प्रसिद्धन मैं तुम कोई।
निकरी मन तैं सिगरी दुचिताई। तुम सो प्रभु पायो सदा सुखदाई ॥६६॥

(विजय)—बावन को पद लोकन मापि ज्यौं बावन के बपु माहँ सिधायो।
'केसव' सूरसुताजल सिंधुहि पूरिकै सूरहि को पद पायो।

---

[५८] प्रभु—तुम (प्रताप०); हम (सर०)। कोऊ—कोई (प्रताप०, सर०)। सोऊ—होई (वही)। [५६] सखि—सख (कौमुदी)। [६०] उठे०—उठि राजा (दीन०, प्रताप०, सर०)। दीन्हो०—दीन्हे लाइ (कौमुदी)। [६१] नूपुर—भूषन (दीन०, प्रताप०, सर०)। अवलोकत—अवलोकन (कौमुदी)। मानि—लाइ (वही)। [६२] कटि०—कोट जीव (कौमुदी); कटिजेब कहो (प्रताप०); कटिजेवर (सर०)। काम—कोप (दीन०, सर०)। कि विजन०—बिचार को कि बिजन (प्रकाशिका, कौमुदी); बिचार को कि चमर (काशि०)। [६३] यौं—ही (कौमुदी)। परतक्ष—जब साखि (वही)। [६५] जौ—जू (प्रताप०) तौ—जू (वही)। [६६] हँसि—तब (प्रताप०, सर०)। पायो—पाइ (काशि०); पाये (कौमदी)।

काम के बान त्वचा सब भेदि कै काम पै आवत ज्यौं जग गायो।
राम को सायक सातहु तालन बेधि कै रामहि के कर आयो ॥६७॥

(सोरठा)—जिनके नाम बिलास, अखिल लोक बेधत पतित।
तिनको 'केसवदास', सात ताल बेधत कहा ॥६८॥

राम—(तारक)

अति संगति बानर की लघुताई। अपराध बिना बध कौनि बड़ाई।
अब है कछु मोमन ऐसियै इच्छा। हति बालिहि देउँ तुम्हैं नृपसिक्षा ॥६९॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणि श्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां सीताहरण-रामसुग्रीवमैत्रीवर्णनन्नाम द्वादशः प्रकाशः ॥१२॥

१३

(पद्धटिका)—रबिपुत्र बालि सों होत जुद्ध। रघुनाथ भए मन माहँ क्रुद्ध।
सर एक हन्यो उर मित्र काम। तब भूमि गिर्‍यो कहि राम राम ॥१॥

कछु चेत भए तें बलनिधान। रघुनाथ बिलोके हाथ बान।
सुभ चीर जटा सिर स्याम गात। बनमाल हिये उर बिप्रलात ॥२॥

बालि—तुम आदि मध्य अवसान एक। जग मोहत हौ बपु धरि अनेक।
तुम सदा सुद्ध सबकों समान। केहि हेतु हत्यो करुनानिधान ॥३॥

राम—सुनि बासवसुत बल-बुधिनिधान। मैं सरनागत-हित हते प्रान।
यह साँटो लै कृष्नावतार। तब ह्वैहौ तुम संसार-पार ॥४॥

रघुबीर रंक तें राज कीन। जुवराज-बिरद अंगदहि दीन।
तब किष्किंधा तारा-समेत। सुग्रीव गए अपने निकेत ॥५॥

---

[६७] सिधायो—समायो (कौमुदी)। कै—यौं (प्रताप०, सर०)। भेदि—बेधि (कौमुदी); छेदि (सर०)। बेधि—भेदि (प्रताप०, सर०)। [६८] बेधत—बेधन (कौमुदी); भेदन (प्रताप०, सर०)।

[२] भए—भयो (काशि०, सर०)। तें०—बलबुधि (दीन०१); तब बल (दीन०२)। हाथ—धरे (दीन० २)। सुभ—सिर (सर०); प्रति (दीन० १)। सिर—अरु (प्रताप०); तन (सर०)। उर—मनि (दीन० २, सर०)। [३] तुम—जग (सर०, कौमुदी)। [५] राब—राव (कौमुदी)।

(दोहा)—कियो नृपति सुग्रीव हति बालि बली रनधीर।
गए प्रबर्षन अद्रि कौं लक्ष्मन स्यौं रघुबीर ॥६॥

(त्रिभंगी)—देख्यो सुभ गिरिबर, सकल सोभधर, फूल बरन बहु फरनि फरे।
सँग सरभ रिक्षजन, केसरि के गन, मनहु धरनि सुग्रीव धरे।
सँग सिवा बिराजै, गजमुख गाजै, परभृत बोलै चित्त हरे।
सिर सुभ चंद्रकधर, परम दिगंबर, मानो हर अहिराज धरे ॥७॥

(तोमर)—सिसु सो लसै सँग धाइ। बनमाल ज्यौं सुरराइ।
अहिराज सो यहि काल। बहु सीस सोभनि माल ॥८॥

राम (स्वागता)—चंद मंददुति बासर देखौ। भूमिहीन भुवपाल बिसेषौ।
मित्र देखि यह सोहत है यौं। राजसाज बिनु सीतहि हौं ज्यौं ॥९॥

(दोहा)—पतिनी पति बिनु दीन अति, पति पतिनी बिनु मंद।
चंद बिना ज्यौं जामिनी ज्यौं बिनु जामिनि चंद ॥१०॥

(स्वागता)—देखि राम बरषा रितु आई। रोम रोम बहुधा दुखदाई।
आसपास तम की छबि छाई। राति द्यौस कछु जानि न जाई ॥११॥

मंद मंद धुनि सौं घन गाजैं। तूर तार जनु आवझ बाजैं।
ठौर ठौर चपला चमकै यौं। इंद्रलोक-तिय नाचति है ज्यौं ॥१२॥

(मोटनक)—सोहैं घन स्यामल घोर घनै। मोहैं तिनमैं बकपाँति मनै।
संखावलि पी बहुधा जल स्यौं। मानौ तिनकौं उगिलैं बलस्यौं ॥१३॥

सोभा अति सक्रसरासन मैं। नाना दुति दीसति है घन मैं।
रत्नावलि सी दिविद्वार भनौ। बर्षागम बाँधिय देव मनौ ॥१४॥

(तारक)—घन घोर घने दसहू दिसि छाए। मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आए।
अपराध बिना क्षिति के तन ताए। तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाए ॥१५॥

अति गाजत बाजत दुंदुभि मानौ। निरघात सबै पबिपात बखानौ।
धनु है यह गौरमदाइन नाहीं। सरजाल बहै जलधार बृथाहीं ॥१६॥

भट चातक दादुर मोर न बोले। चपला चमकै न फिरैं खँग खोले।
दुतिवंतन कौं बिपदा बहु कीन्ही। धरनी कहँ चंद्रबधू धरि दीन्ही ॥१७॥

---

[६] कौं—स्यौं (प्रताप०, सर०)। स्यौं—श्री (प्रताप०, काशि०, सर०)।
[७] सोभधर—कलाधर (दीन० १)। बरन—बृंद (प्रताप०)। फरनि—बरनि (सर०)। धरनि—चरन (कौमुदी)। धरे—परे (वही)। धरे—गरैं (प्रताप०)।
[८] लसै—लगै (प्रताप०)। [१४] रत्नावलि—हारावलि (प्रताप०,)। [१५] क्षिति—भुव (प्रताप०, सर०)। [१६] पबिपात—परताप (दीन० २)। [१७] फिरैं—चलै (दीन० १)। बहु—असि (प्रताप०)।

तरुनी यह अत्रि रिषीस्वर की सी। उर मैं हम चंद्रप्रभा सम दीसी।
बरषा न सुनौ किलकै किल काली। सब जानत हैं महिमा अहिमाली ॥१८॥

(घनाक्षरी)

भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर, भूषन जराइ जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुखमुख सुषमा ससी की नैन अमल कमलदल दलितनिकाई है।
'केसोदास' प्रबल करेनुकागमनहर मुकुत-सुहंसक-सबद सुखदाई है।
अंबर बलित मति मोहै नीलकंठजू की कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है ॥१९

(तारक)—अभिसारिनि सी समझौ परनारी। सतमारग-मेटन कौं अधिकारी।
मति लोभ-महामद-मोह-छई है। द्विजराज सुमित्र प्रदोषमई है ॥२०॥

(दोहा)—बरनत केसव सकल कबि बिषम गाढ़ तम-सृष्टि।
कुपुरुषसेवा ज्यौं भई संतत मिथ्या दृष्टि ॥२१॥

राम—(चंद्रकला)

कलहंस कलानिधि खंजन कंज कछू दिन 'केसव' देखि जिये।
गति आनन लोचन पाइनि के अनुरूपक से मन मानि लिये।
यहि काल कराल ते सोधि सबै हठिकै बरषा मिस दूरि किये।
अब धौं बिनु प्रान प्रिया रहिहैं कहि कौन हितू अवलंबि हिये ॥२२॥

(दोहा)—बीते बरषाकाल यौं आई सरद सुजाति।
गए अँध्यारी होति ज्यौं चारु चाँदनी-राति ॥२३॥

(मोटक)—दंतावलि कुंद समान गनौ। चंद्रानन कुंतल भौंर घनौ।
भौंहैं धनु खंजन नैन मनौ। राजीवनि ज्यौं पद पानि भनौ ॥२४॥
हारावलि नीरज हीय रमैं। है लीन पयोधर अंबर मैं।
पाटीर जुन्हाइहि अंग धरै। हँसी गति 'केसव' चित्त हरै ॥२५॥
श्रीनारद की दरसै मति सी लोपै तमता अपकीरति सी।
मानौ पतिदेवन की रति कौं। सन्मारग की समझौ गति कौं ॥२६॥

(दोहा)—लक्ष्मन दासी बृद्ध सी आई सरद सुजाति।
मनहु जगावन कौं हमहि बीते बरषा राति ॥२७॥

---

[१८] चंद्रप्रभा—चंद्रकला (काशि०); चंद्रमुखी (सर०)। सम—इमि (प्रताप०); मय (सर०)। किल—कल (कौमुदी); यह (सर०)। महिमा—सहसा (दीन० २)। [२०] कौं—की (कौमुदी)। [२१] मिथ्या—निःफल (प्रताप०, सर०, दीन० १) [२४] भौंर—चौंर (काशि०, सर०)। [२५] है—जनु (कौमुदी)। [२६] तमता०—तमताप अकीरति (कौमुदी); तमता तपकीरति (सर०)। कौं—सी (कौमुदी)।

(कुंडलिया)—तातें नृप सुग्रीव पै जैये सत्वर तात।
कहियो बचन बुझाइकै कुसल न चाहौ गात।
कुसल न चाहौ गात चहत हौ बालिहि देख्यो।
करहु न सीतासोध कामबस राम न लेख्यो।
राम न लेख्यो चित्त लही सुख-संपति जातें।
मित्र कह्यो गहि बाँह कानि कीजत है तातें ॥२८॥

(दोहा)—लक्ष्मन किष्किंधा गए, बचन कहे करि क्रोध।
तारा तब समझाइयो, कीन्हो बहुत प्रबोध ॥२९॥

(दोधक)—बोलि लए हनुमान तबै जू। ल्यावहु बानर बोलि सबै जू।
बार लगै न कहूँ बिरमाहीँ। एकु न कोउ रहै घर माहीँ ॥३०॥

(त्रिभंगी)—सुग्रीव-सँघाती, मुखदुति राती, 'केसव' साथहि सूर नए।
आकासबिलासी, सूरप्रकासी, तबहीँ बानर आइ गए।
दिसि दिसि अवगाहन, सीतहि चाहन, जूथप जूथ सबै पठए।
नल नील रिक्षपति, अंगद के सँग, दक्षिन दिसि कौं बिदा भए ॥३१॥

(दोहा)—बुधि-बिक्रम-ब्यवसायजुत साधु समुझि रघुनाथ।
बल अनंत हनुमंत के मुँदरी दीन्ही हाथ ॥३२॥

(हीरक)—चंडि बरनि, छंडि धरनि, मंडि गगन धावहीँ।
तक्षिन हुइ दक्षिन दिसि लक्षिन नहिँ पावहीँ।
धीरधरन बीरबरन सिंधुतट सुभावहीँ।
नाम परम, धाम धरम, रामकरम गावहीँ ॥३३॥

अंगद (अनुकूला)—सीय न पाई अवधि बिनासी। होहु सबै सागरतटबासी।
जौ घर जैये सकुच अनंता। मोहि न छोड़ै जनकनिहंता ॥३४॥

(हनुमान)—अंगद रक्षा रघुपति कीनी। सोध न सीता जल थल लीनी।
आलस छाड़ौ कृत उर आनौ। होहु कृतघ्नी जिनि, सिख मानौ ॥३५॥

[२८, २९, ३०] दीन०, प्रताप० और सर० में नहीं हैं। लही—चही (काशि०)। हनुमान—हनुमंत (वही)। [३१] साथहि—सायुध (प्रताप०, सर०); आयुध (दीन० १)। सूर०—सूरप्रभाती (दीन० २, सर०)। के सँग—संगति (प्रताप०)। [३३] चंडि०—चंडचरन (दीन०, काशि०, कौमुदी)। मंडि—मगर (दीन० २); मार्ग (दीन० १)। तक्षिन—दक्षिन (दीन०, सर०)। हुइ—के (दीन०)। लक्षिन—लक्ष्य (काशि०); लक्षिम (सर०); लक्ष्यहि (कौमुदी)। [३५] कीनी—कीन्हो (काशि०, कौमुदी)। लीनी—लीन्हो (वही)। आनौ—धारौ (दीन० २)। जिनि—जिय (सर०); जौं (प्रताप०)। सिख—नहि (वही)। मानौ—ठारौ (दीन० २)।

अंगद—(दंडक)

जीरन जटायु गीध धन्य एक जिन रोकि रावन बिरथ कीन्हो सहि निज प्रानहानि।
हुते हनुमंत बलवंत तहाँ पाँच जन, दीन्हे हुते भूषन कछूक नररूप जानि।
आरत पुकारत ही राम राम बारबार. लीन्हो न छड़ाइ तुम सीता अति भीत मानि।
गाइ द्विजराज तिय काज न पुकार लागै भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि ।३६

(दोहा)—सुनि संपाति सपक्ष ह्वै रामचरित सुख पाइ।
सीता लंका माँझ है खगपति दई बताइ ॥३७॥

(दंडक)

हरि कैसो बाहन कि बिधि कैसो हेमहंस लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक कौं।
तेज को निधान राममुद्रिकाबिमान कैधौं लक्ष्मन को बान छूट्यो रावन निसंक कौं।
गिरिगजगंड तें उड़ान्यो सुबरन-अलि सीतापद-पंकज सदा कलंक रंक कौं।
हवाई सी छूटी 'केसोदास' आसमान मैं कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक कौं।

(दोहा)—बीच गए सुरसा मिली और सिंहिका नारि।
लीलि लियो हनुमंत तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि ॥३९॥

(दोहा)—उदधि नाकपतिसत्रु को उदित जानि बलवंत।
अंतरिक्षहीं लक्षि पद-अक्ष छुयो हनुमंत ॥४०॥

(तारक)—कछु राति गए करि दंस दसा सी पुर माँझ चले बनराजिबिलासी।
जबहीं हनुमंत चले तजि संका। मग रोकि रही तिय ह्वै तब लंका ४१

लंका—कहि मोहि उलंघि चले तुम को हौ। अति सूक्षम रूप धरे मन मोहौ।
पठए केहि कारन कौन चले हौ। नर हौ किधौं कोउ सुरेस भले हौ ॥४२

हनुमान—

हम बानर हैं रघुनाथ पठाए। तिनकी तरुनी अवलोकन आए।

लंका—हति मोहि महामति भीतर जैये।

हनुमान—तरुनीहि हते कब तैं सुख पैये ॥४३॥

लंका—तुम मारेहि पै पुर पैठन पैहौ। हठ कोटि करौ घरहीं फिरि जैहौ।
हनुमंत बली तेहि थापर मारी। तजि देह भई तबहीं बर नारी ॥४४॥

लंका—(तामरस)

धनदपुरी हउँ रावन लीनी। बहुबिधि पापन के रस भीनी।
चितचतुरानन चिंतन कीन्हो। बरु करुना करि मोकहँ दीन्हो ॥४५॥

---

[३६] जिन—जिहि (प्रताप०, सर०)। तहाँ—जहँ (वही)। [३७] राम०—रामचरन चित्त लाइ (प्रताप०)। [३९] उदधि—मैनाक (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४१] तजि—करि (दीन० २)। [४२] सुरेस—नरेस (दीन० १)। [४३] लौं—तैं (सर०); कै (प्रताप०)। [४४] बली—हठी (दीन० २, प्रताप०)। तेहि—उठि (दीन० २)। [४५] हउँ—जब (प्रताप०); है (सर०)। करि—कर (प्रताप०, सर०)। सिवा—सिया (कौमुदी)।

जब दसकंठ सिया हार लैहै। हारि हनुमंत बिलोकन ऐहैं।
जब वह तोहि हतै तजि संका। तब प्रभु होइ बिभीषन लंका ॥४६॥

चलन लगौ जबहीँ तब कीजौ। मृतक सरीरहि पावक दीजौ।
यह कहि जात भई वह नारी। सब नगरी हनुमंत निहारी ॥४७॥

तब हरि रावन सोवत देख्यो। मनिमय पालिक की छबि लेख्यो।
तहँ तरुनी बहु भाँतिन गावैं। बिच बिच आवझ बीन बजावैं ॥४८॥

मृतक चिता पर मानहु सोहै। चहुँ दिसि प्रेतबधू मन मोहै।
जहँ जहँ जाइ तहाँ दुख दूनो। सिय बिन है सिगरो पुर सूनो ॥४९॥

(भुजंगप्रयात)

कहूँ किंनरी किंनरी लै बजावैं। सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं।
कहूँ जक्षिनी पक्षिनी लै पढ़ावैं। नगीकन्यका पन्नगी कौं नचावैं ॥५०॥

पियै एक हाला गुहै एक माला। बनी एक बाला नचै चित्रसाला।
कहूँ कोकिला कोक की कारिका कौं। पढ़ावै सुवा लै सुकी सारिका कौं ॥५१॥

फिर्‍यो देखिकै राजसाला सभा कौं। रह्यो रीझिकै बाटिका की प्रभा कौं।
फिर्‍यो और चौहूँ चितै सुद्धगीता। बिलोकी भली सिंसुपामूल सीता ॥५२॥

धरे एक बेनी मिली मैल सारी। मृनाली मनो पंक तैं काढ़ि डारी।
सदा रामनामै ररै दीन बानी। चहूँ ओर हैं राकसी दुक्खदानी ॥५३॥

ग्रसी बुद्धि सी चित्तचिंतानि मानौ। किधौं जीभ दंतावली मैं बखानौ।
किधौं घेरिकै राहु नारीन लीनी। कला चंद्र की चारु पीयूष-भीनी ॥५४॥

किधौं जीव की जोति मायान लीनी। अबिद्यान के मध्य बिद्या प्रबीनी।
मनो संबर-स्त्रीन मैं कामबामा। हनूमान ऐसी लखी रामरामा ॥५५॥

तहाँ देवद्वेषी दसग्रीव आयो। सुन्यो देवि सीता महा दुक्ख पायो।
सबै अंग लै अंग ही मैं दुरायो। अधोदृष्टि कै अश्रु धारा बहायो ॥५६॥

---

[४६] ऐहैं—जैहै (दीन०, सर०)। तजि—अति (सर०)। [४७] जबहीँ—तबही (प्रताप०, सर०)। तब—यह (वही)। जात—जाति (कौमुदी) [४८] हरि—तहँ (प्रताप०)। देख्यो—पायो (दीन०, प्रताप०, सर०)। पालिक—पलिका (प्रताप०, कौमुदी)। लेख्यो—छायो (दीन०, प्रताप०, सर०)। तहँ—बहु (सर०)। [४९] चहुँ दिसि—बहु बिधि (सर०)। प्रेतबधू०—प्रेतबधूनि बिमोहै (प्रताप०, सर०)। तहाँ—तही (सर०)। सिगरो०—सिगरे घर सूने (वही)। [५०] लै—कौं (प्रताप०, सर०)। [५१] सुवा लै—कहू ते (सर०)। [५३] पंक०—पंकसोकाधिकारी (प्रताप०, सर०)। नामै—रामै (प्रताप०)। [५५] अबिद्यान—कुबिद्यान (सर०)। मध्य—बीच (प्रताप०)। हनूमान—हनूमंत (प्रताप०, सर०)। [५६] द्वेषी—दोषी (प्रताप०, सर०)। बहायो—न्हवायो (प्रताप०, सर०)।

रावण—

सुनौ देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै। इतो सोच तौ रामकाजै न कीजै।
बसै दंडकारन्य देखै न कोऊ। जु देखै महा बावरो होइ सोऊ ॥५७॥
कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै। हितू नग्न-मुंडीनहीँ को सदा है।
अनाथै सुन्यो मैँ अनाथानुसारी। बसैँ चित्त दंडी जटी मुंडधारी ॥५८॥
तुम्हैँ देखि दूषैँ हितू ताहि मानै। उदासीन तोसौँ सदा ताहि जानै।
महा निर्गुनी नाम ताको न लीजै। सदा दास मोपै कृपा क्यौँ न कीजै ॥५९॥
अदेवीनि देवीनि की होहु रानी। करैँ सेव बानी मघौनी मृडानी।
लियैँ किंनरी किंनरी गीत गावैँ। सुकेसी नचैँ उर्बसी मान पावैँ ॥६०॥

(मालिनी)

तृन बिच देइ बोली सीय गंभीर बानी। दसमुख सठ को तू कौन की राजधानी।
दसरथसुतद्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै। निसिचर बपुरा तू क्यौँ न स्यौँ मूल नासै ६
अति तनु धनुरेख: नेक नाकी न जाकी। खल सर-खरधारा क्यौँ सहै तिक्ष ताकी।
बिड़कन घन घूरे भक्षि क्यौँ बाज जीवै। सिवसिर ससिश्री कौँ राहु कैसे सु छीवै।
उठि उठि सठ ह्याँ तेँ भागु तौलौँ अभागे। मम बचन बिसर्पी सर्प जौलौँ न लागे।
बिकल सकुल देखौँ आसु ही नास तेरो। निपट मृतक तोकौँ रोष मारै न मेरो ॥६३॥

(दोहा)—अवधि दई द्वै मास की कह्यो राकसिन बोलि।
ज्यौँ समुझै समुझाइयो जुक्तिछुरी सौँ छोलि ॥६४॥

(चामर)—देखि-देखिकै असोक राजपुत्रिका कह्यो।
देहि मोहि आगि तैँ जु अंग आगि ह्वै रह्यो।
ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई।
आसपास देखिकै उठाइ हाथ कै लई ॥६५॥

(तोमर)—जब लगी सियरी हाथ। यह आगि कैसी नाथ।
यह कह्यो लखि तब ताहि। मनिजटित मुँदरी आहि ॥६६॥
जब बाँचि देख्यो नाउ। मन पर्‌यो संभ्रम भाउ।
आबाल तेँ रघुनाथ। यह धरी अपने हाथ ॥६७॥

---

[५७] मोपै—मोतेँ (प्रताप०, सर०)। [५८] अनाथै—अनाश्र (दीन० १); अनथैं (दीन० २); अनाथ्वै (प्रताप०)। [५९] देवि—देखि (दीन०)। सदा—सबै (दीन०, प्रताप०, सर०)। मोपै—मैहौँ (प्रताप०); मोको (सर०)। [६०] अदेवीनि०—अदेवीनृदेवीन (कौमुदी), सेव०—सेवकानी (प्रताप०)। मघौनी—भवानी (दीन०१, सर०)। [६१] सठ को—बपुरा (दीन०); कहि को (प्रताप०)। द्वेषी—द्रोही (प्रताप०); दोषी (सर०)। [६२] बिड़कन०—बिडक-घननि (प्रताप०, सर०)। राहु—दुष्ट (सर०)। सर खर—खँग सर (सर०); खरग (दीन०)। [६५] तैँ जु—आनि (सर०)। पुत्र—पूत (सर०, कौमुदी)। अंग—देह (दीन० २)। [६७] भाउ—काम (दीन० १); ठाउ (दीन० २)।

बिछुरी सु कौन उपाउ। केहि आनियो यहि ठाउँ।
सुधि लहौं कौन प्रभाउ। अब काहि बूझन जाउँ ॥६८॥

चहुँ ओर चितै सत्रास। अवलोकियो आकास।
तरुसाख बैठो नीठि। तब पर्‌यो बानर दीठि ॥६९॥

तब कह्यो को तूँ आहि। सुर असुर मो तन चाहि।
कै जक्ष पक्ष-बिरूप। दसकठ बानर - रूप ॥७०॥

कहि आपनो तू भेद। नतु चित्त उपजत खेद।
कहि बेगि बानर पाप। नतु तोहि दैहौं साप ॥७१॥

तब बृक्षसाखा भूमि। कपि उतरि आयो भूमि।
संदेस चित महँ चाइ। तब कही बात बनाइ ॥७२॥

(पद्धटिका)—कर जोरि कह्यो हौं पौनपूत। जिय जननि जानि रघुनाथदूत।
रघुनाथ कौन, दशरथ्थनंद। दशरथ्थ कौन, अजतनयचंद ॥७३॥
केहि कारन पठए यहि निकेत। निज देन लेन संदेस हेत।
गुन रूप सील सोभा सुभाव। कछु रघुपति के लक्षन बताउ ॥७४॥

(हनुमान)—अति जदपि सुमित्रानंद भक्त। अति सेवक हैं अति सूर सक्त।
अरु जदपि अनुज तीनौ समान। पै तदपि भरत भावत निदान ॥७५॥
ज्यौं नारायनउर श्री बसंति। त्यौं रघुपतिउर कछु दुति लसंति।
जग जितने हैं सब भूमिभूप। सुर असुर न पूजैं रामरूप ॥७६॥

सीता—(निशिपालिका)

मोहि परतीति यहि भाँति नहिं आवई। प्रीति कहि धौं सु नर-बानरनि क्यौं भई।
बात सब बनि परतीति हरि त्यौं दई। आँसु अन्हवाइ उर लाइ मुँदरी लई ॥७७॥

(दोहा)—आँसु बरषि हियरा हरषि सीता सुखद सुभाइ।
निरखि निरखि पियमुद्रिकहि बरनति है बहु भाइ ॥७८॥

---

[६८] प्रभाउ–उपाउ (प्रताप०, काशि०)। बूझन–पूछन (प्रताप०, सर०)। [६९] ओर–धा (दीन०); दिसि (प्रताप०, सर०)। तरु–तहँ (कौमुदी)। [७०] पक्ष०–जक्ष पक्ष (प्रताप०, काशि०, सर०)। [७१] नतु–अति (सर०)। [७२] तब–डरि (सर०, कौमुदी)। उत्तरार्ध 'प्रताप०, काशि०, सर०' में नहीं है। [७३] हौं०–मैं बायुपूत (प्रताप०, सर०)। [७४] बताउ–सुनाउ (कौमुदी)। [७५] सेवक हैं–केसव कहि अति (प्रताप०); केसव सेवक (दीन० २)। अस–अति (प्रताप०)। [७६] न पूजैं–समान न (सर०)। [७७] नहिं आवई–उपजै नई (प्रताप०, सर०)। दई–भई (सर०)। [७८] हियरा०–हियरे हरषि (कौमुदी); हिय हरषि कछु (प्रताप०, सर०)। सुखद०–सुखदुख पाइ (प्रताप०)।

(पद्धटिका)—यह सूरकिरन तम-दुख्खहारि। ससिकला किधौं उर-सीतकारि।
कल कीरति सी सुभ सहितनाम। कै राज्यश्री यह तजी राम॥७९॥
कै नारायन-उर सम लसंति। सुभ अंकन ऊपर श्री बसंति।
बर बिद्या सी आनंददानि। जुतअष्टापद मन सिवा मानि ८०
जनु माया अक्षरसहित देखि। कै पत्री निस्चयदानि लेखि।
पियप्रतीहारिनी सी निहारि। 'श्रीरामो जय' उच्चारकारि॥८१॥
पिय पठई मानो सखि सुजान। जगभूषन को भूषन-निधान।
निज आई हमकौं सीख देन। यह किधौं हमारो मरम लेन।८२।

(दोहा)—सुखदा सिखदा अर्थदा, जसदा रसदातारि।
रामचंद्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि॥८३॥

बहुबर्नो सहजप्रिया, तमगुनहरा प्रमान।
जगमारगदरसावनी, सूरजकिरन समान॥८४॥

श्रीपुर मैं बनमध्य हौं तूँ मग करी अनीति।
कहि मुँदरी अब तियन की को करिहै परतीति॥८५॥

(पद्धटिका)—कहि कुसल मुद्रिके रामगात। पुनि लक्ष्मनसहित समान तात।
यह उतरु देति न बुद्धिवंत। केहि कारन धौं हनुमंत संत॥८६॥

हनुमान (दोहा)—तुम पूँछत कहि मुद्रिके मौन होति यहि नाम।
कंकन की पदवी दई तुम बिन याकहँ राम॥८७॥

(दंडक)

दीरघ दरीन बसैं 'केसोदास' केसरी ज्यौं, केसरी कौं देखि बनकरी ज्यौं कँपत हैं।
बासर की संपति उलूक ज्यौं न चितवत, चकवा ज्यौं चंद चितै चौगुनो चँपत हैं।
केका सुनि ब्याल ज्यौं बिलात जात घनस्याम, घनन की घोरन जवासो ज्यौं तपत हैं।
भौंर ज्यौं भँवत बन जोगी ज्यौं जगत रैनि, साकत ज्यौं नाम राम तेरोई जपत हैं।

हनुमान—(वारिधर)

राजपुत्रि यक बात सुनौ पुनि। रामचंद्र मन माहँ कही गुनि।
राति दीह जमराज-जनी जनु। जातनानि तन जानत कै मनु॥८९॥

---

[७९] तजी—तजो (काशि०)। [८२] निज—जनु (सर०)। [८४] बर्नो०—बानी श्रम (प्रताप०)। हरा—हारि (प्रताप०); हरन (सर०)। [८५] यह छंद 'दीन०, प्रताप०, सर०' में नहीं है। [८६] पुनि—सुभ (कौमुदी); सुनि (प्रताप०, सर०)। धौं—कहि (प्रताप०, सर०)। [८८] केसरी—केहरि (प्रताप०, सर०)। चितै—चाइ (दीन० २)। केका—केकी (दीन०, सर०)। [८९] राजपुत्रि०—राजसुता इक मंत्र (दीन० १)। सुनौ०—कहौं सुनि (दीन० १, प्रताप०)।

(दोहा)—दुख देखे सुख होहिगो, सुक्ख न दुक्खबिहीन।
जैसे तपसी तप तपै, होत परमपद लीन ॥९०॥

बरषा-बैभव देखिकै देखी सरद सकाम।
जैसे रन मैं कालभट भेटि भेटियत बाम ॥९१॥

सीता—दुक्ख देखिकै देखिहौं तव मुख आनँदकंद।
तपन-ताप तपि द्यौस निसि जैसे सीतल चंद ॥९२॥

अपनी दसा कहा कहौं दीपदसा सी देह।
जरत जाति बासर निसा 'केसव' सहित सनेह ॥९३॥

हनुमान—सुगति सुकेसि सुनैनि सुनि सुमुखि सुदंति सुश्रोनि।
दरसावैगो बेगिहीं तुमकौं सरसिज-जोनि ॥९४॥

(हरिगीतिका)—कछु जननि दै परतीति जासौं रामचंद्रहि आवई।
सुभ सीस की मनि दई यह कहि सुजस तव जग गावई।
सब काल ह्वैहौ अमर अरु तुम समर जयपद पाइहौ।
सुत आजु तैं रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ ॥९५॥
कर जोरि पग परि तोरि उपबन कोरि किंकर मारियो।
पुनि जंबुमाली मंत्रिसुत अरु पंच मंत्रि सँघारियो।
रन मारि अक्षकुमार बहु बिधि इंद्रजित सौं जुद्ध कै।
अति ब्रह्मअस्त्र प्रमान मानि सो बस्य भो मन सुद्ध कै ॥९६॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिक[illegible]दजिद्विरचितायां हनुमद्बंधननाम त्रयोदशः प्रकाशः ॥१३॥

---

[९०] सुक्ख०—सुख नहिँ (कौमुदी)। तपै—करत (प्रताप०)। [९२] निसि०—की तजै ज्यौं (दीन० २)। [९३] जरति—घटति (दीन०)। [९४] सुमुखि०—सुदंति सुश्रोनि सुबैन (दीन० २)। जोनि—ऐन (दीन० २)। [९५] जासौं—जातैं (प्रताप०); जैसे (सर०)। तव—तिहु (प्रताप०); यह (सर०)। जग—पुर (प्रताप०)। ह्वैहौ—हूजौ (दीन०); ह्व जनु (सर०)। अरु०—अति अरु (प्रताप०, सर०) जस—पद (सर०)। [९६] अस्त्र—अत्र (प्रताप०)। ९६ के स्थान पर दीन० १ में निम्नलिखित अंश है—

(हरिगीतिका)

कर जोरि पग परि तोरि उपबन कोरि किंकर मारियो।
पौढ़ियो जब जंबुमाली दूत जाय पुकारियो।
उठि धाइयो मन क्रोध अति करि सोधु कपि जब पाइयो।
वह आइयो तेहि ठौर तबही संक उर नहिँ लाइयो ॥

१४

रावण (विजय)—रे कपि कौन तूँ ? अक्ष को घातक दूत बली रघुनंदन जू को।
को रघुनंदन रे ? त्रिसिरा-खर-दूषन-दूषन भूषन भू को।
सागर कैसे तस्यो ? जस गोपद, काज कहा ? सियचोरहिं देखो।
कैसे बँधाय ? जु सुंदरि तेरी छुई द्दग सोवत पातक लेखो ॥१॥

रावण—(चामर)

कोरिकोरि जातनानि फोरिफोरि मारिये। काटिकाटि फारि बाँटिबाँटि माँसु डारिये।
खाल खैंचि खैंचि हाड़ भूँजिभूँजि खाहु रे। पौरि टाँगि रुंडमुंड लै उड़ाइ जाहु रे

अति जोर स्यौं हनुमंत देखि अनंत बानन मारियो।
मन मानियो नहिं छोभ कपि तब सकल सैन सँघारियो।
पुनि जंबुमाली सौं भिस्यो लइ बाहु जुगल उखारिकै।
मठ बैठिकै अभिलाष सौं पुर मैं ते दीनी डारिकै॥
परियो ते रावन की सभा तेहि काल तेहि पहिचानियो।
(पुनि) पंचसुत मंत्रीन के तिन सीस आयसु मानियो।
तनत्रान कसि हँसि बान धनु तेहि काल लेइ गए तहाँ।
रन दूतपूत समेत स्यौं बर जंबुमालि पस्यौ जहाँ॥
बरषै सु बान समान घन तन भेदियो हनुमंत कौ।
तब धाइयो कपि नाद करि रोकै कहा मयमंत कौ।
घननाल लै खिगरे हए उरसाल रावन के भयो।
तेहि काल अच्छकुमार बोलि प्रहस्त कौं आयसु दयो॥

(नराच)

जुरे प्रहस्त हस्त लै हथ्यार दिव्य आपने। कुमार अच्छ तिच्छ बान छाइयो घने घने।
कपीस जुद्ध क्रुद्ध भो सँघारि अच्छ डारियो। प्रहस्त सीस मैं तबै प्रहारि मुष्ट मारियो॥

(दोहा)—मारो अच्छ सुनो जहीं रावन अति पछिताइ।
इंद्रजीत सौं या कही बानर जियत न जाइ॥

(तोटक)—घननाद गयो सजिकै जबहीं। हनुमंत सौं जुद्ध जुरे तबहीं।
बलवंत गुन्यो वह हेरि हियो। मन मैं गुनि एक उपाय कियो॥

(तोमर)—तब इंद्रजीत बिलोकि। बिधिपास दीन्ही मोकि।
कपि ब्रह्मतेजहि जानि। तिन सीस लीन्ही मानि॥

[१] सोवत—जोवत (प्रताप०)। [२] फारि—अंग (प्रताप०); छाँटि (सर०)। बाँटि बाँटि—छाँटि छाँटि (दीन०)। हाड़—मास (सर०)। पौरि—खोरि (काशि०)।

बिभीषण—

दूत मारिये न राजराज छोड़ि दीजई। मंत्रि मित्र पूँछिकै सो और दंड कीजई।
एक रंक मारि क्यौं बड़ो कलंक लीजई। बुंद सूखि गो कहा महासमुद्र छीजई ॥३॥

तूल तेल बोरि बोरि जोरि जोरि बाससी। लै अपार रार ऊन दून सूत सौं कसी।
पूँछ पौनपूत की सँवारि बारि दी जहीँ। अंग को घटाइ कै उड़ाइ जात भो तहीँ ॥४

(चंचरी)—धामधामनि आग की बहु ज्वालमाल बिराजहीँ।
पौन के झकझोर तैं झँझरी-झखोरन भ्राजहीँ।
बाजि बारन सारिका सुक मोर जोरन भाजहीँ।
क्षुद्र ज्यौं बिपदाहि आवत छोड़ि जात न लाजहीँ ॥५॥

(भुजंगप्रयात)

जटी-अग्निज्वाला अटा सेत हैं यौं। सरत्काल के मेघ संध्यासमै ज्यौं।
लगी ज्वालधूमावली नील राजैं। मनो स्वर्न की किंकनी नाग साजैं ॥६॥

लसैं पीत छत्री मढ़ीज्वाल मानौ। ढके ओढ़नी लंक बक्षोज जानौ।
जरैं जूह-नारी चढ़ीं चित्रसारी। मनो चेटका मैं सती सत्यधारी ॥७॥

कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े। मनो ईस रोषाग्नि मैं काम डाढ़े।
कहूँ कामिनी ज्वालमालानि भोरैं। तजैं लाल सारी अलंकार तोरैं ॥८॥

कहूँ भौन राते रचैं धूम छाहीँ। ससी सूर मानो लसैं मेघ माहीँ।
जरै सस्त्रसाला मिली गंधमाला। मलैअद्रि मानो लगी दावज्वाला ॥९॥

चलीं भागि चौहूँ दिसा राजधानी। मिलीं ज्वालमाला फिरैं दुख्खदानी।
मनो ईसबानावली लाल लोलैं। सबै दैत्य-जायान के संग डोलैं ॥१०॥

(विजय)—लंक लगाइ दई हनुमंत बिमान बचे अति उच्चरुखी है।
पाचि फटैं उचटैं बहुधा मनि रानि रटैं पानी पानी दुखी है।
कंचन को पघिलो पुर पूर पयोनिधि मैं पसरे ति सुखी है।
गंग हजारमुखी गुनि 'केसो' गिरा मिली मानो अपारमुखी है ॥११॥

(दोहा)—हनुमत लाई लंक सब बच्यो बिभीषन-धाम।
जनु अरुनोदय बेर मैं पंकज पूरब जाम ॥१२॥

---

[३] राजराज-सुराज (दीन०)। [४] रार-टाट (सर०)। सूत-पूछि (प्रताप०)। उड़ाइ०-सो जात भयो भौतहीँ (दीन० १); छुड़ाइ० (प्रताप०, सर०)। [५] भ्राजहीँ-छाजहीँ (प्रताप०); भाकहीँ (दीन० १, सर०)। [६] धूमावली-धामावली (प्रताप०, सर०)। [७] चेटका-चित्तिका (प्रताप०); चेतिका (सर०)। [१०] ज्वाल-दाव (सर०)। राजधानी-राजरानी (कौमुदी)। [११] लगाइ-हि लाय (कौमुदी)। रटैं-टरै (प्रताप०, सर०)। पानी पानी-पयपानी (कौमुदी); मुख पानी (सर०)। पघिल्यो-पचिल्यो (सर०)। पसरे ति-पसरो सो (कौमुदी)। [१२] लाई०-लंक लगाइ तब (सर०)।

(संयुता)—हनुमंत लंक लगाइकै। पुनि पूँछ सिंधु बुझाइकै।
सुभ देखि सीतहि पाँ परे। मनि पाइ आनँद जी भरे ॥१३॥

(दोहा)—बिदा पाइ सुख पाइकै चले जबै हनुमंत।
पुहुपवृष्टि देवन करी सागर रतन अनंत ॥१४॥

(तोमर)—सीता न ल्याए बीर। मन माँझ उपजति पीर।
आनौं सु कौन उपाय। परपुरुष छीवै काय ॥१५॥

(संयुत)—यहि पार अंगद भेटियो। सबको सबै दुख मेटियो।
जयसी कछू बितई सबै। तिनसों कही तयसी तबै ॥१६॥

(तोमर)—जब राम धरिहैं चाप। रन रावनै संताप।
बरषे सघन सर-धार। लंका बहत नहिँ बार ॥१७॥

चलि अंगदादिक बीर। तहँ आइयो रनधीर।
जहँ बाग हे सुग्रीव। फल देखि ललक्यो जीव ॥१८॥

सब खाइयो फलफूल। रहियो सु केवल मूल।
तब दीख दधिमुख आइ। वह मारियो कपि धाइ ॥१९॥

अति रोष बालिकुमार। गहि मारियो कपिधार।
सब लै गए निज जीव। जहँ बैठियो सुग्रीव ॥२०॥

(दोहा)—लै आए सीता-खबर, तातैं मन अति फूल।
इनको बिलग न मानिये, नहिं धरिये चित भूल ॥२१॥

(संयुक्ता)—रघुनाथ पै जबहीं गए। उठि अंक लावन कौं भए।
प्रभु मैं कहा करनी करी। सिर पाइ की धरनी धरी ॥२२॥

(दोहा)—चिंतामनि सी मनि दई, रघुपति कर हनुमंत।
सीताजू को मन रँग्यो, जनु अनुराग अनंत ॥२३॥

(दोधक)—श्रीरघुनाथ जबै मनि देखी। जी महँ भागदसा सम लेखी।
फूलि उठ्यो मन ज्यौं निधि पाई। मानहु अंध सुडीठि सुहाई ॥२४॥

राम—(तारक)

मनि होहि नहीं मनु आइ प्रिया को। उर मैं प्रगट्यो गुन प्रेम दिया को।
सब भागि गयो जु हुतो तम-छायो। अब मैं अपने मन को मत पायो ॥२५॥

---

[१३] लगाइ—हि लाइ (कौमुदी०)। इसके बाद 'दीन० १' में यह छंद अधिक है—

संदेस यह सीता कह्यौ। प्रभु तासु बध तल्लन कियौ।
इक आँखि गहि हीनै कियौ। तब जाइकै आसन लियौ।

[२४] जी महँ०—प्रान समानन लेखी (दीन० १)।

दरसै हमकौं ’ब नहीँ दरसाए। उर लागति आइ बरयाइ लगाए।
कुछ उत्तर देति नहीँ चुप साधी। जिय जानति है हमकौं अपराधी ॥२६॥

हनुमान—

कछु सीयदसा कहि मोहिँ न आवै। चर का जड़ बात सुने दुख पावै।
सर सो प्रतिबासर बासर लागै। तन घाव नहीँ मनप्राननि खागै ॥२७॥
प्रतिअंगनि के सँगहीँ दिन नासैँ। निसि सौं मिलि बाढ़ति दीह उसासैँ।
निसि नेकहु नीँद न आवति जानौ। रबि की छबि ज्यौं अधराति बखानौ ॥२८॥

(घनाक्षरी)

भौँरिनी ज्यौँ भ्रमत रहति बनबीथिकानि हंसिनी ज्यौँ मृदुल मृनालिका चहति है।
हरिनी ज्यौँ हेरति न केसरी के काननहिँ,केका सुनि ब्यालि ज्यौँ बिलान ही कहति है।
पीउपीउ रटति रहति चित चातकी ज्यौँ, चंद चितै चकई ज्यौँ चुप ह्वै रहति है।
सुनहु नृपति राम बिरह तिहारे ऐसी, सूरतिन सीताजू की मूरति गहति है ॥२६॥

सीता जू को संदेश—(दोहा)

श्रीनृसिंह प्रह्लाद की बेद जो गावत गाथ।
गए मास दिन आसुहीँ झूँठी ह्वैहै नाथ ॥३०॥

आगम कनककुरंग के कही बात सुख पाइ।
कोपानल जरि जाइ जिनि सोक-समुद्र बुड़ाइ ॥३१॥

राम—(दंडक)

साँचो एक नाम हरि लीन्हे सब दुख हरि और नाम परिहरि नरहरि ठाए हौ।
बानर न होहु तुम मेरे बानरस सम, बलीमुख सूर बली मुख निज गाए हौ।
साखामृग नाहीँ बुद्धिबलन के साखामृग कैधौँ बेद साखामृग ‘केसव’ कौं भाए हौ।
साधु हनुमंत बलवंत जसवंत तुम, गए एक काज कौं अनेक करि आए हौ ॥३२॥

हनुमान (तोमर)—गइ मुद्रिका लै पार। मनि मोहि लाई वार।
कह कथा मैं बल रंक। अति मृतक जारी लंक ॥३३॥

अति हत्यो बालक अक्ष। लै गया बाँधि बिपक्ष।
जड़ बृक्ष तोरे दीन। मैं कहा बिक्रम कीन ॥३४॥

तिथि बिजय दसमी पाइ। उठि चले श्रीरघुराइ।
हरि जूथ जूथप संग। बिन पक्ष के ति पतंग ॥३५॥

आकास बलितबिलास। सूझै न सूरप्रकास।
पुनि रिक्ष लक्षन संग। जनु जलधि गंगतरंग ॥३६॥

---

[२७] चर०—चरचा (दीन०)। [२६] कहति—चहति (कौमुदी)। [३१]

सुग्रीव—(दंडक)

कहै 'केसोदास' तुम सुनौ राजा रामचंद्र, रावरी जबहिं सैन उचकि चलति है।
पूरति है भूरि धूरि रोदसीहि आसपास, दिसदिस बरषा ज्यौं बलनि बलति है।
पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गजराज मृग मृगराजराजिनि दलति है।
जहाँ तहाँ ऊपर पताल पय आइ जात, पुरइन को सो पात पुहुमी हलति है ॥३७॥

लक्ष्मण—(दंडक)

भार के उतारिबे कौं औतरे हौ रामचंद्र किधौं 'केसोदास' भूरि भारत प्रबल दल।
टूटत हैं तरिबर गिरैं गन गिरिबर सूखे सब सरबर सरिता सकल जल।
उचकि चलत हरि दचकनि दचकत मंच ऐसे मचकत भूतल के थलथल।
लचकि लचकि जात सेष के असेष फन भागि गई भोगवती अतल बितल तल ॥३८॥

(गीतिका)—रघुनाथजू हनुमंत ऊपर सोभिजै तेहि काल जू।
उदयाद्रि सोभन स्रृंग मानहु सुभ्र सूरबिलास जू।
सुभ्र अंग अंगदसंग लक्ष्मन लक्षिये बहु भाँति जू।
जनु मेरु मंदल स्रृंग अद्भुत चंद्र राजत राति जू ॥३९॥

(दोहा)—बलसागर लक्ष्मन सहित कपिसागर रनधीर।
जससागर रघुनाथजू मेले सागरतीर ॥४०॥

(विजय)—भूति बिभूति पियूषहु की बिष ईस सरीर कि पाइ बियो है।
है किधौं 'केसव' कस्यप को घर देव अदेवन के मन मोहै।
संत हियो कि बसैं हरि संतत सोभ अनंत कहै कबि को है।
चंदन नीर तरंग तरंगित नागर कोउ कि सागर सोहै ॥४१॥

(गीतिका)—जल जाल काल करालमाल तिमिंगलादिक स्यों बसै।
उर लोभ छोभ बिमोह कोह सकाम ज्यौं खल को लसै।
बहु संपदाजुत जानियो अति पातकी सम लेखिये।
कोउ माँगनो अरु पाहुनो नहिँ नीर पीवत देखिये ॥४२॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणि श्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां समुद्रतट-रामसैन्यनिवेशनन्नाम चतुर्दशः प्रकाशः ॥१४॥

---

[३८] भूमि०—भूरि भूतल (दीन० १)। [३९] संग—कंध (कौमुदी)। बहु—यहि (वही)। मंदल—पर्वत (वही)।

१५

रावण (गीतिका)—सुरपाल भूतलपाल हौ सब मूल मंत्र ते जानिये ।
बहुमंत्र बेद पुरान उत्तम मध्यमाधम मानिये ।
करिये जु कारज आदि उत्तम, मध्यमाधम भानिये ।
उर मध्य आनि अनुत्तमै जे गए ते आज बखानिये ॥१॥

(स्वागता)—आजु मोहि करने सो कहौ जू । आपु माहि जनि रोष गहौ जू ।
राजधर्म कहिये छबि छाए । रामचंद्र नहिं जौ लगि आए ॥२॥

प्रहस्त—बामदेव तुम कौं बर दीन्हो । लोकलोक सिगरे बस कीन्हो ।
इंद्रजीत सुत सो जग मोहै । राम देव नर बानर को है ॥३॥

मृत्युपास भुज जोरनि तोरै । कालदंड जेहि सौं कर जोरै ।
कुंभकर्न सम सोदर जाके । और कौन मन आवत ताके ॥४॥

कुंभकर्ण (चतुष्पदी)—आपुन सब जानत, कह्यो न मानत, कीजै जो मन भावै ।
सीता तुम आनी, मीचु न जानी, अब को मंत्र बतावै ।
जेहि बर जग जीत्यो, सर्ब अतीत्यो, तासों कहा बसाई ।
मति भूलि गई तब, सोच करत अब, जब सिर ऊपर आई ।५।

मंदोदरी—(विजय)

राम की बाम जो आनी चोराइ सो लंक मैं मीचु की बेलि बई जू ।
क्यौं रन जीतहुगे तिनसौं जिनकी धनुरेख न नाखि गई जू ।
बीस बिसे बलवंत हुते जु हुती दृग 'केसव' रूप रई जू ।
तोरि सरासन संकर को पिय सीय स्वयंबर क्यों न लई जू ॥६॥

बालि बली न बच्यो पर खोरिहि क्यौं बचिहौ तुम आपनी खोरिहि ।
जा लगि छीरसमुद्र मथ्यो कहि कैसे न बाँधिहै बारिधि थोरिहि ।
श्रीरघुनाथ गनौ असमथ्थ न देखि बिना रथ हाथिन घोरिहि ।
तोरयो सरासन संकर को जेहि सोऽब कहा तुव लंक न तोरिहि ॥७॥

मेघनाद (दोहा)—मोकौं आयसु होइ जो त्रिभुवनपाल प्रबीन ।
रामसहित सब जग करौं नरबानर करि हीन ॥८॥

---

[१] जु गए०—गतिये ते (दीन० २) । आज—काज (दीन०) । [२] जू—हौ (दीन०) छबि—जस (दीन० २) । [३] सो—को (दीन०) । [४] जोरनि—जोरहि (कौमुदी) । जेहि—तुम (दीन०) । [५] अब—आन (कौमुदी) । [६] जु हुती०—रहई त्रिय (दीन० १); जु दुती दृग (दीन० २) । [७] जा लगि—केसव (दीन०) ।

बिभीषण—(मोटनक)

को है अतिकाय जो देखि सकै। को कुंभ निकुंभ बृथा जो बकै।
को है इँद्रजीत जो भीर सहै। को कुंभकरन्न हथ्यार गहै ॥९॥
देखे रघुनाथ न धीर रहै। जैसे तरु पल्लव बात बहै।
जौलौं हरि सिंधु तरेई तरै। तौलौं सिय लै किन पाय परै ॥१०॥
जौलौं नल नील न सिंधु तरै। जौलौं हनुमंत न दृष्टि परै।
जौलौं नहि अंगद लंक ढही। तौलौं प्रभु मानहु बात कही ॥११॥
जौलौं नहि लक्ष्मन बान धरै। जौलौं सुग्रीव न क्रोध करै।
जौलौं रघुनाथ न सीस हरैं। तौलौं प्रभु मानहु पाइ परैं ॥१२॥

रावण—(कलहंस)

अरिकाज लाज तजिकै उठि धायो। धिक तोहि मोहि समुझावन आयो।
तजि रामनाम यह बोल उचार्‌यो। सिर माँझ लात पग लागत मार्‌यो ॥१३॥
कहि हाइहाइ उठि देह सँभार्‌यो। लिय अंग संग सब मंत्रिय चार्‌यो।
तजि अंधु बंधु दसकंधु उड़ान्यो। उर रामचंद्र जगतीपति आन्यो ॥१४॥

(दोहा)—मंत्रिन सहित बिभीषनै बाढ़ी सोभ अकास।
जनु अलि आवत भावतो प्रभुपद-पदुमनि पास ॥१५॥

(चौपाई)—निकट बिभीषन आइ तुलाने। कपिपति सौं तबहीं गुदराने।
रघुपति सौं तिन जाइ सुनायो। दसमुख-सोदर सेवहिं आयो ॥१६॥

श्रीराम—बुधि बलवंत सबै तुम नीके। मत सुनि लीजै मंत्रिन ही के।
तब जु बिचार परै सोइ कीजै। सहसा सत्रु न आवन दीजै ॥१७॥

अंगद (सुंदरी)—रावन को यह साँचहु सोदरु। आपु बली बलवंत लिये अरु।
राकस-बंस हमैं हतने सब। काज कहा तिनसौं हमसौं अब।१८।

जामवंत—बध्य बिरोध हमैं इनसौं अति। क्यौं मिलिहै हमसौं तिनसौं मति।
रावन क्यौं न तज्यो तबहीं इन। सीय हरी जबहीं वहि निर्घृन ॥१९॥

नल—चार पठै इनको मत लीजिय। ऐसेहिं कैसे बिदा करि दीजिय।
राखिय जो अति जानिय उत्तम। नाहि त मारिय छोड़ि सबै भ्रम ॥२०॥

---

[९] देखि–जुद्ध (दीन० २)। बकै–अरै (वही)। [१०] रघुनाथ न–रघुनायक (कौमुदी)। रहै–गहै (दीन० १); कहै (दीन० २)। बात–बायु (कौमुदी)। [१३] समुझावन–डरवावन (दीन० १)। सिर माँझ–सीस (दीन०)। [१४] उड़ान्यो–समान्यो (दीन० १)। [१५] जनु०–ज्यौं कलि आवत रघुपतिहि पच्छ पच्छिनी पास (दीन० १); जब आवत सुख पावते रघुपति पदमनि पास (दीन० २)। [१६] आइ०–आवत जाने (दीन०)।

नील—साँचेहु जौ यह है सरनागत। राखिय राजिवलोचन मो मत।
भीत न राखिय तौ अति पातक। होइ जु मातु-पिता-कुल-घातक ॥२१॥

हनुमान—(हरिलीला)

जानौ बिभीषन न राकस रामराज। प्रह्लाद नारद बिसारद बुद्धिसाज।
सुग्रीव नील नल अंगद जामवंत। राजाधिराज बलिराज समान संत ॥२२॥

(दोहा)—कहन न पाई बात सब हनूमंत गुनधाम।
कह्यो बिभीषन आपुहीँ सबनि सुनाइ प्रनाम ॥२३॥

बिभीषण—(विजय)

दीनदयाल कहावत 'केसव' हौँ अतिदीन दसा गह्यो गाढ़ौ।
रावन के अघओघ मेँ राघव बूड़त हौँ बरहीँ गहि काढ़ौ।
ज्योँ गज की प्रहलाद की कीरति त्योँहीँ बिभीषन को जस बाढ़ौ।
आरतबंधु पुकार सुनौ किन आरत हौँ तौ पुकारत ठाढ़ौ ॥२४॥

'केसव' आपु सदा सह्यो दुक्ख पै दासनि देखि सके न दुखारे।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख त्योँहीँ तहाँ तेहि भाँति सँभारे।
मेरियै बार अबार कहा कबहूँ नहिँ काहू के दोष बिचारे।
बूड़त हौँ महामोहसमुद्र मेँ राखत काहे न राखनहारे ॥२५॥

(हरिलीला)

श्रीरामचंद्र अति आरतवंत जानि। लीन्हो बुलाइ सरनागत सुक्खदानि।
लंकेस आउ चिर जीवहि लंक धाम। राजा कहाउ जग जौ लगि राम नाम ॥२६॥

(तोटक)—जबहीँ रघुनायक बान लियो। सबिसेष बिसोषित सिंधु हियो।
तबहीँ द्विजरूप सु आइ गयो। नल सेतु रचै यह मंत्र दियो ॥२७॥

(दोहा)—जहँ तहँ बानर सिंधु मेँ गिरिगन डारत आनि।
सब्द रह्यो भरि पूरि महि रावन कौँ दुखदानि ॥२८॥

(तोटक)—उछलै जल उच्च अकास चढ़ै। जल जोर दिसा बिदिसान मढ़ै।
जनु सिंधु अकासनदी अरिकै। बहुभाँति मनावत पाँ परिकै ॥२९॥

बहु ब्योम बिमान ते भीजि गए। जल जोर भए अँगरागरए।
सुरसागर मानहु जुद्ध जए। सिगरे पट भूषन लूटि लए ॥३०॥

---

[२१] कुल–सुत (दीन०)। [२३] गुनधाम–बलवान (दीन०)। प्रनाम–प्रयान (वही)। [२४] मेँ राघव–समुद्र मेँ (कौमुदी)। आरत हौँ०–आरतवंत (दीन० २)। [२५] आपु–दास (दीन० २)। जहाँ०–तहाँ तुम (दीन०)। सँभारे–पधारे (प्रकाशिका)। अबार–बिचारु (दीन०)। [२६] चढ़ै–चलै (दीन० २)। मढ़ै–दलै वही); बढ़ै (दीन० १)। भाँति–बार (दीन०)। [३०] रए–मए (दीन०)। जए–रए (दीन० १); भए (दीन० २)।

अति उच्छलि छिंछि त्रिकूट छयो। पुर रावन के जल जोर भयो।
तब लंक हनूमत लाइ दई। नल मानहु आइ बुझाइ लई ॥३१॥

लगि सेतु जहाँ तहँ सोभ गहे। सरितान के फेरि प्रवाह बहे।
पति देवनदी रति देखि भली। पितु के घर कौं जनु रूसि चली ॥३२॥

सब सागर नागर सेतु रची। बरनौ बहुधा जुत सक्र-सची।
तिलकावलि सी सुभ सीस लसै। मनिमाल किधौं उर मैं बिलसै ॥३३॥

(तारक)—उर तैं सिवमूरति श्रीपति लीन्ही। सुभ सेतु के मूल अधिष्ठित कीन्ही।
इनकौं दरसै परसै पग जोई। भवसागर के तरि पार सो होई ॥३४॥

(दोहा)—सेतुमूल सिव सोभिजै केसव परम प्रकास।
सागर जगत जहाज को करिया 'केसवदास' ॥३५॥

(तारक)—सुक सारन रावन दूत पठायो। कपिराज सौं एक सँदेस सुनायो।
अपने घर जैयहु रे तुम भाई। जमहूँ पहँ लंक लई नहि जाई ॥३६॥

सुग्रीव—भजि जैहौ कहाँ न कहूँ थल देखौं। जलहूँ थलहूँ रघुनायक पेखौं।
तुम बालि समान सहोदर मेरे। हतिहौं कुल ज्यों तन-प्रानन तेरे ॥३७॥

सब रामचमू तरि सिंधुहि आई। छबि रिक्षन की धर अंबर छाई।
बहुधा सुक सारन कौं सु बताई। फिरि लंक मनो बरषा रितु आई ॥३८॥

(दंडक)

कुंतल ललित नील भ्रकुटी धनुष नैन कुमुद कटाक्ष बान सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अंगदादि भूषननि मध्यदेस केसरी सु गजगति भाई है।
बिग्रहानुकुल सब लक्ष लक्ष रिक्षबल रिक्षराजमुखी मुख 'केसोदास' गाई है।
रामचंद्रजू की चमू, राजश्री बिभीषन की, रावन की मीचु दरकूच चलि आई है ॥३९॥

(हीरक)—रावन सुभ स्यामल तनु मंदिर पर सोहियो।
मानहु दस सृंगजुत कलिंद गिरि बिमोहियो।
राघव सर लाघव गति छत्र मुकुट यों हयो।
हंस सबल अंसुसहित मानहु उड़िकै गयो ॥४०॥

लज्जित खल तजि सु थल भज्जि भवन मैं गयो।
लक्षन-प्रभु तत्क्षन गिरि दक्षिन पर सोभयो।
लंक निरखि अंक हरषि मर्म सकल जी लह्यो।
जाहु सुमति रावन पहँ अंगद सन यों कह्यो ॥४१॥

---

[३२] पति–प्रति (दीन०)। [३३] जुत–जनु (दीन० १); सुर (कौमुदी)। [३५] केसव–पूरन (दीन०)। [३७] तन–तिनु (कौमुदी)। [३८] बताई–दिखाई (दीन०)। [३९] सहित०–सहाय तारा (दीन० २)। रिक्षराज०–रिक्षराज उदित अनंत दुख (वही)।

(चंचला)—रामचंद्रजू कहंत स्वर्नलंक देखि देखि।
रिक्ष बानरालि घोर ओर चारिहू बिसेखि।
मंजु कंजगंध-लुब्ध भौंर-भीर सी बिसाल।
'केसोदास' आसपास सोभिजैं मनो मराल ॥४२॥
ताम्रकोट लोहकोट स्वर्नकोट आसपास।
देव की पुरी घिरी कि पर्बतारि के बिलास।
बीच बीच हैं कपीस बीच बीच रिक्षजाल।
लंककन्यका-गरैं कि पीत नील कंठमाल ॥४३॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिद्रजिद्विरचितायां रामसैन्य-समुद्रतरणन्नाम पंचदशः प्रकाशः ॥१५॥

१६

(दोहा)—अंगद कूदि गए जहाँ आसनगत लंकेस।
मनु मधुकर करहाट पर सोभित स्यामल बेष ॥१॥

प्रतिहार—(नराच)

पढ़ौ बिरंचि मौन बेद जीव सोर छंडि रे। कुबेर बेर कै कही न जक्षभीर मंडि रे।
दिनेस जाइ दूरि बैठि नारदादि संगहीं। न बोलि चंद मंदबुद्धि इंद्र की सभा नहीं ॥२॥

(चित्रपदा)—अंगद यों सुन बानी। चित्त महा रिस आनी।
ठेलिकै लोग अनैसे। जाइ सभा महँ बैसे ॥३॥

प्रहस्त (चंचरी)—कौन हौ पठए सो कौनेहि ह्याँ तुम्हें कह काम है ?
अंगद—जाति बानर, लंकनायकदूत, अंगद नाम है।
रावण—कौन है वह बाँधिकै हम देह पूँछि सबै दही।
अंगद—लंक जारि सँघारि अक्ष गयो सो बात बृथाँ कही ? ॥४॥

महोदर—कौन भाँति रहौ तहाँ तुम ? (अंगद—) राजप्रेषक जानिये।
महोदर—लंक लाइ गयो जो बानर कौन नाम बखानिये।
मेघनाद जो बाँधियो वहि मारियो बहुधा तबै।
अंगद—लोकलाज दुखो रहै अति जानिजै न कहाँ अबै ॥५॥

---

[१] मनु०—मानो मधुकर हाट (दीन०)। [५] अति—सुनि (दीन० १);

कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि न जानिये ?
काँख चाँपि तुम्हैँ जो सागर सात न्हात बखानिये।
है कहाँ वह ? बीर अंगद देवलोक बताइयो।
क्योँ गयो ? रघुनाथ-बान-बिमान बैठि सिधाइयो ॥६॥

लंकनायक को ? बिभीषन देवदूषन कौँ दहै।
मोहि जीवत होहि क्योँ ? जग तोहि जीवत को कहै।
मोहि को जग मारिहै ? दुरबुद्धि तेरिय जानिये।
कौन बात पठाइयो कहि बीर बेगि बखानिये ॥७॥

अंगद—(विजय) श्रीरघुनाथ को बानर 'केसव' आयो हो एक न काहू हयो जू।
सागर को मद झारि चिकारि त्रिकूट की देह बिहारि छयो जू।
सीय निहारि सँहारि कै राकस सोक असोकबनीहि दयो जू।
अक्षकुमारहि मारिकै लंकहि जारिकै नीकेहिँ जात भयो जू ॥८॥

अंगद—(गंगोदक)

राम राजान के राज आए इहाँ धाम तेरे महाभाग जागे अबै।
देबि मंदोदरी कुंभकर्नादि दै मित्र मंत्री जिते पूँछि देखौ सबै।
राखिजै जाति कौँ पाँति कौँ बंस कौँ साधिजै लोक मैँ लोकपर्लोक कौँ।
आनिकै पाँ परौ, देसु लै कोषु लै, आसुहीँ ईस सीताहि लै ओक कौँ ॥९॥

रावण—लोक लोकेस स्योँ सोचि ब्रह्मा रचे आपनी आपनी सीवँ सो सो रहै।
चारि बाहैँ धरे बिष्नु रक्षा करैँ बात साँची यहै बेदबानी कहै।
ताहि भ्रूभंग ही देव देवेस स्योँ बिष्नु ब्रह्मादि दै रूद्रजू संघरै।
ताहि हौँ छाड़िकै पायँ काके परौँ आजु संसार तौ पायँ मेरे परै ॥१०॥

(मदिरा)

राम को काम कहा, रिपु जीतहिँ, कौन कबै रिपु जीत्यो कहा।
बालि बली, छल सोँ, भृगुनंदन गर्ब हत्यो, द्विज दीन महा।
दीन सु क्योँ छिति छत्र हत्यो बिन प्राननि हैहयराज कियो।
हैहय कौन ? वहै बिसर्यो जिन खेलतहीँ तुम्हैँ बाँधि लियो ॥११॥

---

[६] न्हात–दीप (दीन० १) [७] पठाइयो०–कहाइ पठई (दीन०)। [८] छयो–नयो (दीन० २); गयो (कौमुदी)। [९] जिते–सबै (काशि०, सर०)। सबै–अबै (वही)। पाँति–भाँति (वही)। साधिजै०–गोत को साधिये लोक (कौमुदी)। सीताहि०–सीता चलैँ (कौमुदी)। [१०] स्योँ–सो (प्रताप०, काशि०); के (सर०)। सोचि–जो जु (कौमुदी)। [११] जीत्यो०–जीत्यौ महा (काशि०)। हत्यो–सहे (दीन०, प्रकाशिका); सुहो (काशि०, सर०); हयो (कौमुदी)। महा–रहा (प्रताप०)। छत्र–छत्रि (प्रताप०, सर०)। तुम्हैँ–तुम (सर०); तोहि (कौमुदी)।

अंगद—सिंधु तर्‌यो उनको बनरा तुम पै धनुरेख गई न तरी।
बाँधोई बाँधत सो न बन्यो उन बारिधि बाँधिकै बाट करी।
श्रीरघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हैं दसकंठ न जानि परी।
तेलनि तूलनि पूँछि जरी न जरी, जरी लंक जराइ-जरी ॥१२॥

मेघनाद—

छाँडि दियो हम ही बनरा वह पूँछि की आगि न लंक जरी।
भीर मैं अक्ष मर्‌यो चपि बालक बादिहि जाइ प्रसस्ति करी।
ताल बिधे अरु सिंधु बँध्यो यह चेटक बिक्रम कौन कियो।
बानर को नर को बपुरा पल मैं सुरनायक बाँधि लियो ॥१३॥

अंगद—चेटक सौं धनु भंग कियो प्रभु रावरे को अति जीरन हो।
बान-समेत रहे पचिकै तुम जा सह पै न तज्यो थल हो।
बान सु कौन, बली बलि को सुत वै बलि बावन बाँधि लियो।
वोई सु तौ जिनकी चिर चेरिनि नाच नचाइकै छाँडि दियो ॥१४॥

रावण (विजय)—नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपिपुंज तिहारे।
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपनो पदु लै, पितु जा लगि मारे।
तोसे सपूतहि जाइकै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहिं क्यौं न हतै बपमारे ॥१५॥

(दोहा)—जो सुत अपने बाप को बैर न लेइ प्रकास।
तासौं जीवत ही मर्‌यो लोग कहैं तजि त्रास ॥१६॥

अंगद—इनको बिलगु न मानिये कहि 'केसव' पल आधु।
पानी पावक पवन प्रभु ज्यौं असाधु त्यौं साधु ॥१७॥

रावण—(द्रुतविलंबित)

उरसि अंगद लाज कछू गहौ। जनकघातक-बात बृथा कहौ।
सहित लक्ष्मन रामहिं संवरौं। सकल बानरराज तुम्हैं करौं ॥१८॥

---

[१२] बाँधोई–तुम्हैं बाँधोई (प्रताप०); बाँनर (सर०); बाँदर (कौमुदी)। बन्यो–बँध्यो (वही)। श्री–अजहूँ (दीन० २, प्रताप०, काशि०, सर०)। तेलनि–जब तेलनि (प्रताप०); तेलहु (कौमुदी)। तूलनि तूलहु (वही)। [१३] आगि न–आगि सौं (प्रताप०, सर०)। प्रसस्ति–प्रसिद्ध (प्रताप०); प्रसंसि (सर०)। बपुरा०–बल केतिक (दीन० १); बलकारन (प्रताप०, सर०)। [१४] प्रभु–बल (दीन०); तन (कौमुदी)। रावरे०–रावन के अति ही बलु हो (वही)। तुम–तहँ (वही)। सह–सँग (वही)। वोई–वेई (वही)। [१५] हतै–हनै (काशि०, सर०) [१८] बृथा–कहा (दीन०, प्रताप०, सर०)।

अंगद—(निशिपालिका)

सत्रु सब मित्र हम चित्त पहिचानहीँ। दूतबिधि नूत कबहूँ न उर आनहीँ।
आप मुख देखि अभिलाष अभिलाषहू। राखि भुज-सीस तब और कहँ राखहू ॥१६॥

रावण—(इंद्रवज्रा)

मेरी बड़ी भूल कहा कहौँ रे। तेरो कह्यो दूत सबै सहौँ रे।
वै तौ सबै चाहत तोहि माऱ्यो। मारौँ कहा तोहि जो दैवमाऱ्यो ॥२०॥

अंगद (उपेंद्रवज्रा)—नराच श्रीराम जहीँ धरैँगे। असेष माथे कटि भू परैँगे।
सिखा सिवा स्वान गहे तिहारी। फिरैँ चहूँ ओर निरै-बिहारी।

रावण—(भुजंगप्रयात)

महामीचु दासी सदा पाइँ धोवै। प्रतीहार ह्वैकै कृपा सूर जोवै।
छपानाथ लीन्हे रहै छत्र जाको। करैगो कहा सत्रु सुग्रीव ताको ॥२२॥
सका मेघमाला सिखी पाककारी। करै कोतवाली महादंडधारी।
पढ़ै बेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके। कहा बापुरो सत्रु सुग्रीव ताके ॥२३॥

अंगद—(विजय)

पेट चढ़्यो पलना पलिका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ़्यो रे।
चौक चढ़्यो चित्रसारी चढ़्यो गजबाजि चढ़्यो गढ़गर्ब चढ़्यो रे।
ब्योमबिमान चढ़्योई रह्यो कहि 'केसव' सो कबहूँ न पढ़्यो रे।
चेतत नाहि रह्यो चढ़ि चित्त सो चाहत मूढ़ चिताहूँ चढ़्यो रे ॥२४॥

रावण—(भुजंगप्रयात)

निकाऱ्यो जु भैया लियो राज जाको। दियो काढ़िकै जू कहा त्रास ताको।
लिये बानराली कहौँ बात तोसौँ। सु कैसे जुरै राम संग्राम मोसौँ ॥२५॥

अंगद (विजय)—हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाउँ कुठाउँ बिलैहै।
तात न मात न पुत्र न मित्र न बित्त न तीय कहूँ सँग रैहै।
'केसव' काम के राम बिसारत, और निकाम रे काम न ऐहै।
चेति रे चेति अजौँ चित-अंतर अंतकलोक अकेलोई जैहै ॥२६॥

---

[१६] सब–सम (कौमुदी)। अभिलाषहू–मुख भाखहू (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२०] तौ–जो (कौमुदी)। [२२] जोवै–सोवै (प्रताप०, सर०)। करैगो०–कहा बापुरो (दीन० १)। [२४] पलना०–पलना चढ़्यौ पालिक (प्रताप०, सर०)। [२५] जू–जो (प्रताप०); सो (सर०)। जुरै–लरै (काशि०)। [२६] न तीय०–न अंगना संगन (प्रताप०, सर०)। के–को (प्रताप०, काशि०, सर०)। निकाम–अकाम (प्रताप०, सर०)। अंतर–अंध (दीन० १)। लोक–प्रान (दीन० २); बोक (प्रताप०)।

रावण—(भुजंगप्रयात)

डरै गाइबिप्रै अनाथै जो भाजै। परद्रव्य छोड़ै परस्त्रीहि लाजै।
परद्रोह जासों न होवै रतीको । सो कैसैं लरै बेष कीन्हैं जती को ॥२७॥

(दोहा)—गेंद कस्यो मैं खेल को, हरिगिरि 'केसवदास'।
सीस चढ़ाए आपने, कमल-समान सहास ॥२८॥

अंगद—(दंडक)

जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिबर ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं।
काटे जो कहत सीस काटत घनेरे घाघ भागर के खेले कहा भट-पद पावहीं।
जीत्यो जु सुरेस रन साप रिषिनारि ही को समझहु हम द्विज-नातें समुझावहीं।
गहौ रामपाइ सुख पाइ करैं तपी तप, सीताजू कौं देहि, देव दुंदुभी बजावहीं।२९।

रावण—(वंशस्थ)

तपी जपी बिप्रन क्षिप्रहीं हरौं। अदेवद्वेषी सब देव संहरौं।
सिया न देहौं यह नेम जी धरौं। अमानुषी भूमि अबानरी करौं॥३०॥

अंगद (विजय)—पाहन तें पतिनी करि पावन टूक कियो धनु द्वै हर को रे।
छत्रबिहीन करी छन मैं छिति गर्ब हत्यो तिनके बर को रे।
पर्बतपुंज पुरैन के पात समान तरे अजहूँ धरको रे।
होइँ नरायनहूँ पै न ये गुन कौन इहाँ नर बानर को रे ॥३१॥

रावण (चंचरी)—देहिं अंगद राज तोकहँ मारि बानरराज कौं।
बाँधि देहिं बिभीषनै अरु फोरि सेतु-समाज कौं।
पूँछि जारहिं अक्षरिपु की पाइँ लागहिं रुद्र के।
सीय कौं तब देहुँ रामहिं पार जाइँ समुद्र के ॥३२॥

अंगद—लंक लाइ गयो बली हनुमंत संतन गाइयो।
सिंधु बाँधत सोधिकै नल छीरछीट बहाइयो।
ताहि तोहि समेत अंध उखारि हौं उलटी करौं।
आजु राज कहाँ बिभीषन बैठिहैं तेहि तें डरौं॥३३॥

---

[२७] लाजै–भाजै (दीन०)। [२८] खेल०—खेलहीं (प्रताप०, सर०)। सहास–प्रकास (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२९] जैसो–जैसे (प्रताप०, सर०)। गिरिबर–हरगिरि (कौमुदी)। खेले०–खेल क्यों सु (वही)। [३१] कियो–कस्यो (प्रताप०, सर०)। धनु०—हर ` धनु (काशि०); धनुद्वै हर (कौमुदी)। हत्यो–हस्यो (कौमुदी०)। [३३] गयो–दियो (कौमुदी)। बहाइयो–बुझाइयो (प्रताप०, सर०)। 'दीन० १' मैं निम्नोक्त छंद अधिक है—

कह्यो सबनि सुनाइ। पगु ठेलियो सब आइ। हास्यो तहाँ लंकेस। फूले तहाँ सिव सेष।

(दोहा)—अंगद रावन को मुकुट लै करि उड़्यो सुजान।
मनो चल्यो जमलोक कौं दससिर को प्रस्थान ॥३४॥

इति श्रीमत्सकाललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायां श्रीमदिंद्रजिद्विरचितायां अंगदविवादवर्णनन्नाम षोडशः प्रकाशः ॥१६॥

१७

(दोहा)—अंगद लै वा मुकुट कौं, परे राम के पाइ।
राम बिभीषन के सिरसि, भूषित कियो बनाइ ॥१॥

(पद्धटिका)—दिसि दक्षिन अंगद पूर्व नील। पुनि हनूमंत पच्छिम सुसील।
दिसि उत्तर लक्ष्मनसहित राम। सुग्रीव मध्य कीन्हे बिराम ॥२॥

सँग जूथप जूथनि बलबिलास। पुर फिरत बिभीषन आसपास।
निसिबासर सबको लेत सोधु। यहि भाँति भयो लंकानिरोधु ॥३॥

तब रावन सुनि लंका-निरोधु। गुनि उपज्यो तन-मन परम क्रोधु।
राख्यो प्रहस्त हठि पूर्व पौरि। दक्षिनहि महोदर गयो दौरि ॥४॥

भए इंद्रजीत पच्छिम दुवार। है उत्तर रावन बलउदार।
कियो बिरूपाक्ष थिति मध्यदेस। करै नारांतक चहुँघा प्रबेस ॥५॥

(प्रमिताक्षरा)—अति द्वार द्वार महँ जुद्ध भए। बहु रिक्ष कँगूरनि लागि गए।
तब स्वर्न-लंक महँ सोभ भई। जनु अग्निज्वाल महँ धूममई ॥६॥

आगे का 'दंडक' 'दीन० १' और 'सर०' में अधिक है—

हदगिरि हाल्यो हरिगिरि सुमेरु हाल्यो उदयगिरि हाल्यो रुद्रगिरि मेरु चालई।
सपत पताल हाले भुवपाल ब्याल हाले, द्रिगपाल हाले जल ऊँचे कौं उछालई।
'केसोदास' लंका को सकल दल बल हाल्यो, हाले दससीस जाहि ईस प्रतिपालई।
ध्रुवलोक हालि फेरि भुवलोक हालि उठ्यो बालि-बरिबंडजू को पगु पै न हालई ॥

ये छंद केवल 'सर०' में अधिक हैं—

सुनु रावन दसभालजुत पद रोप्यो बलबीर। जौ उठाउ बल करि चरन सिय त्यागहिं रघुबीर।
उठ्यो कोपिकै तौ दसग्रीव आयो। कह्यो बालि के लाज तोकौं लजायो।
गहौ पाय श्रीराम के तौ भलाई। कहा दास के आस तोको बिसाई ॥
खैंचि खिस्यान्यो रहि गयो जैसे बिमुख हुलास। करत मनोरथ होत नहि बिनु रघुबर की आस ॥

[४] तब–जब (कौमुदी)। गुनि–अति (प्रताप०); उर (सर०); तब (कौमुदी)। [५] है–रहि (प्रताप०); रहे (सर०)। चहुँघा–बहुधा (दीन०)। [६] महँ–प्रति (दीन०, प्रताप०, सर०)। इसके अनंतर 'दीन० १' में निम्नांकित छंद अधिक है—

(दोहा)—मरकत मनि के सोभिजै, सबै कँगूरा चारु।
आइ गयो जनु घात कौं, पातक को परिवारु ॥७॥

(कुसुमविचित्रा)

तब निकसो रावन-सुत सूरो। जेहि रन जीत्यो हरि-बल पूरो।
तपबल माया-तम उपजायो। कपि-दल के मन संभ्रम छायो ॥८॥

(दोधक)—काहु न देखि परै वह जोधा। जद्यपि हैं सिगरे बुधि-बोधा।
सायक सो अहिनायक साँध्यो। सोदर स्यौं रघुनायक बाँध्यो ॥९॥

रामहिँ बाँधि गयो जब लंका। रावन की सिगरी गइ संका।
देखि बँधे तब सोदर दोऊ। जूथप जूथ त्रसे सब कोऊ ॥१०॥

हलाडोल होन लागौ सेना लागिय सजिय आवत है रघुनाथ मानौ घटा उनई।
धरा की सकल धूरि रही है अवर पूरि सूर वै न देखियतु छन छायाहू छई।
रावन की राजधानी होन लागी धूरधानी जानी नहिँ अभिमानी मति धौं कहा ठई।
सेत सेत कारौ कारौ देखियतु पीरी पीरी लंक सब [पेखियत] भूरि भूरि ह्वै गई।

[७] के-से (कौमुदी)। इसके अनंतर 'दीन० १' में ये छंद अधिक हैं—
लखि रावन आइसु दयो मंत्री मंत्र बुलाइ। इंद्रजीत कौं आदि दै जुध्ध करौ तुम जाइ।
लंक चमू तबही चढ़ी द्वार द्वार प्रति धाइ। दुंदजुध्ध दुहु दल भयौ पाछै देत न पाइ ॥

चचरी

रन राम मन मायक धरे तब जुरे पंच महारथी।
को जकै छिति जुध्ध मैं जमलोक के ति भए पथी।
लछिमन हनै रन को गनै जूझै घनै दुहु सैन के।
रबि अस्तकाल कराल भट आए मुकुट दिये ऐन के।
तिन जोति तें तमनास गौ सबकौं प्रगट सब देखई।
तब धाइकै कपिजूथनाथनि सब हनै को लेखई।
पुनि इंद्रजीत अजीत निकस्यौ प्रगट ही रथ साजिकै।
तिहि देखि आवत बीर अंगद सामुहौ भयौ गाजिकै।
तब मेघनाद असेष बानन बीर अंगद मारियौ।
करि क्रोध सौं गिर एक लै रथ सूतदूत सँघारियौ।
धायौ पयादौ बान लै अंगद सबै चनकट हयौ।
उर मध्य छोभि भयौ जहीं तब भागि सो लंकै गयौ।
दोहा—कीन्हे जग्य निकुंभिला ह्वै गयौ रुधिर अपार।
कुंडमध्य तेहि प्रगट्यौ सूत सहित हथियार।

[९] सोदर—लछमन (प्रताप०)। [१०] गइ—मिटि (प्रताप०, सर०)। तब०—रघुनायक (वही)।

(स्वागता)—इंद्रजीत तेहि लै उर लायो। आजु काजु सब भो मनभायो।
कै बिमान अधिरूढ़ित धायो। जानकीहि रघुनाथ दिखायो ॥११॥

राजपुत्र जुतनागनि देख्यो। भूमिजुक्त तरु-चंदन लेख्यो।
पन्नगारि-प्रभु पन्नगसाई। काल-चालि कछु जानि न जाई ॥१२॥

(दोहा)—कालसर्प के कवल तें, छोरत जिनको नाम।
बँधे ते आह्वान-बचनबस, माया-सर्पहि राम ॥१३॥

(स्वागता)—पन्नगारि तबहीं तहँ आए। ब्याल-जाल सब मारि भगाए।
लंकमाँझ तबहीं गइ सीता। सुभ्र देह अवलोकि सुगीता ॥१४॥

गरुड़—(इंद्रवज्रा)

श्रीराम नारायन लोककर्ता। ब्रह्मादि रुद्रादिक दुक्खहर्ता।
सीतेस मोकों कछु देहु सिक्षा। नान्ही बड़ी ईस जु होइ इच्छा ॥१५॥

राम—कीबे हुतो काज सबै सु कीन्हो। आए इहाँ मो कहँ सुक्ख दीन्हो।
पा लागि बैकुंठ-प्रभा-बिहारी। स्वर्लोक गो तक्षन बिष्णुधारी ॥१६॥

(इंद्रवज्रा)—धूम्राक्ष आयो जनु देहधारी। ताको हनूमंत भए प्रहारी।
जेते अकंपादि बलिष्ठ भारे। संग्राम में अंगद बीर मारे ॥१७॥

(उपेंद्रवज्रा)—अकंप-धूम्राक्षहिं जानि जूझ्यो। महोदरै रावन मंत्र बूझ्यो।
सदा हमारे तुम मंत्रबादी। रहे कहा ह्वै अतिही बिषादी ॥१८॥

मदोदर—कहै जो कोऊ हितवंत बानी। कहौ सो तासौं अति दुक्खदानी।
गुनौ न दावै बहुधा कुदावै। सुधी तबै साधत मौन भावै ॥१९॥

कह्यो सुकाचार्ज सु हौं कहौं जू। सदा तुम्हारे हित संग्रहौं जू।
नृपाल भू में बिधि चारि जानौं। सुनौ महाराज सबै बखानौं ॥२०॥

(भुजंगप्रयात)

यहै लोक एकै सदा साधि जानै। बली बेनु ज्यौं आपुहीं ईस मानै।
करै साधना एक पर्लोक ही कौं। हरिस्चंद्र जैसे गए दै मही कौं ॥२१॥

---

[११] इंद्रजीत–मेघनाद (प्रताप०, सर०)। [१२] जुक्ति–पुत्रि (कौमुदी)। [१३] सर्पहि–सर्पनि (प्रताप०, सर०)। [१५] सीतेस०–सीता सुमिरिहौं (दीन०, प्रताप,० सर०)। कछु–प्रभु (प्रताप०, सर०); ईस (दीन०)। [१६] इहाँ–इतै (कौमुदी)। [१७] दंड–देह (अन्यत्र)। भए–जे है (प्रताप०; सर०)। जेते–जिते (काशि०, कौमुदी)। [१८] जानि–जुद्ध (दीन०, प्रताप०, सर०)। [१९] कहौ०–जानीय मन ताकहँ (प्रताप०)। गुनौ–सुनौ (दीन०१) तबै–ताते (प्रताप०); सबै (सर०)। [२०] सुकाचार्ज–शुक्राचार्य (कौमुदी)। तुम्हारे–तुम्हारो (काशि०)।

दुहूँ लोक कौं एक साधैं सयानै। बिदेहीन ज्यौं बेदबानी बखानै।
नठैं लोक दोऊ हठी एक ऐसे। त्रिसंकै हँसैं ज्यौं भलेऊ अनैसे ॥२२॥

(दोहा)—चहूँ राज के मैं कहे, तुमसौं राजचरित्र।
रुचै सु कीजै चित्त मैं, चिंतहु मित्र अमित्र ॥२३॥
चारि भाँति मंत्री कहे, चारि भाँति के मंत्र।
मोहि सुनायो सुक्रजू, सोधि सोधि सब तंत्र ॥२४॥

(छप्पय)—एक राज के काज हतैं निज कारज-काजे।
जैसे सुरथ निकारि सबै मंत्री सुख साजे।
एक राज के काज आपने काज बिगारत।
जैसे लोचनहानि सही कबि बलिहि निवारत।
इक प्रभु समेत अपनो भलो करत दासरथिदूत ज्यौं।
इक अपनोऊ प्रभु को बुरो करत रावरो पूत ज्यौं ॥२५॥

(दोहा)—मंत्र जु चारि प्रकार के, मंत्रिन के जे प्रमान।
बिष से दाड़िम-बीज से, गुर से नींब-समान ॥२६॥

(चंद्रवर्त्म)—राजनीति-मत-तत्व समुझिये। देसकाल गुनि जुद्ध अरुझिये।
मंत्रि मित्र अरि को गुन गहिये। लोक लोक अपलोक न लहिये ॥२७॥

रावण—चारि भाँति नृपता तुम कहियो। चारि मंत्रि मत मैं मन गहियो।
राम मारि सुर एक न बँचिहैं। इंद्रलोक बसोबासहि रचिहैं ॥२८॥

(प्रमिताक्षरा)—उठिकै प्रहस्त सजि सैन चले। बहु भाँति जाइ कपि-पुंज दले।
तब दौरि नील उर मुष्टि हन्यो। असुहीन गिरयो भुव मुंड सन्यो ॥२९॥

(वंशस्थ)

महाबली जूझतहीं प्रहस्त को। चल्यो तहीं रावन मीड़ि हस्त को।
अनेक भेरी बहु दुंदुभी बजैं। गयंद क्रोधांध जहाँ तहाँ गजैं ॥३०॥

सनीर जीमूत-निकास सोभहीं। बिलोकि जाकौं सुर-सिद्ध छोभहीं।
प्रचंड नैरित्य-समेत देखिये। सप्रेत मानो महकाल लेखिये ॥३१॥

---

[२२] नठैं— नसै (दीन० १)। [२३] चिंतहु—समुझौ (प्रताप०)। [२५] ऊ—अरु (कौमुदी)। [२६] जु—जे (प्रताप०, सर०)। [२७] लहिये—सहिये (प्रताप०); बहिये (कौमुदी) [२८] नृपता—नृप जो (कौमुदी)। बसो—सब (दीन० १, प्रताप०, सर०)। [२९] उर—उठि (कौमुदी, प्रकाशिका)। [३०] को—के (प्रताप०)। [३१] निकास—अकास (प्रताप०); निकाए (काशि०)। सिद्ध—सिंह (दीन० २, सर०); इंद्र (प्रताप०)। महकाल—महिकाल (प्रताप०, सर०)।

बिभीषण—(वसंततिलक)

कोदंड मंडित महारथवंत जो है। सिंहध्वजी समर-पंडित-बृंद मोहै।
माहाबली प्रबल काल कराल नेता। सो मेघनाद सुरनायक जुद्ध-जेता ॥३२॥

जो ब्याघ्र-बेष-रथ ब्याघ्रनि-केतुधारी। संरक्तलोचन कुबेर-बिपत्तिकारी।
लीन्हे त्रिसूल सुरसूलसमूह मानो। श्रीराघवेंद्र अतिकाय वहै सु जानो ॥३३॥

जो कांचनीय रथ सृंगमयूरमाली। जाकी उदार उर-षन्मुख सक्ति साली।
स्वर्धाम-धामहर-कीरति कैं न जानी। सोई महोदर बृकोदर-बंधु मानी ॥३४॥

जाके रथाग्र पर सर्पध्वजा बिराजै। श्रीसूर्यमंडल-बिडंबन ज्योति साजै।
आखंडलीय बपु जो तनत्रानधारी। देवांतकै सु सुरलोक बिपत्तिकारी ॥३५॥

जो हंसकेतु भुजदंड-निषंगधारी। संग्राम-सिंधु बहुधा अवगाहकारी।
लीन्ही छड़ाइ जिहिँ देव-अदेव-बामा। सोई खरात्मज बली मकराक्ष नामा ॥३६॥

(भुजंगप्रयात)

लगे स्यंदनैं बाजिराजी बिराजै। जिन्हैं बेग कौं पौन को बेग लाजै।
भले स्वर्न की किंकिनी-जूथ बाजैं। मिले दामिनी सौं मनो मेघ गाजैं ॥३७॥

पताका बन्यो सुभ्र सार्दूल सोभै। सुरेंद्रादि रुद्रादि के चित्त छोभै।
लसै छत्रमाला हँसै सोमभा कौं। रमानाथ जानो दसग्रीव ताकौं ॥३८॥

पुरद्वार छाँड्यो सबै आपु आयो। मनो द्वादसादित्य कौं राहु धायो।
गिरि-ग्राम लै लै हरि-ग्राम मारैं। मनो पद्मिनीपत्र दंती बिहारैं ॥३९॥

(विजय)—देखि विभीषन कौं रन रावन सक्ति गही कर रोषरई है।
छूटत ही हनुमंत सो बीचहिं पूछ लपेटिकै डारि दई है।
दूसरि ब्रह्म की सक्ति अमोघ चलावतहीँ हाइ हाइ भई है।
राख्यो भले सरनागत लक्ष्मन धूलि कै फूल सी ओढ़ि लई है ॥४०॥

(स्रग्विणी)

जोर ही लक्ष्मनै लेन लाग्यो जहीँ। मुष्टि छाती हनूमंत मार्‌यो तहीँ।
आहहीँ प्रान को नास सो ह्वै गयो। दंड द्वै तीनि मैं चेत ताकौं भयो ॥४१॥

(मरहट्टा)—आयो डर प्रानन, लै धनु बानन, कपिदल दियो भगाइ।
चढ़ि हनूमंत पर, रामचंद्र तब रावन रोक्यो जाइ।

---

[३२] माहा—जोधा (कौमुदी); महा (प्रताप०, काशि०; सर०)। [३३] ब्याघ्रनि—ब्याघ्रहि (कौमुदी)। संरक्त—आरक्त (वही)। सुर—उर (प्रताप०, सर०)। अतिकाय०—ताकौं अतिकाय (प्रताप०, सर०)। [३६] निषंग—विषङ्ग (काशि०); बिषंड (सर०)। [३७] लगे—लगी (कौमुदी)। बेग कौं—देखिकै (वही)। [३८] के—को (सर० कौमुदी)। [३९] पत्र—पद्म (कौमुदी)।

धरि एक बान तब, सूत छत्र ध्वज, काटे मुकुट बनाइ।
लागे दूजो सर, छूटि गयो बर, लंक गयो अकुलाइ ॥४२॥

(दोधक)—जद्यपि है अति निर्गुनताई। मानुष-देह धरे रघुराई।
लक्ष्मन राम जहीँ अवलोक्यो। नैनन तेँ न रह्यो जल रोक्यो ॥४३॥

राम—बारक लक्ष्मन मोहि बिलोकौ। मोकहँ प्रान चले तजि, रोकौ।
हौँ सुमरौँ गुन केतिक तेरे। सोदर पुत्र सहायक मेरे ॥४४॥

लोचन बाहु तुही धनु मेरो। तू बल बिक्रम बारक हेरौ।
तो बिनु हौँ पल प्रान न राखौँ। सत्य कहौँ कछु झूँठ न भाखौँ ॥४५॥

मोहि रही इतनी मन संका। देन न पाइ बिभीषन लंका।
बोलि उठौ प्रभु को प्रन पारौ। नातरु होत है मो मुख कारो ॥४६॥

बिभीषण—(सुंदरी)

म बिनऊँ रघुनाथ करौ अब। देव तजौ परिदेवन कौँ सब।
औषधि लै निसि मैँ फिरि आवहि। 'केसव' सो सब साथ जियावहि ॥४७॥

सोदर सूर को देखतहीँ मुख। रावन के पुरवै सिगरे सुख।
बोल सुने हनुमंत कर्यो प्रनु। कूदि गयो जहँ औषधि को बनु ॥४८॥

राम (षट्पद)—करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौँ अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौँ गंधर्ब सर्ब पसु।
बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउँ इंद्र अब।
बिद्याधरन अबिद्य करौँ बिन सिद्धि सिद्ध सब।
निजु होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाइ जल।
सुनि सूरज सूरज उवतहीँ करौँ असुर संसार बल ॥४९॥

(भुजंगप्रयात)

हन्यो बिघ्नकारी बली बीर बामैँ। गयो सीघ्रगामी गए एक जामैँ।
चल्यो लै सबै पर्बतै कै प्रनामै। न जान्यो बिसल्यौषधी कौन तामै ॥५०॥

लसैँ औषधी चारु भो ब्योमचारी। कहै देखि यौँ देव देवाधिकारी।
पुरी भौम की सी लियो सीस राजै। महामंगलार्थी हनूमंत गाजै ॥५१॥

लगी सक्ति रामानुजै राम साथी। जड़ै ह्वै गए ज्यौँ गिरै हेमहाथी।
तिन्हैँ ज्याइबे कौँ सुनौ प्रेमपाली। चल्यो ज्वालमालीहि लै कीर्तिमाली ॥५२॥

---

[४५] बाहु—बान (कौमुदी)। तो—तूँ (काशि०, कौमुदी)। सत्य०—सीय तजौँ सुख (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४६] मुख०—दुखभारो (दीन० २)। [४७] मैँ—हौँ (प्रताप०, सर०)। [४९] निजु—बसु (दीन० १); जौ (प्रताप०)। संसार—संघार (दीन०, प्रताप०, सर०)। [५१] चारु—बृंद (दीन०)। भौम—इंदु (दीन० २); काम (दीन० १)। [५२] लगी—लगे (प्रताप०, सर०)। सुनौ—किधौँ (प्रताप०); मनौ (सर०)।

किधौं प्रात ही काल जी मैं बिचाखो। चल्यो अंसु लै अंसुमाली सँघाखो।
किधौं जात ज्वालामुखी जोर लीन्हे। महामृत्यु जामैं मिटै होम कीन्हे ॥५३॥

बिना पत्र हैं जत्र पालास फूले। रमैं कोकिलाली भ्रमैं भौंरं भूले।
सदानंद रामै महानंद कौं लै। हनूमंत आए बसंतै मनो लै ॥५४॥

(मोटनक)—ठाढ़े भए लक्ष्मन मूरि छिये। दूनी सुभ सोभ सरीर लिये।
कोदंड लिये यह बात ररैं। लंकेस न जीवत जाइ घरैं ॥५५॥

श्रीराम तहीं उर लाइ लियो। सूँघ्यो सिर आसिष कोटि दियो।
कोलाहल जूथप जूथ कियो। लंका हहली दसकंठ हियो ॥५६॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां लक्ष्मण-मूर्छामोचनन्नाम सप्तदशः प्रकाशः ॥१७॥

१८

(दोधक)—रावन लक्ष्मन कौं सुनि नीके। छूटि गए सब साधन जी के।
रे सुत मंत्रि बिलंब न लावौ। कुंभकरन्नहि जाइ जगावौ ॥१॥

राक्षस लक्षन साधन कीने। दुंदुभि दीह बजाइ नवीने।
मत्त अमत्त बड़े अरु बारे। कुंजर-पुंज जगावत हारे ॥२॥

आइ जहीं सुरनारि सभागीं। गावन बीन बजावन लागीं।
जागि उठो तबहीं सुरदोषी। क्षुद्र क्षुधा बहु भक्षन पोषी ॥३॥

(नराच)

अमत्त मत्त दंतिपंक्ति एक कौर को करै। भुजा पसारि आसपास मेघओघ संघरै।
बिमान आसमान के जहाँ तहाँ भगाइयो। अमान मान सौं दिवान कुंभकर्न आइयो॥

रावण—समुद्र सेतु बाँधि कै मनुष्य दोइ आइयो।
लिये कुचालि बानरालि लंक अंक लाइयो।
मिल्यो बिभीषनौ न मोहि तोहि नेकहू डखो।
प्रहस्त आदि दै अनेक मंत्रि मित्र संघखो ॥४॥

---

[५३] सँघाखो—सचाखौ (प्रताप०)। [५६] सूँघ्यो०-चूम्यो मुख (प्रताप०, सर०)। दहली—दहल्यो (कौमुदी)।

[३] गीत-बीन (दीन०, प्रताप०)। [४] ओघ—ओप (कौमुदी)। [५] अंक-आगि (कौमुदी)।

करौ सुकाज आसु आजु चित्त में जु भावई।
असुक्ख होइ जीव-जीव सुक्क सुक्ख पावई।
समेत राम लक्ष्मनै सो बानरालि भक्षिये।
सकोस मंत्रि मित्र पुत्र धाम ग्राम रक्षिये ॥६॥

कुंभकर्ण—(मनोरमा)

सुनिये कुल-भूषन देवबिदूषन। बहु आजिबिराजिन के तमपूषन।
भुव भूप जे चारि पदारथ साधत। तिनकों कबहूँ नहि बाधक बाधत ॥७॥

(पंकजवाटिका)

धर्म करत अति अर्थ बढ़ावत। संतति-हित-रति कोबिद गावत।
संतति उपजतहीं निसिबासर। साधत तन मन मुक्ति महीधर ॥८॥

(दोहा)—राजा अरु जुवराज जग, प्रोहित मंत्री मित्र।
कामी कुटिल न सेइयै, कृपन कृतघ्न अमित्र ॥९॥

(दंडक)

कामी बामी मूढ़ क्रोधी कोढ़ी कुलद्वेषी खलु कातर कृतघ्नी मित्रद्रोही द्विजद्रोहियै।
कुपुरुष किंपुरुष काहली कलही कूर कुटिल कुमंत्री कुलहीन 'केसो' टोहियै।
पापी लोभी भूठ अंध बावरो बधिर गूँग बौन अबिबेकी हठी छली निरमोहियै।
सूम सर्वभक्षी दैवबादी जो कुबादी जड़ अपजसी ऐसो भूमि भूपति न सोहियै ॥१०॥

(निशिपालिका)

बानर न जानु सुर जानु सुभगाथ हैं। मानुष न जानु रघुनाथ जगनाथ हैं।
जानकिहि देहु करि नेहु कुल देहु सो। आजु रन साजि पुनि गाजि हँसि मेहु सो ११

रावण (दोहा)—कुंभकर्न! करि जुद्ध कै सोइ रहौ घर जाइ।
बेगि बिभीषन ज्यौं मिल्यो, गहौ सत्रु के पाइ ॥१२॥

मंदोदरी—इंद्रजीत अतिकाय सुनि, नारांतक सुखदाइ।
भैयन सो प्रभु भुकत हैं, क्यौं न कहौ समुझाइ ॥१३॥

---

[६] जीव०—जीव सो असुक्ख सुक्ख (दीन० १)। मंत्रि—बंधु (वही)। धाम—बाम (सर०)। [७] आजि०—राजधिराजनि (प्रताप०); राजबिराजनि (सर०)। तम—तुम (काशि०)। [८] करत—करम (दीन० २)। संतति हित—संतत हित (प्रताप० काशि०); संतहि संतति (सर०)। रति०—मन काम लगावत (दीन० २); काम लगावत (सर०); कोबिद काम लगावत (दीन०)। [९] जग—जुग (दीन०); पद (प्रताप०)। [१०] मूढ़—भूठ (कौमुदी)। कुलद्वेषी—कुलदोषी (प्रताप०); कुलद्रोही (सर०)। मित्र०—मित्रदोषी (सर०)। केसो—नाही (दीन०, प्रताप०); कैसे (सर०)। भूठ—सठ (कौमुदी)। [११] मेहु—नेहु (काशि०)। [१२] बेगि—नतरु (दीन० १)। [१३] क्यौं—तुम (प्रताप०); तुम क्यौं (सर०)।

मंदोदरी—(चंचला)

देव कुंभकर्न के समान जानिये न आन। इंद्र चंद्र बिष्नु रुद्र ब्रह्म को हर्यो गुमान।
राजकाज को कहै जु मानिये सु प्रेमपालि। कै चली न को चलै न काल की कुचाल चालि
बिष्नु भाजि जात छोड़ि देवता असेष। जामदग्नि देखि देखि कै न कीन्ह नारिबेष।
ईस राम तें बच्यो बचे कि बानरेस बालि। कै चली न को चलै न काल की कुचाल चालि

मंदोदरी—(विजय)

रामहि चोरन दीन्ही सिया जिनके दुख तो तप लीलि लियो है।
रामहि मारन दीन्हो सहोदर रामहि आवन जान दियो है।
देह धर्यो तुमहीं लगि आजु लौं रामहि के पिय ज्याए जियो है।
दूरि करी द्विजता द्विजदेव हरेहीं हरे अततार्इ कियो है ॥१६॥

(दोहा)—संधि करौ बिग्रह करौ सीता कौं तौ देहु।
गनौ न पिय देहीन मैं पतिब्रता को देहु ॥१७॥

रावण (मदिरा)—हौं सुत छाँडि मिलौं मृगलोचनि क्यों छमिहैं अपराध नए।
नारि हरी सुत बाँध्यो तिहारे हौं कालिहि सोदर साँग हए।
बामन माँग्यो त्रिपैग धरा दक्षिना बलि चौदह लोक दए।
रंचक बैर हुतो, हरि बंचक बाँधि पताल तऊ पठए ॥१८॥

मंदोदरी (दोहा)—देवर कुंभकरन्न सो हरि-अरि सो सुत पाइ।
रावन सो प्रभु, कौन कौं मंदोदरी डेराइ ॥१६॥

(चामर)

कुंभकर्न रावनै प्रदक्षिना सु दै चल्यो। हाइ हाइ ह्वै रही अकास आसु ही हल्यो।
मध्य क्षुद्रघंटिका किरीट सृंग सोभनो। लक्ष पक्ष सौं कलिंद इंद्र कौं चल्यो मनो ॥

(नराच)—उड़ैं दिसा दिसा कपीस कोरि कोरि स्वाँसहीं।
चपैं चपेट पेट बाहु जानु जंघ सौं तहीं।
लिये बहोरि ऐंचि ऐंचि बीर बाहु बातहीं।
भखे ते अंतरिक्ष रिक्ष लक्ष लक्ष जातहीं ॥२१॥

---

[१४] कै—को (प्रताप०, काशि०)। [१५] न कीन्ह—कियो न (प्रताप०, सर०)। नारि—राम (दीन० १) ईस—जाइ (दीन० २)। बच्यो—बचे (कौमुदी) [१६] जिन—जेहि (कौमुदी)। तो—सो (प्रताप०); स्यौं (सर०)। देव—दीन (दीन० १)। [१७] बिग्रह०—बिग्रह तजौ (दीन० १, सर०) कौं—लै (सर०)। तौ—लै (दीन० २); प्रभु (सर०)। [१६] पाइ—जाइ (काशि०, सर०)। [२०] सु—हि (काशि०)। रही—रह्यो (काशि०, कौमुदी)। सृंग—सीस (कौमुदी)। कौं—पै (कौमुदी)। चल्यो—चल्यौ (काशि०, कौमुदी)। [२१] उड़ैं—उड़े (प्रताप०, सर०)। चपैं०—चपेट··· तहीं तहीं (प्रताप०); चले······(सर०); चपैं चपेट बाहु जानु जंघ सौं जहीं तहीं (कौमुदी)। बहोरि—हैं और (काशि०, प्रकाशिका); लपेट (कौमुदी)।

कुंभकर्ण—(भुजंगप्रयात)

न हौं ताड़का हौं सुबाहै न मानौं। न हौं संभुकोदंड साँचो बखानौं।
इन हौं तालमाली, खरै जाहि मारो। न हौं दूषनै सिंधु सूधो निहारो ॥२२॥

सुरी आसुरी सुंदरी भोगकर्नैं। महाकाल को काल हौं कुंभकर्नैं।
सुनौ राम संग्राम कौं तोहि बोलौं। बढ़्यो गर्ब लंकाहि आए सु खोलौं ॥२३॥

उठ्यो केसरी केसरी जोर छायो। बली बालि को पूत लै नील धायो।
हनूमंत सुग्रीव सोभैं सभागे। डसैं डाँस से अंग-मातंग लागे ॥२४॥

दसग्रीव को बंधु सुग्रीव पायो। चल्यो लंक मैं लै भले अंक लायो।
हनूमंत लातैं हत्यो देहभूल्यो। छुट्यो कर्न नासाहि लै, इंद्र फूल्यो ॥२५॥

सँभार्‍यो घरी एक द्वै मैं मरू कै। फिर्‍यो रामहीं सामुहैं सो गदा लै।
हनूमंतजू पूँछि सौं लाइ लीन्हो। न जान्यो कबै सिंधु मैं डारि दीन्हो ॥२६॥

जहीं काल के केतु सो ताल लीनो। कर्‍यो रामजू हस्तपादादि हीनो।
चल्यो लोटतै बाइ बक्रै कुचाली। उड़्यो मुंड लै बान ज्यौं मुंडमाली ॥२७॥

तहीं स्वर्न के दुंदुभी दीह बाजे। करी पुष्प की बृष्टि जै देव गाजे।
दसग्रीव सोकग्रस्यो लोकहारी। भयो लंक के मध्य आतंक भारी ॥२८॥

(दोहा)—तबहीं गयो निकुंभिला होमहेत इँद्रजीत।
कह्यो तहीं रघुनाथ सौं मतो बिभीषन मीत ॥२९॥

(चंचरी)—जोरि अंजुलि कौं बिभीषन राम सौं बिनती करी।
इंद्रजीत निकुंभिला गयो होम कौं रिस जी भरी।
सिद्ध होम न होइ जौलगि ईस तौलगि मारियै।
सिद्ध होहि प्रसिद्ध है यह सर्वथा हम हारियै ॥३०॥

(दोहा —सोई वाहि हतै कि नर बानर रिक्ष जु कोइ।
बारह बर्ष क्षुधा तृषा निद्रा जीते होइ ॥३१॥

(चंचरी)—रामचंद्र बिदा कर्‍यो तब बेगि लक्ष्मन बीर कौं।
त्यौं बिभीषन जामवंतहि संग अंगद धीर कौं।
नील लै नल केसरी हनुमंत अंतक ज्यौं चले।
बेगि जाइ निकुंभिला थल जज्ञ के सिगरे दले ॥३२॥

---

[२२] माली–बाली (कौमुदी)। [२३] सुंदरी०–मानुषी देव (दीन० २)। आए–आयो (प्रताप०, सर०)। [२५] मैं लै–लैकै (कौमुदी)। केसरी०–रोष कै केसरी (दीन०)। अंग-मत्त (दीन०, प्रताप०)। [२६] सो–भो (प्रताप०, सर०)। जू–सो (कौमुदी)। [२७] ज्यौं–त्यौं (कौमुदी)। [२८] स्वर्न–स्वर्ग (कौमुदी); सुरन (दीन० २)। जै देव–देवेस (दीन०, प्रताप०, सर०)। के–ही (काशि०, सर०)। [३०] कौं–कै (प्रताप०, सर०)। [३१] जु–कि (सर०)। तृषा–त्रिया (दीन० २)।

जामवंतहि मारि द्वै सर तीन अंगद छेदियो।
चारि मारि बिभीषनै हनुमंत पंच सु भेदियो।
एक एक अनेक बानर जाइ लक्ष्मन सौं भिर्‍यो।
अंध अंधक जुद्ध ज्यौं भव सौं जुर्‍यो भव ही हर्‍यो ॥३३॥

(हरिगीतिका)—रन इंद्रजीत अजीत लक्ष्मन अस्त्रसस्त्रनि संघरै।
सर एक एक अनेक मारत बुंद मंदर ज्यौं परै।
तब कोपि राघव सत्रु को सिर बान तक्षन उद्धर्‍यो।
दसकंध संध्यहि करत हो सिर जाइ अंजुलि मैं पर्‍यो ॥३४॥

रन मारि लक्ष्मन मेघनादहि स्वच्छ संख बजाइयो।
कहि साधु साधु समेत इंद्रहि देवता सब आइयो।
कछु माँगिये बर बीर सत्वर, भक्ति श्रीरघुनाथ की।
पहिराइ माल बिसाल अर्चहि कै गए सब साथ की ॥३५॥

(कलहंस)—हति इंद्रजीत कहँ लक्ष्मन आए। हँसि रामचंद्र बहुधा उर लाए।
सुन मित्र पुत्र सुभ सोदर मेरे। कहि कौन कौन सुमिरौं गुन तेरे ॥३६॥

(दोहा)—नींद भूख अरु प्यास कौं जौ न साधते बीर।
सीतहिं क्यौं हम पावते सुनु लक्ष्मन रनधीर ॥३७॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायामिंद्रजिद्वध-वर्णनन्नाम अष्टादशः प्रकाशः ॥१८॥

१९

(मोटनक)—देख्यो सिर अंजुलि मैं जबहीं। हाहा करि भूमि पर्‍यो तबहीं।
आए सुत-सोदर मंत्रि तबै। मंदोदरि स्यौं तिय आइँ सबै ॥१॥

कोलाहल मंदिर माँझ भयो। मानो प्रभु को उड़ि प्रान गयो।
रोवै दसकंठ बिलाप करै। कोऊ न कहूँ तन धीर धरै ॥२॥

रावण—(दंडक)

आजु आदित्य जल पवन पावक प्रबल चंद आनंदमय ताप जग को हरौ।
गान किंनर करौ नृत्य गंधर्ब कुल जक्ष बिधि लक्ष उर जक्षकर्दम धरौ।

---

[३३] पंच सु—पंचम (प्रताप०, सर०)। जुर्‍यो—भिर्‍यो (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३४] मंदर०—मंदिर ज्यौं धरै (दीन०); मंदर ज्यौं धरै (सर०)। तक्षन—तीक्षन (कौमुदी) करत हो—को कियो (काशि०)। [३५] सब०—सुभगाथ (कौमुदी)। [३७] प्यास—काम (कौमुदी)।

[१] सिर—मुख (प्रताप०, सर०)।

ब्रह्म रुद्रादि दै देव त्रैलोक के राज को जाइ अभिषेक इंद्रहि करौ।
आजु सिय राम दै लंक कुलदूषनहि, जज्ञ कौं जाइ सर्वज्ञ बिप्रनि बरौ ॥३॥

महोदर—(तारक)

प्रभु सोक तजौ जिय धीर धरौ जू। सक सत्रु बध्यो सु बिचार करौ जू।
कुल मैं अब जीवत जो रहिहै जू। सब सोक-समुद्रहि सो बहिहै जू ॥४॥

मंदोदरी—(अनुकूला)

सोदर जूझ्यो सुत हितकारी। को गहिहै लंकहि गढ़ भारी।
सीतहि दैकै रिपुहि सँघारौ। मोहित है बिक्रम बल भारौ ॥५॥

रावण—(तामरस)

तुम अब सीतहि देहु न देहू। बिनु सुत बंधु धरौं नहिं देहू।
यहि तन जौ तजि लाजहिं रैहौं। बन बसि जाइ सबै दुख सैहौं ॥६॥

मकराक्ष—(भुजंगप्रयात)

कहा कुंभकर्नै कहा इंद्रजीतै। करै सोइबो वै करै जुद्ध भीतै।
सु जौलौं जियौं हौं सदा दास तेरो। सिया को सकै दै सुनौ मंत्र मेरो ॥७॥
महाराज लंका सदा राज कीजै। करौं जुद्ध मेरी बिदा बेगि दीजै।
हतौं राम स्यौं बंधु सुग्रीव मारौं। अजोध्याहि लै राजधानी सुधारौं ॥८॥

बिभीषण—(वसंततिलका)

कोदंड हाथ रघुनाथ सँभारि लीजै। भागे सबै समर जूथप दृष्टि दीजै।
बेटा बलिष्ठ खर को मकराक्ष आयो। संहारकाल जनु काल कराल धायो ॥९॥
सुग्रीव अंगद बली हनुमंन रोक्यो। रोक्यो रह्यो न रघुबीर जहाँ बिलोक्यो।
मार्‍यो बिभीषन गदा उर जोर ठेली। काली समान भुज लक्ष्मन-कंठ मेली ॥१०॥
गाढ़े गहे प्रबल अंगनि अंग भारे। काटे कटैं न बहु भाँतिन काटि हारे।
ब्रह्मा दियो बरहि अस्त्र न सस्त्र लागै। लै ही चल्यो समर सिंहहि जोर जागै ॥११॥
मायांधकार दिबि भूतल लीलि लीन्हो। अस्तास्त मानहुँ ससी कहँ राहु कीन्हो।
हाहादि सब्द सब लोग जहीँ पुकारे। बाढ़े असेष अँग राक्षस के बिदारे ॥१२॥

---

[३] ताप–त्रास (कौमुदी)। बिप्रनि–बिप्रहु (वही)। [४] तारक–तोटक (काशि०, कौमुदी)। जिय–मन (प्रताप०); तन (काशि०)। सक–सत्र (प्रताप०, सर०)। 'काशि०, कौमुदी' मैं तुकांत का 'जू' नहीं है। [५] गढ़०–अधिकारी (दीन० १, सर०)। [६] वै–वा (कौमुदी)। भीतै–जीत्यै (प्रताप०, सर०); रीतै (दीन०)। [७] दै–लै (कौमुदी०)। [८] मेरी–मोकौं (कौमुदी)। सुधारौं–सिधारौं (दीन०, प्रताप०, सर०)। [९] संहार०–संहार-काज (दीन०)। [१०] रह्यो–रुकै (दीन० १)। [१२] मायांधकार–गाढ़ांधकार (प्रताप०, सर०)। मानह०–राहुजुत मानहु चंद्र (प्रताप०, सर०)।

श्रीरामचंद्र पग लागत चित्त हर्षे। देवाधिदेव मिलि सिद्धन पुष्प बर्षे।
मारयो बलिष्ठ मकराक्ष सुबीर भारी। जाके हते रावन रावन गर्वहारी ॥१३॥

(दोहा) जूझतहीं मकराक्ष के रावन अति दुख पाइ।
सत्वर श्रीरघुनाथ पै दियो बसीठ पठाइ ॥१४॥

(मोदक) दूतहि देखतहीं रघुनायक। तापहँ बोलि उठे सुखदायक।
रावन के कुसली सुत सोदर। कारज कौन करै अपने घर ॥१५॥

दूत—(विजय)

पूजि उठे जबहीं सिव कौं तबहीं बिधि सुक्र बृहस्पति आए।
कै बिनती मिस कस्यप के तिन देव अदेव सबै बकसाए।
होम की रीति नई सिखई कछु मंत्र दियो श्रुति लागि सिखाए।
हौं इत कौं पठयो उनकौं उत लै प्रभु मंदिर माँझ सिधाए ॥१६॥

दूत-संदेश

सूपनखा जु बिरूप करी तुम तातैं दियो हमहूँ दुख भारौ।
बारिधि-बंधन कीन्हो हुतो तुम मो सुत बंधन कीन्हो तिहारौ।
होइ जु होनी सु ह्वैई रहै न मिटै जिय कोटि बिचार बिचारौ।
दै भृगुनंदन को परसा रघुनंदन सीतहि लै पगु धारौ ॥१७॥

(दोहा) प्रतिउत्तर दूतहि दियो यह कहि श्रीरघुनाथ।
कहियो रावन होहि जब मंदोदरि के साथ ॥१८॥

रावण—(संयुक्ता)

कहि धौं बिलंब कहा भयो। रघुनाथ पै जबहीं गयो।
केहि भाँति तूँ अवलोकियो। कहु तोहि उत्तर का दियो ॥१९॥

दूत—(दंडक)

भूतल के इंद्र भूमि पौढ़े हुते रामचंद्र मारिच-कनक मृग-छालहि बिछाए जू।
कुंभहर-कुंभकर्ननासाहर-गोद सीस चरन अकंप अक्ष-अरि उर लाए जू।
देवांतक-नारांतक-अंतक त्यौं मुसुकात बिभीषन-बैन तन कानन रुखाए जू।
मेघनाद-मकराक्ष-महोदर-प्रानहर-बान त्यौं बिलोकत परम सुख पाए जू ॥२०॥

राम-संदेश—(विजय)

भूमि दई भुवदेवन कौं भृगुनंदन भूपन सौं बर लैकै।
बामन स्वर्ग दियो मघवै सो बली बलि बाँधि पताल पठैकै।

---

[१३] तीसरा-चौथा चरण 'काशि०, प्रताप०, सर०' में नहीं है। [१४] दुख०—अकुलाइ (कौमुदी)। [१५] पहँ—कहँ (दीन०, प्रताप०, सर०)। [१६] बिधि—बुध (दीन० १)। [१७] तुम—हम (प्रताप०, सर०)। हमहूँ—तुमकौं (वही)। सीतहि०—अवधपुरी (दीन० १)।

संधि की बातन को प्रतिउत्तर आपुन ही कहिये हित कै कै।
दीन्ही है लंक बिभीषन कौं अब देहिं कहा तुमकौं यह दैकै ॥२१॥

मंदोदरी—(मालिनी)

तब सब कहि हारे राम को दूत आयो। अब समुझि परी जो पुत्र भैया जुझायो।
दसमुख सुख जीजै राम सौं हौं लरौं यौं। हरि हर सब हारे देवि दुगा लरी ज्यौं॥२२

रावण—

छल करि पठयो तो पावतो जौ कुठारै। रघुपति बापुरा को धावतो सिंधुपारै।
हति सुरपतिभर्ता बिष्नु माया-बिलासी। सुनहि सुमुखि तोकौं ल्यावता लक्षि दासी २३

(चामर)

प्रौढ़रूढ़ि को समूढ़ गूढ़गेह मैं गयो। सुक्र-मंत्र सोधि सोधि होम कौं जहीं भयो।
बायुपुत्र बालिपुत्र जामवंत धाइयो। लंक मैं निसंक अंक लंकनाथ पाइयो॥२४॥
मत्त दंतिपंक्ति बाजिराजि छोरिकै दई। भाँति भाँति पक्षिराजि भाजि भाजिकै गई
आसने बिछावने बितान तान तूरियो। जत्रतत्र छत्र चारु चौर चारु चूरियो॥२५

(भुजंगप्रयात)

भगीं देखिकै संकि लंकेसबाला। दुरी दौरि मंदोदरी चित्रसाला।
तहाँ दौरि गो बालि को पूत फूल्यो। सबै चित्र की पुत्रिका देखि भूल्यो॥२६॥
गहै दौरि जाकौं तजै ता दिसा कौं। तजै जा दिसा कौं भजै बाम ताकौं।
भले कै निहारी सबै चित्रसारी। लहै सुंदरी क्यौं दरी का बिहारी॥२७॥
तजै दृष्टि कै चित्र की सृष्टि धन्या। हँसी एक ताकौं तहीं देवकन्या।
तहीं हासहीं देवकन्या दिखाई। गही संक लै लंकरानी बताई॥२८॥
सु आनी गहे केस लंकेस-रानी। तमश्री मना सूर-साभानि सानी।
गहे बाँह एँचैं चहूँ ओर ताकौं। मना हंस लीन्हें मृनाली-लता कौं॥२९॥
छुटी कंठमाला लुरैं हार टूटे। खसैं फूल फैलैं लसैं केस छूटे।
फटी कंचुकी किंकिनी चारु छूटी। पुरी काम की सी मना रुद्र लूटी॥३०॥
बिना कंचुकी स्वच्छ बक्षोज राजैं। किधौं साँचहू श्रीफलै साभ साजैं।
किधौं स्वर्न के कुंभ लावन्य-पूरे। बसीकन के चूर्न संपूर्न पूरे॥३१॥
मनो इष्टदेवै सदा इष्ट ही के। किधौं गुच्छ द्वै कामसंजीवनी के।
किधौं चित्त-चौगान के मूल सोहैं। हियँ हेम के हाल गोला बिमोहैं॥३२॥

---

[२३] धावतो०—धाम तौ सिद्ध सारो (दीन० २)। [२४] को—कै (प्रताप०, सर०)। [२५] राजि—छोरि (दीन०)। तूरियो—तारियो (प्रताप०)। छत्र०—चौरैं चारु चूरि डारियो (सर०)। [२८] दृष्टि—देखि (कौमुदी)। सृष्टि—श्रेष्ठ (वही)। कै—कौं (काशि०); हीं—सौं (कौमुदी)। गही—तहाँ (प्रताप०, सर०)। [३०] लुरैं—रुरे (प्रताप०); उरै (सर०)। [३१] चूर्न०—जंत्र हैं पत्र सूरे (दीन० १)। [३२] मनो—किधौं (कौमुदी)।

सुनी लंकरानीन की दीन बानी। तहीँ छाँडि दीन्हो महामौन मानी।
उठ्यो सो गदा लै जदा लंकबासी। गए भागिकै सर्ब साखाबिलासी ॥३३॥

मंदोदरी—(दोहा)

सीतहि दीन्हो दुख बृथा साँचो देखौ आजु।
करै जु जैसी त्यौं लहै कहा रंक कह राजु ॥३४॥

रावण—(विजय)

को बपुरा जो मिल्यो है बिभीषन है कुलदूषन जीवैगो कौ लौं।
कुंभकरन्न मर्‍यो मघवारिपु तौ री कहा, न डरौं जम सौं लौं।
श्रीरघुनाथ के गातनि सुंदरि जानै न तू कुसली तनु तौ लौं।
साल सबै दिगपालन कौं कर रावन के करवाल है जौ लौं ॥३५॥

(चामर)

रावनै चले चले ते धाम धाम तें सबै। साजि साजि साज सूर गाजि गाजिकै तबै।
दीह दुंदुभी अपार भाँति भाँति बाजहीँ। जुद्धभूमि-मध्य क्रुद्ध मत्त दंति गाजहीँ ॥३६

(चंचरी)—इंद्र श्रीरघुनाथ कौं रथहीन भूतल देखिकै।
बेगि सारथि सौं कह्यो रथ साजि जाहि बिसेषि कै।
तून अक्षय बान स्वच्छ अभेद लै तनत्रान कौं।
आइयो रन-भूमि मैं करि अप्रमेय प्रमान कौं ॥३७॥

कोटि भाँतिन पौन तें मन तें महा लघुता लसै।
बैठिकै ध्वजअग्र श्रीहनुमंत अंतक ज्यौं हँसै।
रामचंद्र प्रदक्षिना करि दक्ष है जबहीँ चढ़े।
पुष्प बर्षि बजाइ दुंदुभि देवता बहुधा बढ़े ॥३८॥

राम कौं रथ मध्य देखत क्रोध रावन के बढ़्यो।
बीस बाहुन की सरावलि ब्योम भूतल स्यौं मढ़्यो।
सैल है सिकता गए सब दृष्टि के बल संचरे।
रिक्ष बानर भेदि तक्षन लक्षधा छतना करे ॥३९॥

(सुंदरी)—बानन साथ बिधे सब बानर। जाइ परे मलयाचल की धर।
सूरजमंडल मैं इक रोवत। एक अकासनदी मुख धोवत ॥४०॥

एक गए जमलोक सहे दुख। एक कहैं भव-भूतन सौं सुख।
एक ते सागर माँझ परे मरि। एक गए बड़वानल मैं जरि ॥४१॥

---

[३५] कुसली०—कुसलातन (दीन०, प्रताप०, सर०)। कौं—के (काशि०)। [३६] साज—बान (दीन० १)। [३९] बढ़्यो—चढ़्यो (प्रताप०, सर०)। छतना—छनदा (प्रताप०); दच्छन (सर०)। [४०] बिधे—उड़े (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४१] सुख—रुख (काशि०); दुख (सर०)।

(मोटनक)

श्रीलक्ष्मन कोप कस्यो जबहीँ। छोड़्यो सर पावक को तबहीँ।
जास्यो सरपंजर छार कस्यो। नैरित्यन को अति चित्त डस्यो ॥४२॥
दौरे हनुमंत बली बल स्यौँ। लै अंगद-संग सबै दल स्यौँ।
मानो गिरिराज तजे डर कौँ। घेरे चहुँ ओर पुरंदर कौँ ॥४३॥

(हीरक)

अंगद रन-अंगन सब अंगन मुरझाइकै। रिक्षपतिहि अक्षरिपुहि लक्षगति रिझाइकै
बानरगन बारन सम 'केसव' जबहीँ मुस्यो। रावन दुखदावन जगपावन समुहँ जुस्यो

(ब्रह्मरूप)—इंद्रजीत-जीत आनि रोकियो सु बान तानि।
छोड़ि दीन बीर बान कान के प्रमान आनि।
स्यौँ पताक काटि चाप चर्म बर्म मर्म छेदि।
जात भो रसातलै असेष कंठमाल भेदि ॥४५॥

(दंडक)

सूरज मुसल नील पट्टिस परिघ नल जामवंत असि हनू तोमर प्रहारे हैँ।
परसा सुखेन कुंत केसरी गवय सूल बिभीषन गदा गज भिंदिपाल तारे हैँ।
मोगरा द्विबिद तार कटरा कुमुद नेजा अंगद सिला गवाक्ष बिटप बिदारे हैँ।
अंकुस सरभ चक्र दधिमुख सेष सक्ति बान तीन रावन श्रीरामचंद्र मारे हैँ ॥४६॥

(दोहा)—द्वैभुज श्रीरघुनाथ सौँ बिरचे जुद्ध-बिलास।
बाहु अठारह जूथपनि मारे 'केसवदास' ॥४७॥

(गंगोदक)

जुद्ध जोई जहाँ भाँति जैसी करै ताहि ताही दिसा रोकि राखै तहीँ।
आपने अस्त्र लै सस्त्र काटे सबै ताहि केहूँ कहूँ घाव लागै नहीँ।
दौरि सौमित्र लै बान कोदंड ज्या खंड खंडी ध्वजा धीर छत्रावली।
सैल-सृंगावली छोड़ि मानो उड़ी एक ही बेर कै हंस-बंसावली ॥४८॥

(त्रिभंगी)—लक्ष्मन सुभलक्षन बुद्धिबिचक्षन रावन सौँ रिस छाड़ि दई।
बहु बाननि छंडे जे सिर खंडे ते फिर मंडे सोभ नई।
जद्यपि रन-पंडित गुनगन-मंडित रिपुबल-खंडित भूलि रहे।
तजि मन बच कायक सूरसहायक रघुनायक सौँ बचन कहे ॥४९॥

---

[४५] आनि–तानि (दीन०, प्रताप०, काशि०)। पताक–प्रताप (काशि०, सर०)।
[४६] गवय–गवाक्ष (दीन०, प्रताप०); गवाय (काशि०, सर०)। तारे–टारे (कौमुदी)
[४८] जुद्ध–क्रुद्ध (प्रताप०)। भाँति–जुद्ध (दीन०, प्रताप०, सर०)। ताही–तेही (वही)
ज्या–ज्यौँ (प्रताप०); यौ (सर०)। [४९] रिपुबल–रिपुबपु (दीन०, सर०); अरि
(प्रताप०)।

लक्ष्मण—(लीलावती)

ठाढ़ो रन गाजत केहूँ न भाजत तन मन लाजत सब लायक।
सुनि श्रीरघुनंदन मुनिजनबंदन दुष्टनिकंदन सुखदायक।
अब टरै न टारो मरै न मारो हौं हठि हारो धरि सायक।
रावनहि न मारत देव पुकारत है अति आरत जगनायक ॥५०॥

राम (छप्पय)—जेहि सर मधु-मद मर्दि महा मुर मर्दन कीनो।
मार्‍यो कर्कस नरक संख हति संखहु लीनो।
निष्कंटक सुर-कटक कर्‍यो कैटभ-बपु खंड्यो।
खरदूषन त्रिसिरा कबंध तरुखंड बिहंड्यो।
कुंभकरन जेहि संघर्‍यो पल न प्रतिज्ञा तें टरौं।
तेहि बान प्रान दसकंठ के कंठ दसौ खंडित करौं ॥५१॥

(दोहा)—रघुपति पठयो आसुहीं असुहर बुद्धि-निधान।
दस सिर दसहू दिसन कौं बलि दै आयो बान ॥५२॥

(मदनमनोहर)

भुवभारहि संजुत राकस को गन जाइ रसातल मैं अनुराग्यो।
जग मैं जय सब्द समेतहि 'केसव' राज बिभीषन के सिर जाग्यो।
मयदानवनंदिनि के सुख सौं मिलिकै सिय के हिय को दुख भाग्यो।
सुरदुंदुभि-सीस गजा, सर राम को रावन के सिर साथहि लाग्यो ॥५३॥

मंदोदरी—(विजय)

जीति लिये दिगपाल, सची के उसासनि देवनदी सब सूकी।
बासरहू निसि देवन की नरदेवन की रहै संपति हूकी।
तीनहु लोकन की तरुनीन की बारी बँधी हुती दंड दुदू की।
सेवत स्वान सियार सो रावन सोवत सेज परे अब भू की ॥५४॥

राम—(तारक)

अब जाहु विभीषन रावन लैकै। सकलत्र सबंधु क्रिया सब कैकै।
जन सेवक संपति कोस सँभारौ। मयनंदिनि के सिगरे दुख टारौ ॥५५॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायां श्रीमदिंद्रजिद्विरचितायां रावणवधवर्णनं नामैकोनविंशः प्रकाशः ॥१६॥

---

[५०] केहूँ—नेकु (प्रताप०); क्यौंहूँ (सर०)। अब—सो (प्रताप०; सर०)। [५३] सिर—उर (दीन०, प्रताप०, सर०)। [५४] हूकी—हूकी (कौमुदी)। दुदू—दुहू (प्रताप०, सर); हि दू (कौमुदी)। अब—भव (दीन०, प्रताप०, सर०)। [५५] सिगरे०—दुख दीरघ (दीन० १)।

२०

श्रीराम—(तारक)

जय जाइ कहौ हनुमंत हमारो। सुख दै बहु, दीरघ दुक्ख बिदारो।
सब भूषन भूषित कै सुभगीता। हमकौं तुम बेगि दिखावहु सीता ॥१॥
हनुमंत गए तहहीँ जहँ सीता। अरु जाइ कही जय की सब गीता।
पग लागि कह्यो जननी पगु धारो। मग चाहत हैं रघुनाथ तिहारो ॥२॥
सिगरे तन भूषन भूषित कीने। धरिकै कुसुमावलि अंग नवीने।
द्विजदेवन बंदि पढ़ी सुभ गीता। तब पावक-अंक चली चढ़ि सीता ॥३॥

(भुजंगप्रयात)

सबक्षा सबै अंग सिंगार सोहैं। बिलोके रमा देव देवी बिमोहैं।
पिता-अंक ज्यौं कन्यका सुभ्रगीता। लसै अग्नि के अंक त्यौं सुद्ध सीता ॥४॥
महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी। कि संग्राम की भूमि मैं चंडिका सी।
मनो रत्नसिंहासनस्था सची है। किधौं रागिनी राग पूरे रची है ॥५॥
गिरापूर मैं है पयोदेवता सी। किधौं कंज की मंजु सोभा प्रकासी।
किधौं पद्म ही मैं सिफाकंद सोहै। किधौं पद्म के कोष पद्मा बिमोहै ॥६॥
कि सिंदूर-सैलाग्र मैं सिद्ध-कन्या। किधौं पद्मिनी सूरसंजुक्त धन्या।
सरोजासना है मनो चारु बानी। जपा-पुष्प के बीच बैठी भवानी ॥७॥
मनो ओषधी-बृंद मैं रोहिनी सी। कि दिग्दाह मैं देखिये जागिनी सी।
धरा-पुत्र ज्यौं स्वर्नमाला प्रकासै। मनिज्योति सी तक्षकाभोग भासै ॥८॥

(उपजातिवज्रा)

आसावरी मानिककुंभ सोभै, असोकलग्ना बन-देवता सी।
पलासमाला-कुसुमालिमध्ये, बसंतलक्ष्मी सुभलक्षना सी ॥९॥
आरक्तपत्रा सुभ चित्रपुत्री, मनो बिराजै अति चारुबेषा।
संपूर्न - सिंदूर - प्रभास कैधौं, गनेसभालस्थल - चंद्ररेखा ॥१०॥

(विजय)—है मनिदर्पन मैं प्रतिबिंब कि प्रीति हिये अनुरक्त अभीता।
पुंज-प्रताप मैं कीरति सी तप-तेजन मैं मनु सिद्धि बिनीता।

---

[१] दिखावहु—मिलावहु (दीन० १)। [२] तहहीँ—तबहीँ (दीन० २, प्रताप०, सर०)। मग—मुख (दीन० १); मन (दीन० २)। तिहारो—निहारो (दीन० १)। [३] कुसुमावलि—पुनि अंबर (दीन० २)। [४] कन्यका—पुत्रिका (दीन० २)। [७] सैलाग्र—के ग्राम (दीन० २)। चारु—देव (प्रताप०, सर०)। बीच—पीठ (दीन०, सर०)। [८] मनो—किधौं (कौमुदी)। मनि०—किधौं ज्योति (कौमुदी); मनो···(सर०)। [१०] पत्रा—पट्टे (प्रताप०, सर०)। प्रभास०—प्रभा बसै धौं (कौमुदी)।

ज्यौं रघुनाथ तिहारिय भक्ति लसै उर 'केसव' के सुभगीता।
त्यौं अवलोकिय आनँदकंद हुतासन-मध्य सबासन सीता ॥११॥

(दोहा)—इंद्र-बरुन-जम-सिद्ध सब धर्मसहित धनपाल।
ब्रह्म-रुद्र लै दसरथहि, आइ गए तेहि काल ॥१२॥

अग्नि—(वसंततिलक)

श्रीरामचंद्र यह संतत सुद्ध सीता। ब्रह्मादि देव सब गावत सुभ्रगीता।
ह्वूजै कृपाल गहिजै जनकात्मजा या। जोगीस-ईस तुम हौ यह जोगमाया ॥१३॥

श्रीरामचंद्र हँसि अंक लगाइ लीनी। संसार साक्षि सुभ पावक आनि दीनी।
देवानि दुंदुभि बजाइ सुगीत गाए। त्रैलोक-लोचन-चकोरनि चित्त भाए ॥१४॥

ब्रह्मा (दोधक)—राम सदा तुम अंतरजामी। लोक चतुर्दस के अभिरामी।
निर्गुन एक तुम्हैं जग जानै। एक सदा गुनवंत बखानै ॥१५॥

ज्योति जगै जग-मध्य तिहारी। जाइ कही न सुनी न निहारी।
कोउ कहै परिमान न ताको। आदि न अंत न रूप न जाको ॥१६

(तारक)—तुमहीं गुनरूप गुनी तुम ठाए। तुम एक तेँ रूप अनेक बनाए।
इक है जो रजोगुन रूप तिहारो। तेहि सृष्टि रची बिधि नाम बिहारो ॥१७

गुन सत्व धरे तुम रक्षत जाकौं। अब बिष्नु कहै सिगरो जग ताकौं।
तुमहीं जग रुद्रसरूप सँघारो। कहिये तिन मध्य तमोगुन भारो ॥१८॥

तुमहीं जग हौ जग है तुमहीं मँ। तुमहीं बिरची मरजाद दुनी मँ।
मरजादहिं छोड़त जानत जाकौं। तबहीं अवतार धरौ तुम ताकौं ॥१९॥

तुम मीन ह्वै बेदन कौं उधरो जू। तुमहीं धर-कच्छप बेष धरो जू।
तुमहीं जग जज्ञ-बराह भए जू। छिति छीनि लई हिरनाछ हए जू ॥२०॥

तुमहीं नरसिंह को रूप सँवार्‌यो। प्रहलाद को दीरघ दुक्ख बिदार्‌यो।
तुमहीं बलि बावन-बेष छल्यो जू। भृगुनंदन ह्वै छितिछत्र दल्यो जू ॥२१॥

तुमहीं यह रावन दुष्ट सँघार्‌यो। धरनी महँ बूड़त धर्म उबार्‌यो।
तुमहीं पुनि कृष्न को रूप धरौगे। हति दुष्टन कौं भुवभार हरौगे ॥२२॥

---

[११] भक्ति—ज्योति (दीन० १)। मध्य—अंक (दीन० १)। [१२] जम०—मुनि सिद्ध जन (दीन०, प्रताप०, सर०)। तेहि—तत (दीन० १)। [१३] यह—जय (दीन० २)। [१४] अंक—कंठ (दीन०)। लीनी—लीन्हो (काशि०, कौमुदी)। दीनी—दीन्हो (वही)। [१६] रूप—मध्य (दीन०)। [१७] तेहि—जिहि (प्रताप०); अति (सर०)। बिधि—बहु (दीन०, सर०)। [१८] तिन—तेहि (कौमुदी); जिहि (प्रताप०); जिन (सर०)। [१९] दुनी—मही (दीन०, प्रताप०); सुनी (सर०)। [२०] छिति—धर (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२२] को रूप—स्वरूप (दीन०, प्रताप०, सर०)।

तुम बौध-सरूप दयाहि धरौगे। पुनि कल्कि ह्वै म्लेच्छसमूह हरौगे।
यहि भाँति अनेक सरूप तिहारे। अपनी मरजाद के काज सँवारे ॥२३॥

महादेव—(पंकजवाटिका)

श्रीरघुबर तुम हौ जगनायक। देखहु दसरथ कौं सुखदायक।
सोदर सहित पिता-पद पावन। बंदन किय तबहीं मन-भावन ॥२४॥

दशरथ—(निशिपालिका)

राम सुत धर्मजुत सीय मन मानिये। बंधुजन मातुगन प्रान सम जानिये।
ईस सुर-ईस जगदीस सम देखिये। राम कहँ लक्ष्मन बिसेष प्रभु लेखिये ॥२५॥

श्रीराम (चंचला)—जूझि जूझिकै गए जे बानरालि रिक्षराजि।
कुंभकर्न लोहहर्न भक्षियो जे गाजि गाजि।
रूप-रेख स्यौं बिसेषि जी उठैं करौ सु आज।
आनि पाइँ लागियो तिन्हैं समेत देवराज ॥२६॥

(दोहा)—बानर-राक्षस-रिक्ष सब, मित्र-कलत्र समेत।
पुष्पक चढ़ि रघुनाथजू, चले अवधि के हेत ॥२७॥

(चंचरी)—सेतु सीतहि सोभना दरसाइ पंचबटी गए।
पाइँ लागि अगस्ति के पुनि अत्रि पै ति बिदा भए।
चित्रकूट बिलोकिकै तबहीं प्रयाग बिलोकियो।
भारद्वाज बसैं जहाँ जिनतैं न पावन है बियो ॥२८॥

राम—(तारक)

चिलकै द्युति सूछम सोभति बारू। तनु ह्वै जनु सेवत हैं सुर चारू।
प्रतिबिंबित दीप दिपैं जल माहीं। जनु ज्वालमुखीन के जाल नहाहीं ॥२९॥
जल की द्युति पीत सितासित सोहै। बहु पातक-घात करै इक को है।
मद-एन मलै घसि कुंकुम नीको। नृप भारतखंड दियो जनु टीको ॥३०॥

---

[२३] सँवारे—सुधारे (दीन०, प्रताप०)। [२७] मित्र—पुत्र (प्रताप०, सर०)। [२८] पै—यौ (कौमुदी)। [३०] बहु—अति (कौमुदी)। इक—जग (वही)। इसके अनंतर 'दीन० १' और 'प्रताप०' में ये छंद अधिक हैं—

गज देवनदी महँ क्रीड़त देखौ। अति सुंदर स्यामल रूप बिसेषौ।
सुभ-सोभन चौसर सेत मनी को। जनु उत्तम गुच्छ बन्यो तुलसी को ॥
मुकुतामय हार बिराजत है बर। मनि स्यामल सै जनु रूप मनोहर।
सुभ मालती चौसर मैं जनु सोभन। अलिराज बस्यो ज्यौं सुगंध के लोभन ॥
सिवसैल-सिला अति दीरघ सोभनि। जनु सोभत ता पर सोभ भस्यो सनि।
अति नारद को उर उज्जल सोभनु। हरि तामहँ स्यामसरीर बस्यो जनु ॥

लक्ष्मण—(दंडक)

चतुरबदन पंचबदन षटबदन, सहसबदनहूँ सहस गति गाई है।
सात लोक सात द्वीप सातहु रसातलन गंगाजू की सोभा सब ही कौं सुखदाई है।
जमुना को जल रह्यो फैलि कै प्रबाह पर 'केसोदास' बीच बीच गिरा की गोराई है।
सोभन सरीर पर कुंकुम बिलेपन कै स्यामल दुकूल भीन झलकति झाई है ॥३१॥

सुग्रीव—(चंद्रकला)

भवसागर की जनु सेतु उजागर सुंदरता सिगरी बस की।
तिहुँ देवन की दुति सी दरसै गति सोषै त्रिदोषन के रस की।
कहि 'केसव' बेदत्रयी मति सी परितापत्रयी तल कौं मसकी।
सब बंदैं त्रिकाल त्रिलोक त्रिबेनिहि केतु त्रिबिक्रम के जस की ॥३२॥

बिभीषण—(दंडक)

भूतल की बेनी सी त्रिबेनी सुभ सोभजति एकै कहैं सुरपुर-मारग बिभात है।
एकै कहैं पूरन अनादि जो अनंत कोऊ ताको यह 'केसोदास' द्रवरूप गात है।
सब सुखकर सब सोभाकर मेरे जान कीनो यह अद्भुत सुगंध अवदात है।
दरस-परसहूँ तें थिर चर जीवन को कोटि कोटि जन्म की कुगंध मिटि जात है ॥३३

(भुजंगप्रयात)

भरद्वाज की बाटिका राम देखी। महादेव की सी बनी चित्त लेखी।
सबै बृक्ष मंदारहूँ तें भले हैं। छहूँ काल के फूल फूले फले हैं ॥३४॥

कहूँ हंसिनी हंस स्यौं चित्त चोरैं। चुनैं ओस के बुंद मुक्तानि भोरैं।
सुकाली कहूँ सारिकाली बिराजैं। पढ़ैं बेदमंत्रावली भेद साजैं ॥३५॥

कहूँ बृक्षमूलस्थली तोय पीवैं। महामत्त मातंग सीमा न छीवैं।
कहूँ बिप्र-पूजा कहूँ देव-अर्चा। कहूँ जोग-शिक्षा कहूँ बेद-चर्चा ॥३६॥

कहूँ साधु पौरानकी गाथ गावैं। कहूँ जज्ञ की सुभ्र साला बनावैं।
कहूँ होम-मंत्रादि के धर्म धारैं। कहूँ बैठिकै ब्रह्मबिद्या बिचारैं ॥३७॥

सुवाई जहाँ देखियै बक्त्ररागी। चलै पिप्पलै तिक्ष बुध्यै सभागी।
कँपै श्रीफलै-पत्र हैं जत्र नीके। सुरामानुरागी सबै राम ही के ॥३८॥

जहाँ बारिदै बृंद बाजानि साजैं। मयूरै जहाँ नृत्यकारी बिराजैं।
भरद्वाज बैठे तहाँ बिप्र मोहैं। मनो एक ही बक्त्र लोकेस सोहैं ॥३९॥

---

[३२] सोषै—सोवै (प्रताप०); सोभै (सर०)। [३३] हूँ—ही (प्रताप०, कौमुदी)। [३५] भेद—सोभ (दीन० १) [३७] होम०—अग्नि होमादि (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३८] पत्र—सक्ति (दीन०, सर०)। [३९] जहाँ नृत्य—महा नृत्य (प्रताप०, सर०)। हीं बक्त्र—हीं चक्र (दीन० १); बानास (दीन० २)।

लक्ष्मण—(दंडक)

'केसोदास' मृगज-बछेरू चोषै बाघनीन चाटत सुरभि बाघबालकबदन है।
सिंहन की सटा ऐंचै कलभ करनि करि सिंहन को आसन गयंद को रदन है।
फनी के फनन पर नाचत मुदित मोर क्रोध न बिरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसनि सिव को समाज कैधौं रिषि को सदन है ॥४०॥

(भुजंगप्रयात)

जहाँ कोमलै बल्कलै बास सोहैं। जिन्हैं अल्पधी कल्पसाखी बिमोहैं।
धरे सृंखला दुख्ख दाहैं दुरंतै। मनौ संभुजू संग लीन्हैं अनंतै ॥४१॥

(मालिनी)

प्रसमितरज राजैं हर्ष बर्षा-समै से। बिरलजटन साखी स्वर्नदीकूल कैसे।
जगमग दरसाई सूर के अंसु ऐसे। सुरग-नरक-हंता नाम श्रीराम कैसे ॥४२॥

(भुजंगप्रयात)

गहे केसपासै प्रिया सी बखानो। कँपै साप के त्रास तें गात मानो।
मनो चंद्रमा चंद्रिका चारु साजै। जरा सों मिले यों भरद्वाज राजै ॥४३॥

(दोहा)—भस्म त्रिपुंडक सोभिजै, बरनत बुद्धिउदार।
मनो त्रिसोता-स्रोत-दुति बंदत लगी लिलार ॥४४॥

(भुजंगप्रयात)

मनो अंकुराली लसै सत्य की सी। किधौं बेदबिद्या-प्रभाई भ्रमी सी।
रमै गंग की जोति ज्यों जन्हु नीकी। बिराजै सदा सोभ दंतावली की ॥४५॥

(गीतिका)—भ्रकुटी बिराजति स्वेत मानहु मंत्र अद्भुत साम के।
जिनके बिलोकतहीं बिलात असेष कार्मुक काम के।
मुखबास-आस प्रकास 'केसव' भौंर भीरन साजहीं।
जनु साम के सुभ स्वच्छ अक्षर द्वै सपक्ष बिराजहीं ॥४६॥

तनु कंबु-कंठ त्रिरेख राजति रज्जु सी उनमानिये।
अबिनीत इंद्रियनिग्रही तिनके निबंधन जानिये।

---

[४०] सिव०—रिषि को निवास कैधौं सिव (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४१] जिन्हैं—सबै (प्रताप०, सर०)। [४४] सोभिजै—सोभ सुभ (दीन० १, प्रताप०, सर०)। बरनत—केसव (दीन० १)। [४५] प्रभाई—भ्रमाई (प्रताप०, सर०)। रमै—बनी (दीन० १); बसै (सर०)। जोति—सोभ (दीन०, प्रताप०, सर०)। सोभ—ज्योति (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४६] कार्मुक०—कर्म कुकाम (दीन० १); कर्म कुबाम (दीन० २); कर्मज काम (काशि०); कर्म अकाम (प्रताप०); कर्म बिकाम (सर०)।

उपबीत उज्जल सोभिजै उर देखि यौं बरनैं सबै।
सुरआपगा तपसिंधु मैं जनु सेत श्री दरसै अबै ॥४७॥

(दोहा)—फटिकमाल सुभ सोभिजै उर-रिषिराज उदार।
अमल सकल श्रति-बरनमय मनो गिरा को हार ॥४८॥

[सुं]दरी)—जद्यपि है रसरूप रस्यो तनु। दंडहि सौं अवलंबित है मनु।
धूमसिखान के ब्याज मनो गुनि। देवपुरी कहँ पंथ रच्यो मुनि ॥४९॥
रूप धरे बड़वानल को जनु। पोषत हैं पयपानहिं सौं तनु।
क्रोध-भुजंगम-मंत्र बखानहु। मोह-महातम को रबि मानहु ॥५०॥
सत्य-सखा असखा कलि के जनु। पर्वत-ओषधि सिद्धिन के मनु।
पाप-कलापन के दिनदूषन। देखि प्रनाम कियो जगभूषन ॥५१॥

[पद्ध]टिका)—सीता-समेत सेषावतार। दंडवत किये रिषि के अपार।
नरभेष बिभीषन जामवंत। सुग्रीव बालिसुत हनूमंत ॥५२॥

रिषिराज करी पूजा अपार। पुनि कुसलप्रस्न पूँछी उदार।
राम—सत्रुघ्न भरथ कुसली निकेत। सब मित्र मंत्रि मातनि समेत ॥५३॥

भरद्वाज—कहि कुसल कहौं तुम आदिदेव। सब जानत हौ संसारभेव।
बिधि बिष्नु संभु रबि ससि उदार। सब पावकादि अंसावतार ॥५४॥
ब्रह्मादि सकल परमानु अंत। तुमहीं हौ रघुपति अज अनंत।
अब सकल दान दै पूजि बिप्र। पुनि करहु बिजै बैकुंठ क्षिप्र ॥५५॥

[इ]ति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामस्य भरद्वाजाश्रमगमनन्नाम बिंशः प्रकाशः ॥२०॥

२१

श्रीराम—(सोमराजी)

कहा दान दीजै। सु कै भाँति कीजै।
जहाँ होइ जैसो। कहौ बिप्र तैसो ॥१॥

भरद्वाज—(दोहा)

सात्विक राजस तामसी दान तीनि बिधि जानि।
उत्तम मध्यम अधम पुनि 'केसवदास' बखानि ॥२॥

---

[४७] बरनैं—बरन (प्रताप०, सर०); बरनौं (कौमुदी)। जनु—जस (कौमुदी)। रूप—सत्य (कौमुदी)। [५०] पानहि०—पाननहीं (प्रताप०, सर०)। मनु—गनु। [५१] कियो—करे (प्रताप०, सर०)। [५५] तुमहीं०—सब तुमहीं हौ रघुपति [प्र]ताप०); तुमहीं हौ श्रीरघुपति अनंत (सर०)। अज—अति (काशि०)।

(चंचरी)—पूजियै द्विज आपने कर नारिसंजुत जानियै।
देवदेवहि थापिकै पुनि बेदमंत्र बखानियै।
हाथ लै कुस गोत उच्चरि स्वर्नजुक्त प्रमानियै।
दान दै कछु और दीजहि दान सात्विक जानियै ॥३॥

(दोधक)—देहि नहीँ अपने कर दानै। और के हाथ जु मंगल जानै।
दानहि देत जु आलस आवै। सो वह राजस दान कहावै ॥४॥

(गोपाल)—बिप्रन दीजत हीनबिधान। जानहु ताकहँ तामस दान।
बिप्रन जानहु जू जगरूप। जानहु सिगरे बिष्नुस्वरूप ॥५॥

(तोमर)—द्विजधाम देइ जु जाइ। बहु भाँति पूजि सुराइ।
कछु नाहिनै परिमान। कहियै सु उत्तम दान ॥६॥
द्विज कौँ जु देइ बुलाइ। कहियै सु मध्यम राइ।
गुनि जाचना-मिस दानु। अति हीन ताकहँ जानु ॥७॥

(दोहा)—प्रतिदिन दीजत नेम सौँ ताकहँ नित्य बखान।
कालहि पाइ जु दीजियै सो नैमित्तिक दान ॥८॥

(तोटक)—पहिले निजवर्तिन देहु अबै। पुनि पावहिँ नागर लोग सबै।
पुनि देहु सबै निज देसिन कौँ। उबर्यो धन देहु बिदेसिन कौँ ॥९॥
दान सकाम अकाम कहे हैँ। पूरि सबै जग माँझ रहे हैँ।
इच्छतहीँ फल होत सकामै। रामनिमित्त ते जानि अकामै ॥१०॥

---

[३] दीजहि–दीजै (प्रताप०, सर०)। [४] जु–सो (दीन० १)। [५] बिधान–बिधानै (काशि०, कौमुदी)। दान–दानै (वही)। बिप्रन०–बिप्रन जानहु जै जगरूपै (काशि०); बिप्रन जानहु ये नररूपै (कौमुदी)। जानहु–देखहु (दीन०, प्रताप०)। सिगरे–ये सब (काशि०, कौमुदी)। स्वरूप–स्वरूपै (वही)। इसके अनंतर दीन०, प्रताप०, काशि०, सर० म यह श्लोक भी है—

सदाचारो वा निराचारो साधुर्वासाधुरेव च। अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः ॥

[६] देइ०–देत जु (प्रताप०); देहि जो (काशि०); दीजतु (सर०)। जाइ–धाइ (दीन० १)। [७] जु०–जु देत (प्रताप०, सर०); जे देत (काशि०)। कहियै–सुनियै (प्रताप०, सर०)। इसके अनंतर दीन०, प्रताप०, काशि०, सर० मैँ यह श्लोक भी है—

अभिगम्योत्तमं दानमाहूतं चैव मध्यमम्। अधमं याच्यमानं स्यात्सेवादानं तु निष्फलम् ॥

[८] दीजियै–देत हैँ (प्रताप०, सर०)। इसके बाद दीन०, प्रताप०, काशि०, सर० मैँ यह श्लोक है—

आश्रितं साधुकर्माणं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत्। तस्य पुण्यचयोऽप्याशु क्षयं याति न संशयः ॥

[१०] इच्छतहीँ–इच्छित ही (काशि०, कौमुदी)। ते०–सखा निहकामहि (दीन० १); बखानि···(प्रताप); बखानु··· (सर०)।

दान ते दक्षिन बाम बखानौ। धर्मनिमित्त ते दक्षिन जानौ।
धर्मबिरुद्ध ते बाम गुनौ जू। दान कुदान सबै ते सुनौ जू ॥११॥

देहि सुदान ते उत्तम लेखौ। देहि कुदान तिन्हैं जिनि देखौ।
छोड़ि सबै दिन दानहि दीजै। दानहि तैं सबके मत लीजै ॥१२॥

(दोहा)—'केसव' दान अनंत हैं, बनैं न काहू देत।
यहै जानि भुवभूप सब भूमिदान ही देत ॥१३॥

राम—कौनहि दीजै दान भुव, हैं रिषिराज अनेक।
भरद्वाज—देहु सनाढ्यन आदि दै आछ सहित बिबेक ॥१४॥

राम—(उपेंद्रवज्रा)

कहौ भरद्वाज सनाढ्य को हैं। भए कहाँ तें सब मध्य सोहैं।
हुते सबै बिप्र प्रभाव-भीने। तजे ते क्यौं ये अति पूज्य कीने ॥१५॥

भरद्वाज—

गिरीस नारायन पै सुनी ज्यौं। गिरीस मोसौं जु कही कहौं त्यौं।
सुनौ सु सीतापति साधु चर्चा। करी सु जातें तुम ब्रह्म-अर्चा ॥१६॥

नारायण—(मोटनक)

मोतें जल नाभि-सरोज बढ़्यो। ऊँचो अति उग्र अकास चढ़्यो।
तातें चतुरानन-रूप-रयो। ब्रह्मा यह नाम प्रगट्ट भयो ॥१७॥

ताके मन तें सुत चारि भए। सोहैं अति पावन बेदमए।
चौहूँ जन के मन तें उपजे। भूदेव सनाढ्य ते मोहिं भजे ॥१८॥

---

[११] दान कुदान०—बहुरो सब दान कुदान सुनौ जू (दीन० १); आरस दान कुदान सुनौ जू (दीन० २)। [१२]। दिन–नित (दीन० १)। ते सबके–ते बसकै (दीन०, कौमुदी); केसव कै (प्रताप०)। मत–तुम (दीन० २, प्रताप०)। [१३] ही–कहँ (प्रताप०); हू (सर०)। इसके अनंतर 'दीन०, प्रताप०, काशि०, सर०' में ये श्लोक हैं—

यत्किंचित्कुरुते पापं ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा। अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्ध्यति॥
सप्तहस्तेन दंडेन त्रिंशद्दंडैर्निवर्तनम्। दश तान्येव गोचर्म दत्वा स्वर्गे महीयते॥
अन्यायेन हृता भूमिर्यैर्न रैरपहारिता। हरन्तो हारयन्तश्च हन्यन्ते सप्तमं कुलम्॥

[१६] करी–करो (कौमुदी)। [१७] तातें–तामें (प्रताप०, सर०)। [१८] 'दीन०, प्रताप०, काशि०' में ये दो चरण अधिक हैं—

दीन्हो तुमहीं तिन जो द्विज जू। ह्वैहै तुम ब्रह्म पुरोहित जू।

भरद्वाज—(गौरी)

तातें रिषिराज सबै तुम छाँडौ। भूदेव सनाढ्यन के पद माँडौ।
दीन्हो तुमहीं तिनकौं बर रूरे। चौहूँ जुग होहु तपोबल पूरे ॥१६।

(उपेंद्रवज्रा)

सनाढ्य-पूजा अघ-ओघहारी। अखंड आखंडल-लोक-धारी।
असेष लोकावधि-भूमिचारी। समूल नासै नृप दोष-कारी ॥२०॥

राम—(तोटक)

हनुमंत बली तुम जाहु तहाँ। मुनिबेष भरथ्थ बसंत जहाँ।
रिषि के हम भोजन आजु करैं। पुनि प्रात भरथ्थहिं अंक भरैं ॥२१॥

(चतुष्पदी)—हनुमंत बिलोके भरथ ससोके अंग सकल मलधारी।
बकला पहिरे तन सीस जटागन हैं फल-मूल-अहारी।
बहु मंत्रिन गन मैं राजकाज मैं सब सुख सौं हित तोरे।
रघुनाथ-पादुकनि, मन बच प्रभु गनि सेवत अंजुलि जोरे ॥२२॥

हनुमान—(चतुष्पदी)

सब सोकनि छाँडौ, भूषन माँडौ, कीजै बिबिध बधाए।
सुरकाज सँवारे, रावन मारे, रघुनंदन घर आए।
सुग्रीव सुजोधन, सहित बिभीषन, सुनहु भरथ सुभगीता।
जय कीरति ज्यौं सँग अमल सकल अँग सोहत लक्ष्मन सीता ॥२३॥

(पद्धटिका)

सुनि परम भावती भरथ बात। भए सुखसमुद्र मैं मगनगात।
यह सत्य किधौं कछु स्वप्न ईस। अब कहा कहौ मोसन कपीस ॥२४॥

जैसे चकोर लीलै अँगार। तेहि भूलि जात सिगरी सँभार।
जी उठत उवत ज्यौं उदधिनंद। त्यौं भरथ भए सुनि रामचंद ॥२५॥

ज्यौं सोइ रहत सब सूरहीन। अति ह्वै अचेत जद्यपि प्रबीन।
ज्यौं उवत उठत हँसि करत भोग। त्यौं रामचंद्र सुनि अवध-लोग ॥२६॥

---

[१६] होहु–होत (प्रताप०, सर०); होय (कौमुदी)। [२०] असेष०–असेष धाँ ध्यावहिं आदि चारी (प्रताप०); अशेष अद्यावधि··· (सर०)। [२१] प्रात–कालि (दीन० २)। [२२] हैं–तन (दीन० १); प्रन (दीन० २)। सुख–ही (दीन०, प्रताप०); हित–त्रिन (प्रताप०, सर०)। प्रभु–क्रम (दीन० २)। बच–तन (काशि०, सर०)। गनि–करि (वही)। [२६] अति०–ह्वैकै (दीन०, सर०)।

(मालिनी)

जहँ तहँ गज गाजैं दुंदुभी दीह बाजैं। बहुबरन पताका स्यंदनास्वादि राजैं।
भरथ सकल सेना-मध्य यौं बेष कीन्हे। सुरपति जनु आए मेघमालानि लीन्हे ॥२७॥
सकल नगरबासी भिन्न सेनानि साजैं। रथ सुगज पताका झुंडझुंडानि राजैं।
थल थल सब सोभैं सुभ्र सोभानि छाई। रघुपति सुनि मानौ औधि सी आज आई २८

(चामर)

जत्र तत्र दास ईस ब्योम तें बिलोकहीं। बानरालि रीछराजि दृष्टि-सृष्टि रोकहीं।
ज्यौं चकोर मेघओघ-मध्य चंद्रलेखहीं। भानु के समान जान त्यौं बिमान देखहीं २९

(मदनमनोहर दंडक)

आवत बिलोकि रघुबीर लघु बीर तजि ब्योमगति भूतल बिमान तब आइयो।
रामपद-पद्म सुखसद्म कहँ बंधु जुग दौरि तब षट्पद समान सुख पाइयो।
चूमि मुख सूँघि सिर अंक रघुनाथ धरि अश्रुजल लोचननि देखि उर लाइयो।
देव मुनि बृद्ध परसिद्ध सब सिद्धजन हर्षि तन पुष्प-बरषानि बरषाइयो ॥३०॥

(दोहा)—भरथ-चरन लक्ष्मन परे लक्ष्मन के सत्रुघ्न।
सीता-पग लागत दियो आसिष सुभ सत्रुघ्न ॥३१॥

मिले भरथ अरु सत्रुहन सुग्रीवहिं अकुलाइ।
बहुरि बिभीषन कौं मिले अंगद कौं सुख पाइ ॥३२॥

(आभीर)—जामवंत, नल, नील। मिले भरथ सुभसील।
गवय, गवाक्ष, गयंद। कबिकुल सब सुखकंद ॥३३॥

रिषि बसिष्ठ कहँ देखि। जनम सफल करि लेखि।
राम परे उठि पाइ। लछिमन सहित सुभाइ ॥३४॥

(दोहा)—लै सुग्रीव बिभीषनहि करि करि बिनय अनंत।
पाइन परे बसिष्ठ के कपिकुल बल-बुधिवंत ॥३५॥

राम—(पद्धटिका)

सुनिजै बसिष्ठ कुलइष्टदेव। इन कपिनायक के सकल भेव।
हम बूड़त हे बिपदा-समुद्र। इन राखि लियो संग्रामरुद्र ॥३६॥
सब आसमुद्र की भू सोधाइ। तब दई जनकतनया बताइ।
निजु भाइ भरथ ज्यौं दुक्खहर्न। अति समर अमर हत्यो कुंभकर्न ॥३७॥

---

[२७] स्यंदना०—स्यंदनस्था (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२८] सुगज—गजस (प्रताप०); गजनि (सर०)। सी—की (प्रताप०); औ (सर०)। आज—आयु (प्रताप०); आपु (सर०)। [२९] तें—त्यौं (कौमुदी)। [३०] देखि—पेखि (कौमुदी)। तन—सब (दीन० २)। [३५] लै नल (दीन० २)।

इन हरे बिभीषन सकल सूल। मन मानत हौं सत्रुघ्न-तूल।
दसकंठ हनत सब देव साखि। इन लए एक हनुमंत राखि ॥३८॥
तजि तिय सुत सोदर बंधु ईस। मिले हमहिं काय मन बच रिषीस।
दइ मीचु इंद्रजित की बताइ। अरु मंत्र जपत रावन दिखाइ ॥३९॥

श्रीराम—(तोटक)

इन अंगद सत्रु अनेक हने। हम हेतु सहे दिन दुक्ख घने।
बहु रावन कौं सिख दै दुख दै। फिरि आए भले सिरभूषन लै ॥४०॥

दसकंध की जाइ जु गूढ़थली। तिनके तन सौं बहु भाँति दली।
महि मैं मय की तनया करषी। मति मारि अकंपन कौं हरषी ॥४१॥

(दोहा)—माखो मैं अपराध बिन इनको पितु गुनग्राम।
मनसा बाचा कर्मना कीन्हे मेरे काम ॥४२॥

(गीतिका)—इन जामवंत अनंत राक्षस लक्ष लक्षन ही हने।
मृगराज ज्यौं बनराज मैं गजराज मारत ना गने।
बलभावना-बलवान कोटिक रावनादिक हारहीं।
चढ़ि ब्योम दीह बिमान देवदिवान आनि निहारहीं ॥४३॥

(दोहा)—करौ न करिहै करत अब कोऊ ऐसो कर्म।
जैसो बाँध्यो नल उपल जलनिधि सेतु सधर्म ॥४४॥

(गीतिका)—हनुमंत ये जिन मित्रता रबिपुत्र सौं हम सौं करी।
जलजाल कालकराल-माल उफाल पार धरा धरी।
निरसंक लंक निहारि रावन धाम धामनि धाइयो।
इक बाटिका तरुमूल सीतहिं देखिकै दुख पाइयो ॥४५॥

तरु तोरि डारि प्रहारि किंकर मंत्रि-पुत्र सँघारियो।
रन मारि अक्षकुमार रावन गर्ब सौं पुर जारियो।
पुनि सौंपि सीतहिं मुद्रिका, मनि सीस की जब पाइयो।
बलवंत नाँघि अनंत सागर तैसही फिरि आइयो ॥४६॥

---

[३८] दसकंठ—दसकंध (प्रताप०, सर०)। [४०] सिख—दुख (दीन०)। दुख दै—सुखदै (दीन० २, कौमुदी); सुख लै (दीन० १)। [४१] जु—कै (कौमुदी); जय (सर०)। तिनके०—तनिकै तिन सी बहुभीर (कौमुदी)। [४३] मारत—गाजत (दीन० २)। ना गने—नीगने (कौमुदी)। देव०—देवीदेव आनि (प्रताप०)। [४४] करो—करै (पताप०, काशि०, सर०)। सधर्म—समर्म (काशि०); सुधर्म (कौमुदी)। [४५] जल—उप (दीन० २)। माल—ब्याल (प्रताप०); बाल (दीन०, सर०)। [४६] डारि—झारि मारि (सर०)। फिरि—तब (प्रताप०, सर०)।

दसकंठ देखि बिभीषनै रन ब्रह्मसक्ति चलाइयो।
करि पीठि त्यौं सरनागतै तब आपु बक्षसि लाइयो।
इक जाम जामिनि मैं गयो हति दुष्ट पर्बत आनिकै।
तेहि काल लक्ष्मन कौं जियाइ जियाइयो हम जानिकै ॥४७॥

(दोहा)—अपने प्रभु को आपनो कियो हमारो काज।
रिषि जु कह्यौ हनुमंत सौं भक्तन को सिरताज ॥४८॥

(चामर)

बीर धीर साहसी बली जे बिक्रमी क्षमी। साधु सर्बदा सुधी तपी जपी जे संजमी।
भोगभाग जोग जाग बेगवंत हैं जिते। बायुपुत्र रामकाज वारि डारियै तिते ॥४९

(दोहा)—सीता पाई रिपु हत्यो देख्यो तुम अरु गेहु।
रामायन-जयसिद्धि को कपिसिर टीको देहु ॥५०॥

यहि बिधि कपिकुल-गुनन कौं कहत हुते श्रीराम।
देख्यो आश्रम भरथ को 'केसव' नंदीग्राम ॥५१॥

(सुंदरी)

पुष्पक तैं उतरे रघुनायक। जक्षपुरी पठयो सुखदायक।
सोदर कौं अवलोकि तपोथल। भूलि रह्यो कपि-राक्षस को दल ॥५२॥
कंचन को अति सुद्ध सिँघासन। राम रच्यो तेहि ऊपर आसन।
कोपर हीरन को अति कोमल। तामहँ कुंकुम चंदन को जल ॥५३॥

(दोहा)—चरनकमल श्रीराम के भरथ पखारे आप।
जातैं गंगादिकन को मिटत सकल संताप ॥५४॥

(पंकजवाटिका)

सूरज-चरन बिभीषन के अति। आपुहि भरथ पखारि महामति।
दुंदुभि धुनि करिकै बहु भेवनि। पुष्प बरषि हरषे दिबि देवनि ॥५५॥

(दोहा)—पीछे दुरि सत्रुघ्न पै लखन धुवाए पाइ।
चरन सुमित्रि पखारियो अंगदादि के आइ ॥५६॥

(तोमर)—सिर तैं जटानि उतारि। अँग अंगरागनि धारि।
तन भूषि भूषन बस्त्र। कटि सौं कसे सब सस्त्र ॥५७॥

---

[४७] बक्षसि०—उरसि लगाइयो (प्रताप०, सर०)। [४९] राम—मोर (दीन० १, कौमुदी)। [५२] भूलि—रीझि (प्रताप०, सर०)। [५५] बहु—निज (दीन० २); सब (सर०)। दिबि—अति (वही)। [५६] पै—सन (कौमुदी)। चरन०—पग सौमित्रि (कौमुदी)।

(दोहा)—सिर तें पावन पादुका लै करि भरथ बिचित्र।
चरनकमल-तरहरि धरी हँसि पहिरी जगमित्र ॥५८॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामस्य नंदिग्रामप्रवेशो नामैकविंशतितमः प्रकाशः ॥२१॥

२२

(सुंदरी)—औधपुरी कहँ राम चले जब। ठौरहि ठौर बिराजत हैं सब।
भर्थ भए सुभ सारथि सोभन। चौंर धरे रबिपुत्र बिभीषन ॥१॥

(तरंगिनी)—लीनी छरी दुहुँ बीर। सत्रुघ्न लक्ष्मन धीर।
टारैं जहाँ तहँ भीर। आनंदजुक्त सरीर ॥२॥

(दोधक)—भूतलहूँ दिबि भीर बिराजै। दीह दुहूँ दिसि दुंदुभि बाजै।
भाट भले बिरदावलि गावैं। मोद मनौ प्रतिबिंब बढ़ावैं ॥३॥
भूतल की रज देव नसावैं। फूलन की बरषा बरसावैं।
हीन-निमेष सबै अवलोकैं। होड़ परी बहुधा दुहुँ लोक ॥४॥

(तारक)

सिगरे दल औधपुरी जब देखी। अमरावति तें अति सुंदर लेखी।
चहुँ ओर बिराजति दीरघ खाँई। सुभ देवतरंगिनि सी फिरि आई ॥५॥
अति दीरघ कंचनकोट बिराजै। मनि लाल कँगूरन की रुचि राजै।
पुर सुंदर मध्य लसै छबि-छायो। परिबेष मनौ रबि को फिरि आयो ॥६॥

(दोहा)—बिबिध पताका सोभिजैं ऊँचे 'केसवदास'।
दिबि देवन के सोभिजैं मानहु ब्यजन-बिलास ॥७॥

(विजया)—चढ़ीं प्रति मंदिर सोभ बढ़ी तरुनी अवलोकन कौं रघुनंदनु।
मनो गृहदीपति देह धरैं सु किधौं गृहदेवि बिमोहति हैं मनु।

---

[१] सुभ—प्रभु (कौमुदी)। रबिपुत्र—सुभग्रीव (प्रताप०); सुग्रीव (दीन०, सर०)। [५] जब—तब (कौमुदी)। तरं०—नदी सम की सुखदाई (दीन० २)। [६] छबि—सुभ (दीन० २)। [७] बिबिध—बहुबर्न (दीन०, सर०); बहुत (प्रताप०)। ब्यजन—बिबिध (दीन० २)।

किधौं कुलदेवि दिपैं अति 'केसव' कै पुरदेविन को हुलस्यो गनु।
जहीँ सु तहीँ यहि भाँति लसैं दिबि देबिन को मद घालति हैं मनु ॥८॥

(दोहा)—अति ऊँचे मंदिरन पर चढ़ीं सुंदरी साधु।
दिबि देबिन को करति हैं मनु आतिथ्य अगाधु ॥९॥

(तोटक)—नरनारि भली सुरनारि सबै। ति न कोउ परैं पहिचानि अबै।
मिलि फूलन की बरषैं बरषा। अरु गावति हैं जय के करषा ॥१०॥

(पद्मावती)—रघुनंदन आए, सुनि सब धाए, पुरजन जैसे कहु तैसे।
दरसनरस भूले, तन मन फूले, बरने जाहिं न जैसे।
पति के सँग नारी, सब सुखकारी, तिन यौं रामहिं दृग जोरी।
जहँ तहँ चहुँ ओरनि, मिलीं चकोरनि, ज्यौं चाहति चंदचकोरी ॥११॥

(पद्धटिका)—बहु भाँति राम प्रति द्वार द्वार। अति पूजत लोग सबै उदार।
यहि भाँति गए नृपनाथ-गेह। जुत सुंदरि सोदर स्यौं सनेह ॥१२॥

(दोहा)—मिले जाइ जननीन कौं जबहीँ श्रीरघुराइ।
करुनारस अद्भुत भयो मोपै कह्यो न जाइ ॥१३॥

सीता सीतानाथजू लक्ष्मन सहित उदार।
सबनि मिले सबके कियो भोजन एकहि बार ॥१४॥

(सोरठा)—पुरजन लोग अपार, यहई सब जानत भए।
हमहीँ मिले अगार, आए प्रथम हमारे ही ॥१५॥

(मदनहरा)

सँग सीता लछिमन, श्रीरघुनंदन, मातन के सुभ पाइ परे, सब दुक्ख हरे।
अँसुवन अन्हवाए, भागनि आए जीवन पाए अंक भरे, अरु अंक धरे।
बर बदन निहारैं, सरबस वारैं, देहिं सबै सबहीन घनो, बरु लेहिं घनो।
तन मन न सँभारैं, यहै बिचारैं, भाग बड़ो यह है अपनो, किधौं है सपनो ॥१६॥

---

[८] अति—कहि (दीन०, प्रताप०, सर०)। हुलस्यो—दरस्यो (छंद०)। गनु—तनु (प्रताप०); मनु (सर०)। भाँति—रीति (दीन० १)। मनु—जनु (प्रताप०, सर०, छंद०)। [९] दिबि०—दिव्यवाम (दीन० १); सुरनारिन (दीन० २)। [१०] अबै—तबै (दीन०, प्रताप०, सर०)। [११] कहु०—के तैसे (कौमुदी); तैसे (प्रताप०, काशि०, सर०)। जाहिं—जात (कौमुदी)। जैसे—तैसे (सर०); वैसे (छंद०)। पति—पिय (वही)। सुखकारी—हितकारी (दीन० २)। तिन०—ते रामहि यौं (कौमुदी); जो रामहि (प्रताप०); रामहि यौं (काशि०)। [१३] श्रीरघुराइ—केसवराइ (सर०)। भयो—मिल्यौ (दीन० २)। [१४] कियो—किये (कौमुदी)। [१६] बर—सुत (प्रताप०); ते (काशि०, सर०)। किधौं०—सु किधौं (दीन०, प्रताप०)।

(स्वागता)

धाम धाम प्रति होति बधाई। लोक लोक तिनकी धुनि धाई।
देखि देखि कपि अद्भुत लेखैं। जाहिँ जत्र तित रामहिँ देखैं ॥१७॥

दौरि दौरि कपि रावर आवैं। बार बार प्रति धामनि धावैं।
देखि देखि तिनकौं दै तारी। भाँति भाँति बिहँसैं पुरनारी ॥१८॥

श्रीराम (दोहा)—इन सुग्रीव बिभीषनै अंगद अरु हनुमान।
सदा भरथ सत्रुघ्न सम माता जी मैं जान ॥१९॥

सुमित्रा (सोरठा)—प्राननाथ रघुनाथ, जिय की जीवनमूरि हौ।
लक्ष्मन है तुम साथ, छमिजहु चूक परी जु कछु ॥२०॥

श्रीराम (दंडक)—पौरिया कहौं कि प्रतिहार कहौं किधौं प्रभु,
पुत्र कहौं मित्र किधौं मंत्री सुखदानियै।
सुभट कहौं कि सिष्य दास कहौं किधौं दूत,
'केसोदास' हाथ को हथ्यार उर आनियै।
नैन कहौं किधौं तन मन किधौं तनत्रान,
बुद्धि कहौं किधौं बल बिक्रम बखानियै।
देखिबे कौं एक हैं अनेक भाँति कीन्हीं सेवा,
लखन के मात कौन कौन गुन मानियै ॥२१॥

(मोटनक)—सत्रुघ्न बिलोकत राम कहैं। डेरान सजौ जहँ सुख्ख लहैं।
मेरें घर संपतिजुक्त सबै। सुग्रीवहिं देहु निवास अबै ॥२२॥

साजे जु भरथ्थ सबै धन कौं। राखौ तहँ जाइ बिभीषन कौं।
नैरित्यन कौं कपिलोगन कौं। राखौ निज धामन भोगन कौं ॥२३॥

(दोहा)—एक एक नैरित्य कौं जितने बानर लोग।
आगे ही ठाढ़े रहत अमित इंद्र के भोग ॥२४॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामस्या-
योध्यापुरप्रवेशो नाम द्वाविंशः प्रकाशः ॥२२॥

---

[१७] धाई–छाई (दीन० १)। जत्र०–जहाँ तहँ (दीन०, प्रताप०); यत्र तहँ (सर०)। [१८] पुर–सब (दीन० २); सुर (सर०)। [२१] कहौं किधौं–कहौं तन मन किधौं तनत्रान प्रान (दीन०, प्रताप०, सर०)। हैं–पै (दीन० १)। कीन्ही–करी (दीन०, सर०)। मानियै–गानियै (प्रताप०, सर०)। [२३] धन–जन (कौमुदी)। निज–तिन (दीन०, सर०)।

२३

(मल्लिका)—एक काल रामदेव। साधुबंधु कर्त सेव।
सोभिजैं सबै सु और। मंत्रि मित्र ठौर ठौर ॥१॥
बानरेस जूथनाथ। लंकनाथ बंधु साथ।
सोभिजै सभा सुबेस। देसदेस के नरेस ॥२॥

(दोहा)—सरस स्वरूप बिलोकि कै उपजी मदनहिं लाज।
आइ गए ताही समय 'केसव' रिषि रिषिराज ॥३॥
असित अत्रि भृगु अंगिरा, कस्यप गौतम ब्यास।
बिस्वामित्र अगस्त्यजुत बालमीकि दुर्बास ॥४॥
बामदेव मुनि कन्वजुत भरद्वाज मतिनिष्ठ।
पर्बतादि दै सकल मुनि आए सहित बसिष्ठ ॥५॥

(नराच)

सबंधु रामचंद्रजू उठे बिलोकिकै तबै। सभासमेत पाँ परे बिसेषि पूजियो सबै।
बिबेक सौं अनेकधाँ दए अनूप आसने। अनर्घ अर्घ आदि दै बिनै किये घने घने ॥६॥

श्रीराम (रूपमाला)—रावरे मुख के बिलोकत ही भए दुख दूरि।
सुप्रलापन ही रहे उर मध्य आनँद पूरि।
देह पावन ह्वै गयो पदपद्म को पय पाय।
पूजतै भयो बंस पूजित आसु ही मुनिराय ॥७॥
संनिधान भरे तपोधन धाम धी धन धर्म।
अद्य सद्य सबै भए निरबद्य बासरकर्म।
ईस जद्यपि दृष्टिहीँ भइ भूरि मंगल बृष्टि।
पूँछिबे कहँ होति है सु तथापि बाक-बिसृष्टि ॥८॥

(दोहा)—गंगासागर सौं बड़ो साधुन को सतसंग।
पावन करि उपदेस अति अद्भुत करत अभंग ॥९॥

---

[१] सबै०—सुबेस और (प्रताप०, सर०)। [२] सभा०—सबै समीप (काशि०)। नरेस—महीप (वही)। [३] सरस—सूर (प्रताप०, सर०)। कै—उर (दीन०)। [४] असित—अगस्ति (दीन०, प्रताप०, सर०)। अगस्ति—पवित्र मुनि (दीन० १, प्रताप०); ऋषय अपर (दीन० २); अगस्तिजू (सर०)। [७] ही रहे०—भूरि मानहु होत (दीन० १)। [८] दृष्टिहीँ—दृष्टि सौं (दीन०, सर०, कौमुदी)। बृष्टि—दृष्टि (प्रताप०, काशि०, सर०)। भए—किये (दीन० १)। पूँछिबे—बूझिबे (दीन०)। [९] सागर—संगम (दीन०, प्रताप०, सर०)।

अगस्त्य (नराच)—किये बिसेष सों असेष काज देवराय के।
सदा त्रिलोक-लोकनाथ धर्म बिप्र गाय के।
अनादिसिद्धि राजसिद्धि राज आज लीजई।
नृदेवतानि देवतानि दीह सुख्ख दीजई ॥१०॥

(दोहा)—मारे अरि पारे हितू, कौन हेत रघुनंद।
निरानंद से देखियै, जद्यपि परमानंद ॥११॥

श्रीराम—(तोमर)

सुनि ज्ञान-मानस-हंस। जग जोग-जाग-प्रसंस।
जग माँझ है दुख-जाल। सुख है कहा यहि काल ॥१२॥

तहँ राज है दुखमूल। सब पाप कौं अनुकूल।
अब ताहि लै रिषिराइ। कहि को न नरकहि जाइ ॥१३॥

(चौपई)—सोदर मंत्रिन के जु चरित्र। इनके हमपै सुनि मखमित्र।
इनहीं लगे राज को काज। इनही तैं सब होत अकाज ॥१४॥

राज-भार नल भैयहि दियो। छलबल छीनि सबै तिन लियो।
जब लीनो सब राज बिचारि। नल दमयंती दियो निकारि ॥१५॥

राजा सुरथराज की गाथ। सौंपी सब मंत्रिन के हाथ।
संतत मृगयालीन बिचारि। मंत्रिन राजा दियो निकारि ॥१६॥

राजश्री अति चंचल तात। ताहू की सुनि लीजै बात।
जोबन अरु अबिबेकी रंग। बिनस्यो को न राजश्री-संग ॥१७॥

सास्त्र-सुजलहूँ धोवत तात। मलिन होत अति ताके गात।
जद्यपि है अति उज्जल द्रष्टि। तदपि सृजति रागन की सृष्टि ॥१८॥

महापुरुष सों जाकी प्रीति। हरति सो झंझा-मारुत-रीति।
विषय-मरीचिकानि की जोति। इंद्री-हरिनि-हारिनी होति ॥१९॥

गुरु के बचन अमल अनुकूल। सुनत होत श्रवनन कौं सूल।
मैनबलित नव बसन सुदेस। भिदत नहीं जल ज्यों उपदेस ॥२०॥

मित्रनहू को मतो न लेति। प्रतिसब्दक ज्यों उत्तर देति।
पहिले सुनै न सोर सुनंति। माती करिनी ज्यों न गनंति ॥२१॥

---

[११] देखियै—देखियत (काशि०, सर०)। [१२] जग—जप (सर०, कौमुदी)। [१४] मंत्रिन—मित्रन (दीन० १)। [१५] भैयहि—भैयनि (काशि०, सर०)। दयो—दीन (कौमुदी)। तिन—उनि (दीन०, प्रताप०)। दम०—दमयंतिहि दीन (कौमुदी); दमयंतिहि दियो (सर०)। [१६] राजा—राजहि (प्रताप०, सर०, कौमुदी)। [१८] सु०—जालहूँ (प्रताप०); जलहूँ (सर०)। [२०] नव—तन (प्रताप०, सर०)। [२१] मित्रन—मंत्रिन (दीन०, प्रताप०)। सोर—जोर (प्रताप०); वोर (सर०)।

(दोहा)—धर्मधीरता बिनयता, सत्य सील आचार।
राजश्री न गनै कछू, बेद-पुरान-बिचार ॥२२॥

(चौपई)—सागर मैं बहु काल जु रही। सीत बक्रता ससि तैं लही।
सुर-तुरंग-चरनन तैं तात। सीखो चंचलता की बात ॥२३॥

कालकूट तैं मोहन रीति। मनिगन तैं अति निष्ठुर प्रीति।
मदिरा तैं मादकता लई। मंदर-उदर भई भ्रममई ॥२४॥

(दोहा)—सेष दई बहुजिह्वता बहुलोचनता चारु।
अप्सरान तैं सीखियो अपर-पुरुष-संचारु ॥२५॥

(चौपई)—दृढ़ गुन बाँधेहूँ बहु भाँति। को जानै केहि भाँति बिलाति।
गज घोटक भट कोटिनि अरै। खड्गलता पंजर हू परै ॥२६॥

अपनाइति कीन्हें बहु भाँति। को जानै कित ह्वै भजि जाति।
धर्म-कोस मंडित सुभ देस। तजति भ्रमरि ज्यौं कमल-नरेस ॥२७॥

जद्यपि होइ सुद्ध मति सत्त। फिरै पिसाची ज्यौं उनमत्त।
गुनवंतनि आलिंगति नहीं। अपवित्रनि ज्यौं छाँडति तहीं ॥२८॥

सूरनि नाखति ज्यौं अहि देखि। कंटक ज्यौं बहु साधुनि लेखि।
सुधा-सोदरा जद्यपि आप। सब ही तैं अति कटुक प्रताप ॥२९॥

जद्यपि पुरुषोत्तम की नारि। तदपि सकल खलजन अनुहारि।
हितकारिन की अति द्वेषिनी। अहित लोग की अन्वेषिनी ॥३०॥

मनमृग कौं सुबधिक की गीति। बिषयबेलि कौं बारिदरीति।
मदपिसाचिका कैसी अली। मोह-नींद की सज्जा भली ॥३१॥

आसीबिष दोषन की दरी। गुन सतपुरुषनि कारन छरी।
कलहंसन की मेघावली। कपट नृत्यकारी की थली ॥३२॥

(दोहा)—बाम काम-करि की किधौं कोमल कदलि सुबेष।
धीर धर्म द्विजराज कौं मनहु राहु की रेख ॥३३॥

(चौपई)—मुखरोगी ज्यौं मौनै रहै। बात बखाइ एक द्वै कहै।
बंधुबर्ग पहिचानति नहीं। मानौ संनिपात है गही ॥३४॥

महामंत्रहूँ होत न बोध। डसी काल-अहि करि जनु क्रोध।
पानबिलास उदित आतुरी। परदारा-गमनै चातुरी ॥३५॥

---

[२३] बहु—सब (प्रताप०, सर०)। सुर०—सूरतुरंग-चरन (दीन० १)। [२४] प्रीति—नीति (दीन०, प्रताप०)। [३०] अनुहारि—मनुहारि (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३४] मुखरोगी—मुखरोगिनि (प्रताप०, सर०)। बखाइ—बनाइ (कौमुदी)। है—की (कौमुदी); कौं (प्रताप०)।

(चौपई)—मृगया यहै सूरता बढ़ी। बंदीमुखनि चाय सौं पढ़ी।
जौ केहूँ चितवै यह दया। बात कहै तौ बढ़ियै मया ॥३६॥
दरसन दीबोई अति दान। हँसि बोलै तौ बड़ सनमान।
जौ काहू सौं अपनो कहै। सपने कैसी पदवी लहै ॥३७॥

(दोहा)—जोई अति हित की कहै, सोई परम अमित्र।
सुखवक्ताई जानियै, संतत मंत्री मित्र ॥३८॥

(चौपई)—कहौं कहाँ लगि ताके साज। तुम सब जानत हौ रिषिराज।
जैसी सिव-मूरति मानियै। तैसी राजश्री जानियै ॥३९॥
सावधान ह्वै सेवै जाहि। साँचो देहि परम पद ताहि।
जितने नृप आए बस भए। पेलि स्वर्ग मग नरकहिं गए ॥४०॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां राज्यश्री-दूषणवर्णनन्नाम त्रयोविंशः प्रकाशः ॥२३॥

२४

श्रीराम (अमृतगति)—सुमति महामुनि सुनिये। जग महँ सुक्ख न गुनिये।
मरनहिं जीव न तजहीं। मरि मरि जन्मन भजहीं ॥१॥
उदरनि जीव परत हैं। बहु दुख सौं निसरत हैं।
अनतहि पीर अनतहीं। तन-उपचार सहतहीं ॥२॥

(दोधक)—पोच भली न कछू जिय जानै। लै सब बस्तुनि आनन आनै।
सैसव तैं कछु होत बड़ेई। खेलत हैं ते अयान चढ़ेई ॥३॥
हैं पितु-मातन तैं दुख भारे। श्रीगुरु तैं अति होत दुखारे।
भूख न प्यास न नींद न जोवैं। खेलन कौं बहु भाँतिन रोवैं ॥४॥
जारति चित्त चिता-दुचिताई। दीह त्वचा अहि-कोप चबाई।
कामसमुद्र झकोरनि भूल्यो। जोबन जोर महाप्रभु भूल्यो ॥५॥

---

[३७] अति-बड़ (दीन० २)। पदवी-संपति (प्रताप०, कौमुदी)। [३८] जानियै-मानियै (प्रताप०, सर०)। [४०] जाहि-याहि (प्रताप०, कौमुदी)। मग-पग (दीन०); पद (प्रताप०, सर०)।

[१] मुनि-रिषि (काशि०, सर०)। [२] जीव-मध्य (दीन०, प्रताप०)। परत-बसत (प्रताप०)। निसरत-निकसत (प्रताप०, सर०)। [३] बड़ेई-बढ़ेई (काशि०); बढ़ोई (प्रताप०, सर०)। ते०-तिय जान (सर०)। चढ़ेई-चढ़ोई (प्रताप०, सर०)। [४] दुख-भय (प्रताप०)। [५] प्रभु-मद (प्रताप०, सर०, कौमुदी)।

धूम सो नील निचोल में सोहै। जाइ छुई न बिलोकत मोहै।
पावक पापसिखा बनचारी। जारति है नर कौं परनारी ॥६॥

बंक हिये न प्रभा सरसी सी। कर्दम काम कछू परसी सी।
कामिनि काम कि डोरि ग्रसी सी। मीन-मनुष्यन कौं बनसी सी ॥७॥

(विजय)—खैंचत लोभ दसौ दिसि कौं गहि मोह महा महि पासि कै डारे।
ऊँचे तें गर्ब गिरावत क्रोध सौं जीवहि लूहर लावत भारे।
ऐसे में कोढ़ की खाज ज्यौं 'केसव' मारत काम के बान निनारे।
मारत पाँच करे पँचकूटहि कासौं कहैं जगजीव बिचारे ॥८॥

भूलत है कुलधर्म सबै तबहीँ जबहीँ वह आनि ग्रसै जू।
'केसव' बेद-पुराननि कौं न सुनै समुझै न त्रसै न, हँसै जू।
देवन तें नरदेवन तें नर तें बर बानर ज्यौं बिलसै जू।
जंत्र न मंत्र न मूरि गनै जगजीवन काम-पिसाच बसै जू ॥९॥

ज्ञानिन के तनत्रानन कौं कहि फूल के बाननि बेधत को तो।
बाइ लगाइ बिबेकिन कौं बहु साधक कौं कहि बाधक जो तो।
और को 'केसव' लूटतो जन्म अनेकन के तपसान को पोतो।
तौ मम लोक सबै जग जातो जु काम बड़ो बटपार न होतो ॥१०॥

(मकरंद)—कँपै बर बानि डगै डर डीठि त्वचा तिकुचै सकुचै मति बेली।
नवै नवग्रीव थकै गति 'केसव' बालक तें सँगहीँ सँग खेली।
लियें सब आधिन ब्याधिन संग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।
भगै सब देह-दसा, जिय-साथ रहै दुरि दौरि दुरासा अकेली ॥११॥

बिलोकि सिरोरुह सेत समेत तनोरुह कोबिद यौं गुन गायो।
उठे किधौं आयु के औधि के अंकुर सूल कि सुक्ख समूल नसायो।
जरैं किधौं 'केसव' ब्याधिन की किधौं आधि के आखर अंत न पायो।
जरा सर-पंजर जीव जर्यौ कि जरा-जरकंबर सो पहिरायो ॥१२॥

---

[६] बनचारी—बड़वारी (दीन० १, प्रताप०, सर०, कौमुदी)। [७] कि—ना (प्रताप०); कछु (सर०); की (कौमुदी)। [८] इत—महि (दीन० २); मद (दीन० १)। कै—हि (कौमुदी) सौं—हु (वही)। के—हु (वही)। बान—काम (दीन०, प्रताप०, सर०)। [९] वह—यह (कौमुदी)। जीवन—जोबन (प्रताप०, सर०)। [१०] बेधत—बेधक (प्रताप०, सर०)। जो—हो (कौमुदी)। मम—सम (कौमुदी)। [११] तिकुचै—तुचकै (प्रताप०)। हीँ सँग—हीँ सब (प्रताप०); ज्यौं बढ़ (सर०)। [१२] कोबिद—केसव (काशि०)। आयु के—आयु की (कौमुदी)। कि सुक्ख०—कि सुष्क... (कौमुदी); किधौं सुख सोधि (प्रताप०, सर०)।

(मदनमनोहर)

दिनहीं दिन बाढ़त जाइ हियें जरि जाइ समूल सो औषधि खैहै।
किधौं याही के साथ अनाथ ज्यों 'केसव' आवत जात सदा दुख सैहै।
जग जाकी तूँ ज्योति जगै जड़ जीवन वापै तूँ तापहूँ जान न पैहै।
सुनि बालदसा गई ज्वानी गई जरि जैहै जराऊ दुरासा न जैहै ॥१३॥

(दोहा)—जहाँ भामिनी भोग तहँ बिन भामिनि कहँ भोग।
भामिनि छूटैं जग छुटै, जग छूटैं सुख-जोग ॥१४॥

जोई जोई जो करै अहंकार के साथ।
स्नान दान तप होम जप निष्फल जानौ नाथ ॥१५॥

(तोटक)—जिय माँझ अहंपद जौ दमियै। जिनहीं जिनहीं गुन श्री रमियै।
तिनहीं तिनहीं लखि लोभ डसै। पट-तंतुन उंदुर ज्यों तरसै ॥१६॥

(विजय)—दान सयानन के कलपद्रुम टूटत ज्यों रिन ईस के माँगे।
सूखत सागर से सुख 'केसव' ज्यों दुख श्रीहरि के अनुरागे।
पुन्य बिलात पहारन से पल ज्यों अघ राघव की निसि जागे।
ज्यों द्विज दोष तें संतति नासति त्यों गुन भाजत लोभ के आगे ॥१७॥

दानदया सुभसील सखा बिझुकैं गुनभिक्षुक को बिझुकावैं।
साधु सुधी सुरभी सब 'केसव' भाजि गईं भ्रम भूरि भजावैं।
सज्जन-संग बछेरु डरैं बिडरैं बृषभादि प्रबेस न पावैं।
बार बड़े अघ-बाघ बँधे उर-मंदिर बालगोबिंद न आवैं ॥१८॥

(दोहा)—आँखिन आछत आँधरो जीव करै बहु भाँति।
धीरन धीरज बिघ्न करै तृष्ना कृष्ना राति ॥१९॥

तृष्ना कृष्ना षटपदी हृदय-कमल मैं बास।
मत्तदंति-गलगंड जुग, नर्क-अनर्क-बिलास ॥२०॥

---

[१३] जीवन०—जीवन वापै तूँ जीवत (दीन० १), जीवन कैसहुँ आपै तूँ (दीन० २); जीवनु यापै तू तापति (सर०); जीवन पाए तूँ तापहूँ (प्रकाशिका); जीव रे कैसहु तापहूँ (कौमुदी)। जरि—तैसे (दीन०, प्रताप०); अरु (सर०)। [१५] तप०—होमादि ब्रत भस्म होत है (दीन० १, प्रताप०); होमादि दै भस्म होत है (दीन० २)। पट०—पल तातिन बंधक ज्यौं न त्रसै (दीन०); पलतंतुनि मेषन ज्यौं न त्रसै (प्रताप०); पलतंतुनि उंदुर ज्यों न त्रसै (सर०)। [१८] गोबिंद—मुकुंद (दीन०, प्रताप०)। [१९] आछत—ही छत (दीन०); हूँ छत (प्रताप०); हो छत (सर०)। धीरन०—को धीरज हरै (प्रताप०); बिन०—धन हरै (दीन० २)। [२०] जुग—जुत (दीन० १)। बिलास—निवास (दीन० २)।

हौं मन तें बिधि पुत्र उपायो। जीवउधारन मंत्र बतायो।
है परिपूरन जोति तिहारी। जाइ कही न सुनी न निहारी ॥६॥

(दोहा)—ताकी इच्छा तें भए नारायन मतिनिष्ठ।
तिनतें चतुरानन भए तिनतें जगत प्रतिष्ठ ॥७॥

(दोधक)—जीव सबै अवलोकि दुखारे। आपने चित्त प्रयोग बिचारे।
मोहिँ सुनाए तुम्हैं ते सुनाऊँ। जीवउधारन गीत सु गाऊँ ॥८॥

(दोहा)—मुक्तिपुरी बर द्वार के चार चतुर प्रतिहार।
साधुन को सतसंग सम अरु संतोष बिचार ॥९॥

यह जग चक्काव्यूह किय कज्जलबलित अगाधु।
तामहँ पैठि जो नीकसै अकलंकित सो साधु ॥१०॥

(दोधक)—देखतहूँ एक काल छियेहूँ। बात कहैं सुनैं भोग कियेहूँ।
सोवत जागत नेक न क्षोभै। सो समता सबहीँ महँ सोभै ॥११॥

जो अभिलाष न काहु को आवै। आए गए सुख दुक्ख न पावै।
लै परमानँद सौं मन लावै। सो सब माँझ सँतोष कहावै ॥१२॥

आयो कहाँ अब हौं कहि को हौं। ज्यौं अपनो पद पाऊँ सो टोहौं।
बंधु अबंधु हिये महँ जानै। ताकहँ लोग बिचार बखानै ॥१३॥

वसिष्ठ—चारि मैं एकहु जौं अपनावै। तौ तुमपै प्रभु आवन पावै।
राम—जोति निरीह निरंजनमानी। तामहँ क्यौं रिषि इच्छ बखानी ॥१४॥

वसिष्ठ (दोहा)—सकल सक्ति उनमानियै अद्भुत जोतिप्रकास।
जातैं जग को होत है उत्पति थिति अरु नास ॥१५॥

राम—(दोधक)

जीव बँधे सब आपनि माया। कीन्हैं कुकर्म मनो बच काया।
जीवन चित्त प्रबोधन आनौ। जीवनमुक्त के भेद बखानौ ॥१६॥

वसिष्ठ—बाहिरहूँ अति सुद्ध हियेहूँ। जाहि न लागत कर्म कियेहूँ।
बाहिर मूढ़ सु अंत सयानौ। ताकहँ जीवनमुक्त बखानौ ॥१७॥

---

[६] बतायो—सुनायो (प्रताप०, सर०)। निष्ठ—सिद्धि (दीन० २); सुद्ध (प्रताप०)। प्रतिष्ठ—प्रसिद्ध (प्रताप०); प्रसिद्धि (दीन० २)। [८] सु०—गनाऊँ (काशि०)। [१०] यह०—जग चक्काव्यू तुम रच्यौ (दीन० १); जगत चक्कबुह तुम रच्यौ (प्रताप०); जग बिंब सम तुम रच्यौ (दीन० २, सर०)। [११] एक—अति (प्रताप०); बहु (कौमुदी)। [१२] आवै—आनै (दीन० १)। पावै—मानै (दीन० १); लावै (दीन० २)। [१६] कुकर्म—जु कर्म (दीन० १)। भेद—नाम (दीन० १); बेष (दीन० २); मर्म (कौमुदी)।

(दोहा)—आपन सो अवलोकियै सबहीं जुक्त अजुक्त।
अहंभाव मिटि जाइ जौ कौन बद्ध को मुक्त ॥१८॥

राम—(दोधक)

ये सिगरे गुन होत सो जानौ। थावर जीवनमुक्त बखानौ।
वसिष्ठ—जानि सबै गुन दोषन छाड़ै। जीवनमुक्तन के पद माड़ै ॥१९॥

(दोहा)—साधु कहावत करत हैं जग मो सब ब्यौहार।
तिनको मीचु न छ्वै सकै कहि प्रभु कौन बिचार ॥२०॥

वसिष्ठ—(पद्धटिका)

जग जिनको मन तव चरन लीन। तन तिनको मृत्यु न करति छीन।
तेहि छन ही छन दुख छीन होत। जिय करत अमित आनँदउदोत ॥२१॥
जो चाहै जीवन अति अनंत। सो साधै प्रानायाम जंत।
सुभ रेचक पूरक नाम जानि। अरु कुंभकादि सुखदानि मानि ॥२२॥
जो क्रम क्रम साधै साधु धीर। सो तुमहिं मिलै याही सरीर।
राम—जग तुमतें नहिँ सर्बज्ञ आन। अब कहौ देव पूजा-बिधान ॥२३॥

वसिष्ठ—(तारक)

हम एक समै निकसे तपसा कौं। तब जाइ भजे हिमवंत-रसा कौं।
बहु भाँति कस्यो तप क्यौं कहि आवै। सितिकंठ प्रसन्न भए जग गावै ॥२४॥

(दंडक)

ऊजरे उदार उर बासुकी बिराजमान, हार के समान आन उपमा न टोहियै।
सोभिजैं जटान बीच गंगाजू के जलबुंद, कुंद की सी कली 'केसोदास' मन मोहियै।
नख की सी रेखा चंद, चंदन सी चारु रज, अंजन सिँगार ही गरलरुचि रोहियै।
सब सुखसिद्धि सिवा सोहैं सिवजू के साथ, जावक सो पावक लिलार लाग्यो सोहियै

शिव—(तारक)

बर माँगि कछू रिषिराज सयाने। बहु भाँति चले तपपंथपयाने।
वसिष्ठ—पुजवौ परमेस्वर मो मन इच्छा। सिखवौ प्रभुदेव प्रपूजनसिक्षा ॥२६॥

---

[१८] जौ–तौ (दीन० १)। [१९] होत०–हौं हुत (कौमुदी); हौं हू (दीन० १)। पद–फल (वही)। [२०] मो–को (दीन० २); के (कौमुदी)। [२१] तेहि–तै (दीन० २); जिहि (दीन० १)। जिय–तै (दीन० १); जेहि (सर०)। [२२] सो–तौ (दीन०)। जंत–मंत (कौमुदी)। रेचक०–पूरक कुंभक मान (दीन० १, कौमुदी)। कुंभकादि–रेचकादि (वही)। [२५] कुंद०–कुंदकलिका सी (दीन० १)। केसोदास–केसौराय (दीन०)। ही–हू (सर०, कौमुदी)। [२६] चले–किये (कौमुदी)।

शिव (दोहा)—राम रमापति देव नहिं रंग न रूप न भेव।
देव कहत रिषि कौन कौं सिखऊँ जाकी सेव ॥२७॥

वसिष्ठ (तोमर)—हम कहा जानहिं अज्ञ। तुम सर्बदा सर्बज्ञ।
अब देव देहु बताइ। पूजा कहौ समुझाइ ॥२८॥

शिव—सत चित प्रकास प्रभेव। तेहि बेद मानत देव।
तेहि पूजि रिषि रुचि मंडि। सब प्राकृतन कौं छंडि ॥२९॥

पूजा यहै उर आनु। निर्ब्याज धरियै ध्यानु।
यौं पूजि घटिका एक। मनु किये जज्ञ अनेक ॥३०॥

जिय जान यहई जोग। सब धर्म कर्म प्रयोग।
सम रूप पूजि प्रकास। तब भए हम से दास ॥३१॥

यह बचन करि परमान। प्रभु भए अंतरधान ॥३२॥

(दोहा)—यहि पूजा अद्भुत अगिनि सुनि प्रभु त्रिभुवननाथ।
सबै सुभासुभ बासना मैं जारी निज हाथ ॥३३॥

(झूलना)—यहि भाँति पूजा पूजि जीव जु भक्त परम कहाइ।
भव भक्तिरसभागीरथी महँ देइ दुखनि बहाइ।

पुनि महाकर्ता महात्यागी महाभोगी होइ।
अति सुद्ध भाव रमै रमापति पूजिहैं सब कोइ ॥३४॥

(दोहा)—राग द्वेष बिन कैसहूँ धर्माधर्म जु होइ।
हर्ष सोक उपजै न मन कर्ता महा सु लोइ ॥३५॥

जो कछु आँखिन देखियै, बानी बरन्यो जाहि।
महातियागी जानियै, झूठो जानै ताहि ॥३६॥

---

[२७] राम–उमा (कौमुदी)। रंग०–देवन रूप न देव (दीन०, सर०)। कौं–सो (सर०, कौमुदी)। [२९] प्रभेव–अभेव (दीन० १, सर०); इमेव (दीन० २)। तेहि–वह (दीन० १); यह (दीन० २)। [३०] धरियै–कीजै (सर०)। यौं–जौ (दीन०)। मनु०–जनु (दीन०, सर०)। जज्ञ–याग (कौमुदी)। [३१] कौमुदी में इसके अनंतर दो पंक्तियाँ और हैं—

तेहि तैं यही उर लाव। मन अनत कहुँ न चलाव ॥

[३२] सम–सब (काशि० प्रकाशिका); यह (कौमुदी)। तब–बहु (दीन०, सर०)। प्रभु–हर (कौमुदी)। [३३] त्रिभुवन–पूरन (दीन०, सर०)। नाथ–पाथ (सर०)। [३४] दुखनि–अघनि (दीन०, सर०)।

भोज अभोज न रत बिरत नीरस सरस समानु।
भोग होइ अभिलाष बिन महाभोगता मानु ॥३७॥

(तोमर)—जिय ज्ञान बहु ब्यौहार। अरु जोग-भोग-बिचार।
यहि भाँति होइ जो राम। मिलिहै सो तेरे धाम ॥३८॥

(चंद्रकला)-निसिबासर बस्तुबिचार करै, मुख साँच हिये करुनाधनु है।
अघनिग्रह, संग्रह धर्मकथान, परिग्रह साधुन को गनु है।
कहि 'केसव' जोग जगै हिय-भीतर, बाहेर भोगन स्यौं तनु है।
मनु हाथ सदा जिनके, तिनको बनु ही घरु है, घरु ही बनु है ॥३९॥

(दोहा)—लेइ जो कहियै साधु अनलीन्हें कहियै बाम।
सबको साधन एक जग, राम तिहारो नाम ॥४०॥

राम (दोहा)—मोहिं न हुतो जनाइबे सबहीं जान्यो आजु।
अब जु कहौ सु करैं बनै कहै तुम्हारे काजु ॥४१॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां जीवोद्धार-वर्णनन्नाम त्रयोविंशः प्रकाशः ॥२५।

२६

(मोटनक)—बोले रिषिराज भरथ्थ तबै। कीजै अभिषेक-प्रयोग सबै।
सत्रुघ्न कह्यो चुप ह्वै न रहौ। श्रीराम के नाम को तत्व गहौ ॥१॥
श्रद्धा बहुधा उर आनि भई। ब्रह्मासुत सौं बिनती बिनई।
श्रीराम को नाम कहौ रुचि कै। मतिमान महा मन कौं सुचि कै ॥२॥

(स्वागता)—चित्त माँझ जब आनि अरूझी। बात तात कहँ मैं यह बूझी।
जोग-जाग करि जाहि न आवै। स्नान-दानविधि-मर्म न पावै ॥३॥
है असक्त सब भाँति बिचारौ। कौन भाँति प्रभु ताहि उधारौ ॥४॥

---

[३७] भोगता—गि तेहि (कौमुदी)। [३८] तेरे—तुम्हरे (दीन० २); तैरेहि (प्रताप०)। [४०] अनलीन्हें०—जन अनलीन्हे कहि (दीन० १); सो अनलीन्हे कहि (दीन० २); तेहि जो न लेइ सो (कौमुदी)। साधन—भूषन (दीन० १)। [४१] न—जु (दीन०, प्रताप०, सर०)। जनाइबे—सुनाइबो (दीन० २)। करैं०—कीजियै (सर०, कौमुदी)।

[२] मति०—सुख होइ महा मन मैं (दीन० १)। [३] कहँ—पहँ (कौमुदी)। [४] सब—बहु (दीन० २)।

(भुजंगप्रयात)

जहाँ सच्चिदानंद रूपै धरैंगे। सु त्रैलोक के ताप तीनौ हरैंगे।
कहैगो सबै नाम श्रीराम ताको। सदा सिद्ध है सुद्ध उच्चार जाको ॥५॥

कहै नाम आधो सोआधो नसावै। कहै नाम पूरो सो बैकुंठ पावै।
सुधारैं दुहूँ लोक कौं बर्न दोऊ। हियें छद्म छाँडै कहै बर्न कोऊ ॥६॥

सुनावै सुनै साधुसंगी कहावै। कहावै कहै पापपुंजै नसावै।
स्मरावै स्मरै बासना जारि डारै। तजै छद्म कौं देवलोकै सिधारै ॥७॥

(तामरस)—जब सब बेद-पुरान नसैहैं। जप तप तीरथ हू मिटि जैहैं।
द्विज सुरभी नहिं कोउ बिचारै। तब जग केवल नाम उधारै ॥८॥

(दोहा)—मरनकाल कासी-बिषै, महादेव निज धाम।
जीवन कौं उपदेसिहैं, रामचंद्र को नाम ॥९॥

मरनकाल कोऊ कहै, पापी होइ पुनीत।
सुखहीं हरिपुर जाइहै, सब जग गावै गीत ॥१०॥

रामनाम के तत्व कौं, जानत बेद प्रभाव।
गंगाधर कै धरनिधर, बालमीकि मुनिराव ॥११॥

(दोधक)—सातहु सिंधुन के जल रूरे। तीरथजालनि के पय पूरे।
कंचन के घट बानर लीने। आइ गए हरि-आनँद-भीने ॥१२॥

(दोहा)—सकल रतन सब मृत्तिका सुभ औषधी असेष।
सात दीप के पुष्प फल पल्लव रस सबिसेष ॥१३॥

(दोधक)—आँगन हीरन को मन मोहै। कुंकुम-चंदन-चर्चित सोहै।
है सरसी सम सोभप्रकासी। लोचन-मीन मनोजबिलासी ॥१४॥

(दोहा)—गजमोतिन जुत सोभिजैं मरकतमनि के थार।
उदकबुंद स्यौं जनु लसत पुरइनि-पत्र अपार ॥१५॥

(विशेषक)—भाँतिन भाँतिन भाजन राजत कौन गनै।
ठौरहि ठौर रहे जनु फूलि सरोज घनै।

---

[५] सदा–स्वयं (कौमुदी)। [६] छद्म–दंभ (प्रताप०)। [७] स्मरावै०–जपावै जपै (कौमुदी)। [८] जग–कलि (दीन०)। [९] निज–को (प्रताप०, सर०); गुन (कौमुदी)। [१०] जाइहै–जाइगो (दीन०, प्रताप०, सर०)। सब०–रामचंद्र को (दीन० २)। [११] मुनि–रिषि (प्रताप०)। [१२] घट०–घटिका नर (दीन० १); घट बारन (दीन० २)। [१४] मनोज–सरोज (दीन०, प्रताप०, सर०)। [१५] स्यौं–जुत (दीन० १); यौं (प्रताप०)।

भूपन के प्रतिबिंब बिलोकत रूप-रसे।
खेलत हैं जल माँझ मनौ जलदेव बसे ।।१६।।

(पद्धटिका)—मृगमद मिलि कुंकुम सुरभि-नीर। घनसार सहित अंबर उसीर।
घसि केसरि स्यौं बहु बिबिध नीर। छिति छिरके चरथावर-सरीर ।।१७

बहु बर्न फूल फल दल उदार। तहँ भरि राखे भाजन अपार।
तहँ पुष्पबृक्ष सोभैं अनेक। मनिबृक्ष स्वर्न के बृक्ष एक ।।१८।।

तेहि उपर रच्यो एकै बितान। दिबि देखत देवन के बिमान।
दुहुँ ओर होत पूजाबिधान। अरु नृत्य गीत बादित्र गान ।।१६।।

तरु ऊमरि को आसन अनूप। बहु रचित हेममय बिस्वरूप।
तहँ बैठे आपुन आइ राम। सियसहित मनौ रति रुचिर काम ।।२०।।

जनु घन दामिनि आनंद देत। तरुकल्प कल्पबल्ली समेत।
है कैधौं बिद्यासहित ज्ञान। कै तपसंयुत मन सिद्धि जान ।।२१।।

कै बिक्रमजुत कीरति प्रबीन। कै श्री नारायन-सोभ-लीन।
कै अति सोभित स्वाहा सनाथ। कै सुंदरता सृंगार-साथ ।।२२।।

(सुंदरी)—'केसव' सोभन छत्र बिराजत। जाकहँ देखि सुधाधर लाजत।
सोभित मोतिन के मनि के गन। लोकन के जनु लागि रहे मन ।।२३।।

(दोहा)—सीतलता सुभता सबै सुंदरता के साथ।
अपनी रबि की अंसु लै सेवत जनु निसिनाथ ।।२४।।

(सुंदरी)—ताहि लियें रबिपुत्र सदा रत। चौंर बिभीषन अंगद ढारत।
कीरति लै जग की जनु वारत। चंद्रक चंदन चंद सदारत ।।२५।।

लक्ष्मन दर्पन कों दिखरावत। पाननि लक्ष्मन-बंधु खवावत।
भर्थ भले नरदेव हँकारत। देव अदेवन पायनि पारत ।।२६।।

(दोहा)—जामवंत हनुमंत नल नील मरातिब साथ।
छरी छबीली सोभिजै दिगपालन के हाथ ।।२७।।

---

[१६] ठौरहि०—ठौरनि ठौरनि फूल मनौ जलजात (दीन० १)। बिलोकत०—बिराजत रूपसनै (दीन० १); बिलोकत रूपसनै (सर०)। बसे—घनै (दीन०, सर०)। [१७] बिबिध—बुद्धि (प्रताष०)। नीर—धीर (प्रताप०, सर०)। [१६] लोक०—ओर होइ मंगल (दीन०, प्रताप०)। [२१] कै०—कीधौं तपसंजुत (दीन०, प्रताप०); कै तापसँजुत सी (सर०)। [२३] जा कहँ—देव ਖिहात अदेव ति (दीन० २)। सुधाधर—सुधातरु (दीन० १)। जनु०—मनु लागि (दीन० २); अनुरागि (दीन० १, सर०)। [२५] सदारत—सुढारत (दीन० १); सुधारत (दीन० २, प्रताप०); सँवारत (प्रकाशिका)।

रूप बहिक्रम, सुरभि सम बचन रचन बहु भेव।
सभामध्य पहिचानियै नर नरदेव न देव ॥२८॥

आई जब अभिषेक की घटिका 'केसवदास'।
बाजे एकहि बार बहु दुंदुभि दीह अकास ॥२९॥

(झूलना)—तब लोकनाथ बिलोकिकै रघुनाथ को निज हाथ।
सबिसेष सौं अभिषेक कै पुनि उच्चरी सुभ गाथ।
रिषिराज इष्ट बसिष्ठ सौं मिलि गाधिनंदन आइ।
पुनि बालमीकि बियास आदि जिते हुते मुनिराइ ॥३०॥

रघुनाथ संभु स्वयंभु कौं निज भक्ति दी सुख पाइ।
सुरलोक कौं सुरराज कौं किय दीह निरभय राइ।
बिधि सौं रिषीसन सौं बिनै करि पूजियो परि पाइ।
बहुधा दई तप-बृद्धि की सब सिद्धि सुद्ध सुभाइ ॥३१॥

(दोहा)—दीन्हो मुकुट बिभीषनै अपनो अपने हाथ।
कंठमाल सुग्रीव कौं दीन्ही श्रीरघुनाथ ॥३०॥

(चंचरी)—माल श्रीरघुनाथ के उर सुभ्र सीतहि सो दई।
अपियो हनुमंत कौं तिन दृष्टि कै करुनामई।
और देव अदेव बानर जाचकादिक पाइयो।
एक अंगद छोड़िकै जोइ जासु के मन भाइयो ॥३३॥

अंगद—देव हौ नरदेव बानर नैरितादिक धीर हौ।
भर्थ लक्ष्मन आदि दै रघुबंस के सब बीर हौ।
आजु मोसन जुद्ध माँडहु एक एक अनेक कै।
बाप को तब हौं तिलोदक दीह देहुँ बिबेक कै ॥३४॥

राम—(दोहा)—कोऊ मेरे बंस मैं करिहै तोसौं जुद्ध।
तब तेरो मन होइगो अंगद मोसौं सुद्ध ॥३५॥

बिधि सौं पायँ पखारि कै राम जगत के नाह।
दीन्हे ग्राम सनौढ़ियन, मथुरामंडल माह ॥३६॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामराज्याभिषेकवर्णनन्नाम षड्विंशः प्रकाशः ॥२६॥

---

[२८] सम–स्यौं (कौमुदी)। नर०–नहिं नरदेव अदेव (वही); नहिं नरदेव के देव (प्रताप०); भू नरदेवनि देव (सर०)। [२९] बहु–भुव (प्रताप०, सर०)। [३०] निज–अति (दीन० १)। [३१] तपबृद्धि–तपबृत्त (कौमुदी); बहु बृद्ध (दीन० २)। [३३] अदेव–नृदेव (दीन०)। [३४] नैरि०–रिच्छ आदिक (दीन० २)। सन–सह (दीन०); सौं (सर०)। [३५] मो–हम (दीन०)।

२७

ब्रह्मा (झूलना)—तुम हौ अनंत अनादि सर्बग सर्बदा सरबज्ञ।
अब एक हौ कि अनेक हौ महिमा न जानत अज्ञ।
भ्रमिबो करैं जन लोक चौदहु लोभ-मोह-समुद्र।
रचना रची तुम ताहि जानत हौं न ब्रह्म न रुद्र ॥१॥

(दंडक)

अमलचरित तुम बैरिन मलिन करौ, साधु कहैं साधु परदार-प्रिय अति हौ।
एक थल थित पै बसत जगजनमध्य 'केसोदास' द्विपद पै बहुपद-गति हौ।
भूषन सकल जुत सीस धरैं भूमिभार भूतल फिरत पै अभूत भुवपति हौ।
राखौ गाइ ब्राह्मननि राजसिंह साथ चिर रामचंद्र राज करौ अद्भुतगति हौ ॥२॥

इंद्र—

बैरी गाइ-ब्राह्मन को ग्रंथन मैं सुनियत, कबिकुल ही के सुबरनहर-काज है।
गुरुसेजगामी एक बालकै बिलोकियत, मातंगन ही के मतवारे को सो साज है।
अरिनगरीन प्रति होत है अगम्यागौन दुर्गनहिं 'केसोदास' दुर्गति सी आज है।
देवताई देखियत गढ़न गढ़ोई जीवौ चिर चिर रामचंद्र जाको ऐसो राज है ॥३॥

पितर—

बैठे एक छत्रतर छाँह सब छिति पर सूरकुलकलस सुराह हितमति हौ।
त्यक्तबामलोचन कहत सब 'केसोदास' बिद्यमान लोचन द्वै देखियत अति हौ।
अकर कहावत धनुष धरे देखियत परम कृपालु पै कृतान्कर पति हौ।
चिर चिर राज करौ राजा रामचंद्र सब लोक कहैं नरदेव देव देवगति हौ ॥४॥

अग्नि—

चित्र ही मैं आज बर्नसंकर बिलोकियत ब्याह ही मैं नारिन के गारिन सौं काज है।
ध्वजै कंपजोगी, निसि चक्रै है बियोगी, द्विजराज-मित्र-द्वेषी एक जलद-समाज है।
मेघै तौ गगन पर गाजत नगर घेरि, अपजस डर, जस ही को लोभ आज है।
दुख्ख ही को खंडन है, मंडन सकल जग, चिर चिर राज करौ जाको ऐसो राज है॥५

---

[१] ब्रह्म—बेद (दीन० १, प्रताप०, सर०, कौमुदी)। [२] पै—यौं (कौमुदी); सु (दीन०, प्रताप०)। चिर—थिर (दीन० १, सर०); जग (दीन० २)। [३] कबि०—लोचननि ही के (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४] त्यक्त—हीन (दीन० १)। देव देव०—देवन की (दीन० २)। [५] द्वेषी—दोषी (प्रताप०, सर०, कौमुदी)। एक०—जल अधोगति साज (दीन० १); सब जग जल साज (दीन० २); जग जलद-उमाज (प्रताप०); जग जलज-समाज (सर०)। खंडन—दंडन (दीन० १, सर०)। चिर०—चिरजीवौ रामचंद्र (दीन०, सर०); चिर चिरजीवो राम (प्रताप०)।

वायु—राजा रामचंद्र तुम राजहु सुजस जाको
भूतल के आसपास सागर को पास सो
सागर मैं बड़भाग बेष सेषनाग कैसो
सेषजू मैं सुखदानि बिष्नु को निवास सो।
बिष्नुजू मैं भूरि भाव भव को प्रभाव जैसो
भवजू के भाल मैं बिभूति को बिलास सो।
भूति माहिं चंद्रमा सो चंद्र मैं सुधा को अंसु,
अंसुनि मैं 'केसोदास' चँद्रिकाप्रकास सो ॥६॥

देवगण—

राजा रामचंद्र तुम राज करौ सब काल दीरघ दुसह दुख दीनन को दारियै।
'केसोदास' मित्रदोष मंत्रदोष ब्रह्मदोष देवदोष राजदोष देस तैं निकारियै।
कलही कृतघ्न महिमंडल के बरिबंड पाखँड अखंड खंडखंड करि डारियै।
बंचक कठोर ठेलि कीजै बाट आठ आठ झूठ पाठ कंठ पाठकारी काठ मारियै ॥७॥

ऋषिगण—

भोगभार भागभार 'केसव' बिभूतिभार भूमिभार भूरि अभिषेकन के जल से
दानभार मानभार सकल सयानभार धनभार धर्मभार अक्षत अमल से।
जयभार जसभार राजभार राजत है रामसिर आसिष असेष मंत्रबल से।
देसदेस जत्रतत्र देखिदेखि तेहि दुख फाटत हैं दुष्टन के सीस दाखौंफल से ॥८॥

केशव—(विजय)

जाइ नहीं करतूति कही सब श्रीसबिता कबिता करि हारो।
याहि तें 'केसवदास' असीस पढ़ै अपनो करि नेकु निहारो।
कीरति देवन की दुलही जस दूलह श्रीरघुनाथ तिहारो।
सात रसातल सातहु लोकन सातहु सागर पार बिहारो ॥९॥

किन्नर, यक्ष, गंधर्व—(रूपमाला)

अजर अमर अनंत जय जय चरित श्रीरघुनाथ।
करत सुर नर सिद्ध अचरज श्रवन सुनि सुनि गाथ।
काय मन बच नेम जानत सिलासम परनारि।
सिला तैं पुनि परम सुंदरि करत नेक निहारि ॥१०॥

---

[६] पास—बास (दीन०, प्रताप०, सर०)। जू के—कैसो (वही)। सुखदानि—चंद्रभाग (दीन०, कौमुदी)। भाव—भाग्य (कौमुदी)। जैसो—सोई (वही) [७] अखंड—प्रचंड (कौमुदी)। कीजै०—कीजै बाराबाट आठ (वही)। [९] सातौ—सातहु लोकन सातहु दीपनि (दीन०); सातहु लोकनि सात रसातल (सर०)।

चँवर ढारत मातु ऊपर पानि पीड़ा होइ।
बिसदंड ज्यौं कोदंड हर को टूक कीन्हो दोइ।
साधु होइ असाधु राखत द्विजनहू को मान।
सकल-मुनिगन-मुकुटमनि को मर्दियो अभिमान ॥११॥

सूर सुंदर सरस रचि रति, करत रति कहँ लालि।
एकपत्नीव्रत निबाहत मदन को मद घालि।
सुखद सुहृद सुपूत सोदर हनत नृप जा काज।
पलक मैं सो राज्य छाँड्यो मातु पितु की लाज ॥१२॥

मंथरा सौं मोद मानत बिपिन पठयो ठेलि।
सुपनखा की नाक काटी करन आई केलि।
चंचु चाँपत आँगुरी सुक ऐंचि लेत डेराइ।
बंधुसहित कबंध के उर मध्य पैठे धाइ ॥१३॥

सर्बथा सर्बज्ञ सर्बंग सर्बदा रस एक।
अज्ञ ज्यौं सीता बिलोकी व्यग्र भ्रमत अनेक।
बान चूक्यो लक्ष्य कौं को गनै केतिक बार।
ताल सातौ बेधियो सर एक एकहि बार ॥१४॥

सापराध असाधु अति सुग्रीव कीन्हो मित्र।
अपराध बिन अति साधु बालिहि हन्यो जानि अमित्र।
चलत जब चौगान कौं लै चलत दल चतुरंग।
देवसत्रुहि चले जीतन रिक्ष बानर संग ॥१५॥

भूलिहू जा तन निहारत गुरु सो गिरिन समान।
निगरु देखे भए गिरिगन जलधि मैं ज्यौं पान।
जतन जतनहि तरत सरजू डौंडि डोलत डीठि।
गए सागर-पार दै पग प्रगट पाहन-पीठि ॥१६॥

बाजि गज रथ बाहनी चढ़ि चलत अमित सुभाइ।
लंक मैं बिन पानहीँ निज गए अपने पाइ।
जज्ञ को फल गहत जतननि जज्ञपुरुष कहाइ।
बैर जूँठे दियो सबरी भक्षियो सुख पाइ ॥१७॥

---

[१२] सूर–सुघर (कौमुदी); सिद्ध (दीन० २)। सरस–सुरुचि (वही)। रचि० रचिरचि (प्रताप०); लखि करि (दीन० २), रति रचि (कौमुदी)। करत–कीर्ति (वही) [१३] ठेलि–पेलि (कौमुदी)। [१४] व्यग्र–बिज्ञ (दीन० १, प्रताप०, सर०)। [१६] देखे–देखत (दीन०, प्रताप०)। पान–जान (सर०)। डौंडि–डीठि (दीन०, प्रताप०); देखि (सर०); डरत (कौमुदी)। पै–जग (दीन० २)। [१७] बाहनी–बाहनन (कौमुदी)। मैं०–लौं निरसंक नीकैं (प्रताप०, कौमुदी)।

कुसुम-कंदुक लगत काँपत मूँदि लोचनमूल ।
सत्रुसंमुख सहे हँसि हँसि सेल असि सर सूल ।
दूरि करत न दया दर्सत देह दंसत दंस ।
भई बार न करत रावनबंस कौं निरबंस ॥१८॥

बान बेझहि आन को लगि नाम अपनो लेत ।
काल सो रिपु आपु हति जयपत्र औरहि देत ।
पुन्य-कालन देत बिप्रन तौलि तौलि कनंक ।
सत्रुसोदर कौं दई सब स्वर्न ही की लंक ॥१९॥

होइ मुक्त सो जाहि इनको मरत आवै नाम ।
मुक्त एक न भए बानर मरे करि संग्राम ।
एक पल बिन पान खाए बार बार जम्हात ।
बर्ष चौदह नींद भूख पियास साधी गात ॥२०॥

छमे बरु अपराध अपने कोटि कोटि कराल ।
अपराध एक न छम्यो गो द्विज दीन को सब काल ।
जदपि लक्ष्मन करी सेवा सर्ब भाँति सभेव ।
तदपि मानत सर्बथा करि भरथ ही की सेव ॥२१॥

कहत इनको परम साँचे सकल राना राइ ।
तनक सेवा दास की कहँ कोटि गुनित बनाइ ।
डरत एक अपलोक तें ये जीति चौदह लोक ।
ठौर जाकहँ कहुँ न ताकहँ देत अपनो ओक ॥२२॥

छाँड़ि रिषि द्विज, देवरिषि रिषिराज सब सुख पाइ ।
प्रगट सकल सनौढ़ियन के प्रथम पूजे पाइ ।
छाँडि पितर त्रिसंकु, है बिपरीत जद्यपि देह ।
अवध के सब जात सूकर स्वान स्वर्ग सदेह ॥२३॥

---

[१८] सत्रु–समर (दीन०, प्रताप०) । रावन०–रावनराज (दीन०) । [१९] बेझहि–बेझे (कौमुदी) । सो–को (दीन०, प्रताप०, सर०) । आपु–जीति कै (दीन० २) । पत्र–तिलक (दीन०, प्रताप०) । और–आन (कौमुदी) । [२१] एक–आघ (दीन०, सर०) । छम्यो०–सहहिगो (दीन० २); छमि सकै (दीन० १); छमहिगो (प्रताप०, सर०) । सब–किहिँ (दीन०, सर०); तेहि (प्रताप०) । भाँति०–भावसमेत (दीन०, प्रताप०, सर०) । की०–सौं हेत (वही) । [२२] कौं–सौं (दीन०, प्रताप०, सर०) । राना–सुरगुरु (दीन० १) । एक–सब (कौमुदी) । ये०–जे जीव (वही) । [२३] रिषि०–द्विज द्विजराज ऋषि ऋषिराज अति (कौमुदी) । सुख०–सुखदाइ (दीन० १); हुलसाइ (कौमुदी) । सूकर०–स्वर्गहि सूकरादि (दीन० १) ।

एक पल उर माँझ आए हरत सब संसार ।
आइकै संसार मैं इन हर्यो भूतल-भार ।
सेष संभु स्वयंभु भाषत नेति निगमन जासु ।
ताहि लघुमति बरनि कैसे सकत केसवदासु ।।२४।।
(दोहा)—यहि बिधि चौदह भुवन के गावत मुनि जस-गाथ ।
प्रेमसहित पहिराइ सब बिदा किये रघुनाथ ।।२५।।
(झूलना)—अभिषेक की यह गाथ श्रीरघुनाथ की नर कोय ।
पल एक गावत पाइहै बहु पुत्र संपति सोय ।
जरि जाइगी सब बासना भव बिष्नुभक्त कहाइ ।
जमराज के सिर पाँउ दै सुरलोक लोकनि जाइ ।।२६।।

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां ब्रह्मादि-स्तुतिवर्णनं नाम सप्तविंशः प्रकाशः ॥२७॥

२८

(भुंजगप्रयात)

अनंता सबै सर्बदा सस्यजुक्ता । समुद्रावधिः सप्तईतिर्बिमुक्ता ।
सदा बृक्ष फूले फले तत्र सोहैं । जिन्हैं अल्पधी कल्पसाखी बिमोहैं ।।१।।
सबै निम्नगा क्षीर के पूर पूरी । भई कामगो सी सबै धेनु रूरी ।
सबै बाजि स्वर्बाजि तैं तेजपूरे । सबै दंति स्वर्दंति तैं दर्परूरे ।।२।।
सबै जीव हैं सर्बदानंद पूरे । क्षमी संजमी बिक्रमी साधु सूरे ।
जुवा सर्बदा सर्बबिद्याबिलासी । सदा सर्बसंपत्तिसोभाप्रकासी ।।३।।
चिरंजीवि संजोग-जोगी अरोगी । सदा एकपत्नीव्रती भोगभोगी ।
सबै सीलसौंदर्य सौगंधधारी । सबै ब्रह्मज्ञानी गुनी धर्मचारी ।।४।।
सबै स्नानदानादिकर्माधिकारी । सबै चित्तचातुर्यचिंताप्रहारी ।
सबै पुत्रपौत्रादि के सुख्ख साजैं । सबै भक्त माता-पिता के बिराजैं ।।५।।
सबै सुंदरी सुंदरी साधु सोहैं । सची सी सती सी जिन्हैं देखि मोहैं ।
सबै प्रेम की पुन्य की सद्मिनी सी । सबै चित्रिनी पुत्रिनी पद्मिनी सी ।।६।।

---

[२४] भाषत—गावत (दीन० १) । -न—सु (दीन० १), हु (कौमुदी) । लधु०—बपुरा (दीन० २) । सकत—कहै (दीन० १) । [२५] भुवन—लोक (दीन० १) । गावत०—जन गाए (कौमुदी); गावत जन (प्रताप०) । पहिराइ—सुख पाइ (वही) । [२६] भव०—जग रामभक्त (कौमुदी) । लोकनि—बसिहै (वही) । पाल०—मुख माँझ गाइ सुनाइहै फल पाइहै सुभ सोइ (दीन०) ।

[१] सस्य—सत्व (दीन० १) । [३] हैं—तौ (दीन०, सर०) । [४] गुनी-व्रती (दीन० २) । धर्म०—धर्मधारी (दीन० १) । [५] चित्त—सत्य (दीन० २, सर०); सबं (दीन० १) । [६] पुन्य०—जुक्ति सी (दीन० १) । सी—ह (दीन०) ।

भ्रमैं संभ्रमी जत्र सोकै ससोकी। अधर्मैं अधर्मी अलोकै अलोकी।
दुखै तौ दुखी ताप तापाधिकारी। दरिद्रै दरिद्री बिकारै बिकारी ॥७॥

(चौपही)—होमधूममलिनाई जहाँ। अति चंचल चलदल हैं तहाँ।
बालनास है चूड़ाकर्म। तीछनता आयुध के धर्म ॥८॥

लेत जनेऊ भिक्षादानु। कुटिल चाल सरितानि बखानु।
ब्याकरनै द्विज बृत्तिन हरैं। कोकिलकुल पुत्रन परिहरैं ॥९॥

फागुहि निलज लोग देखियै। जुवा दिवारी कौं लेखियै।
नित उठि बेझोई मारियै। खेलत मैं कैहूँ हारियै ॥१०॥

(दंडक)

भावै जहाँ ब्यभिचारी बैदै रमै परनारी, द्विजगन दंडधारी चोरी परपीर की।
मानिनीन ही के मन मानियत मानभंग, सिंधुहि उलंघि जाति कीरति सरीर की।
मूलै तौ अधोगतिन पावत है 'केसोदास' मीचु ही सों है बियोग इच्छा गंगानीर की।
बंध्या बासनानि जानु बिधवा सुबाटिकाई, ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की॥११

(दोहा)—कबिकुल ही के श्रीफलन उर अभिलाष समाज।
तिथि ही को क्षय होत है रामचंद्र के राज ॥१२॥

(दंडक)

लूटिबे के नातें पापपट्टनै तौ लूटियत, तोरिबे कौं मोहतरु तोरि डारियत है।
घालिबे के नातें गर्ब घालियत देवन के, जारिबे के नातें अघओघ जारियत है।
बाँधिबे के नातें ताल बाँधियत 'केसोदास' मारिबे के नातें तौ दरिद्र मारियत है।
राजा रामचंद्रजू के नाम जग जीतियत, हारिबे के नातें आन जन्म हारियत है ॥१३

(चंद्रकला)

सबकें कलपद्रुम के बन हैं सबकें बर बारन गाजत हैं।
सबकें घर सोभित देवसभा सबकें जयदुंदुभि बाजत हैं।
निधि सिद्धि बिसेष असेषन सों सब लोग सबै सुख साजत हैं।
कहि 'केसव' श्रीरघुराज के राज सबै सुरराज से राजत हैं ॥१४॥

(दंडक)

जूझहि मैं कलह कलह-प्रिय नारदै, कुरूप है कुबेरै लोभ सबके चयन को।
पापन की हानि डर गुरुन को बैरी काम, आगि सर्बभक्षी दुखदायक अयन को।

---

[७] संभ्रमी–संभ्रमै (दीन०)। तौ–है (कौमुदी०)। [९] लेत–देत (दीन०, सर०)। [१०] नित–दिन (दीन०, सर०)। [११] पर०–चित धीर (दीन०, सर०)। सु–है (वही)। [१३] घालियत०–घालियै अदेवन (दीन०)। नाम–राज (वही)। [१४] जय–घर (दीन०)।

बिद्या ही मैं बादु बहुनायक है बारिनिधि, जारज है हनुमंत मीत उदयन को।
आँखिन अछत अंध नारिकेर, कुस कटि, ऐसो राज राजै राम राजिवनयन को ॥१५॥

(दोहा)—कुटिल कटाक्ष कठोर कुच, एकै दुख्ख अदेय।
द्विस्वभाव अस्लेष मैं, ब्राह्मन जाति अजेय ॥१६॥

(तोमर)—बहु सब्द बंचक जानि। अलि पस्यतोहर मानि।
नर छाँहई अपवित्र। सर खड्ग निर्दय मित्र ॥१७॥

(सोरठा)—गुन तजि अवगुनजाल, गहत नित्यप्रति चालनी।
पुंस्चलीति तेहि काल, एकै कीरति जानियै ॥१८॥

(दोहा)—धनदलोक सुरलोकमय, सप्तलोक के साज।
सप्तद्वीपवति महि बसी, रामचंद्र के राज ॥१९॥

दस सहस्र दस सै बरष, रसा बसी यहि साज।
स्वर्ग नरक के मग थके, रामचंद्र के राज ॥२०॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामराज्यवर्णनं नामाष्टविंशः प्रकाशः ॥२८॥

२९

(चौपही)—एक काल अति रूपनिधान। खेलन कौं निकरे चौगान।
हाथ धनुष-सर मन्मथ-रूप। संग पयादे सोदर भूप ॥१॥

जाको जबही आयसु होइ। जाइ चढ़ै गज-बाजिन सोइ।
पसुपति से रघुपति देखियै। अनुगत-सेष महा लेखियै ॥२॥

बीथी सब असवारिन भरी। हय हाथिन सों सोहत खरी।
तरु पुंजन स्यों सरिता भली। मानहु मिलन समुद्रहिं चली ॥३॥

यहि बिधि गए राम चौगान। सावकास सब भूमि समान।
सोभन एक कोस परिमान। रची रुचिर तापर चौगान ॥४॥

---

[१५] मैं–को (दीन०)। [१६] मैं–ही (दीन०)।

[१] निकरे–निकसे (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२] अनु०–अनुगन (कौमुदी)। सेष–सैन (दीन०, प्रताप०, सर०, कौमुदी)। [४] रची–रच्यो (काशि०)।

एक कोद रघुनाथ उदार। भरथ दूसरी कोद बिचार।
सोहत हाथे लीन्हेँ छरी। कारी पीरी राती हरी ॥५॥

देखन लगो सब जगजाल। डारि दयो भुव गोला हाल।
गोला जाइ जहाँ जहँ जबै। होत तहाँ तितही तित सबै ॥६॥

मनौ रसिक लोचन रुचिरचे। रूपसंग बहु नाचनि नचे।
लोकलाज छाँडे अँगअंग। डोलत जनु जनमन के संग ॥७॥

गोला जाके आगेँ जाइ। सोई ताहि चलै अपनाइ।
जैसेँ तियगन कौँ पति रयो। जेहि पायो ताही को भयो ॥८॥

उत तेँ इत इत तेँ उत होइ। नेकौ ढील न पावै सोइ।
काम क्रोध मद मढ़्यो अपार। मानौ जीव भ्रमै संसार ॥९॥

जहाँ तहाँ मारै सब कोइ। ज्यौँ नर पंच-बिरोधी होइ।
घरी घरी प्रति ठाकुर सबै। बदलत बासन बाहन तबै ॥१०॥

(दोहा)—जब जब जीतैँ हाल हरि, तब तब बजत निसान।
हय गय भूषन भूरि पट, दीजत लोगनि दान ॥११॥

(चौपही)—तब तेहि समय एक बेताल। पढ़्यो गीत गुनि बुद्धिबिसाल।
गोलन की बिनती सुख पाइ। रामचंद्र सौँ कीन्ही आइ ॥१२॥

(दंडक)

पूरब की पूरा पूरी पापर पुरी से तन, बापुरी वै दूरिहि तेँ पायन परति हैँ।
दक्षिन की जक्षिनी सी गच्छैँ अंतरिक्ष मग, पच्छिम की पक्षहीन पक्षी ज्यौँ डरति हैँ
उत्तर की देती हैँ उतारि सरनागतनि, बातन उतायली उतार उतरति हैँ।
गोलन की मूरतिन दीजियै जू अभैदान, रामबैर कहाँ जायँ बिनती करति हैँ ॥१३॥

---

[५] कोद—कैत (दीन०)। हाथे—हाथनि (दीन०, प्रताप०, सर०)। [६] हाल—लाल (दीन०, प्रताप०, सर०)। तहाँ—सबै (दीन०,सर०); तितैँ (दीन०); सुजुगुति (प्रताप०)। सबै—तबै (दीन० १, प्रताप०, सर०)। [७] जनु०—मन जनु (दीन० १); जिय ज्यौँ (दीन० २); तनु बिय (सर०)। मन के—जाया (कौमुदी)। [८] ताहि०—तहाँ चलै अकुलाइ (दीन० १) [९] ढील—ठालि (दीन० १); गली (प्रताप०, सर०)। क्रोध—लोभ (दीन० २); मोह (प्रताप०)। मद—जनु (दीन० १)। मढ़्यो—बँध्यो (दीन०, सर०)। मानौ—जैसेँ (कौमुदी)। [१०] नर—जन (दीन० १)। बासन०—बाहन घंटक (दीन० १); बासन सबहिन (दीन० २)। [११] हरि—प्रभु (दीन० २)। लोगनि—बिप्रनि (दीन० १)। [१२] गुनि—गुन (दीन० १)। पढ़्यो०—बढ़ो बुद्धि गुन रूप (दीन० २)। [१३] पूरा०—पुरी पूरी पापरी (दीन० १)। जक्षिनी—पक्षिनी (कौमुदी); दक्षिनी (दीन० १)। डरति—उरति (प्रकाशिका, कौमुदी)। दान—पद (दीन० २)।

(चौपही)—गोलन की बिनती सुनि ईस। घर कौं गमन कर्‌यो जगदीस।
पुर पैठत अति सोभा भई। बीथिन असवारी भरि गई ॥१४॥

मनौ सेतु मिलि सहित उछाह। सरितन के फिरि चले प्रबाह।
ताही समै दिवस नसि गयो। दीप-उदोत नगर महँ भयो ॥१५॥

नखतन की नगरी सी लसी। मानौ अवध दिवारी बसी।
नगर असोक बृक्ष रुचि रयो। मधु प्रभु देखि प्रफुल्लित भयो ॥१६॥

अध, अधफर, ऊपर आकास। चलत दीप देखियत प्रकास।
चौकी दै जनु अपने भेव। बहुरे देवलोक कौं देव ॥१७॥

बीथी बिमल सुगंध समान। दुहुँ दिसि दीसत दीप-प्रमान।
महाराज कौं सहित सनेह। निज नैननि जनु देखत गेह ॥१८॥

बहु बिधि देखत पुर के भाइ। राजसभा महँ बैठे जाइ।
पहर एक निसि बीती जहीँ। बिनती कौं सुक आयो तहीँ ॥१९॥

शुक—(हरिप्रिया)

पौढ़िये कृपानिधान, देवदेव रामचंद्र,
चंद्रिकासमेत चंद्र, रैनि चित्त मोहै।
मनहु सुमन सुमति संग, रुचे रुचिर सुकृत रंग,
आनँदमय अंग-अंग, सकल सुखन सोहै।
ललित लतन के बिलास, भ्रमरबृंद ह्वै उदास,
अमल कमल-कोस आसपास बास कीन्हे।
तजि तजि माया दुरंत, भक्त रावरे अनंत,
तव पद कर नैन बैन, मानहु मन दीन्हे ॥२०॥

घर घर संगीत गीत, बाजन बाजैं अजीत,
काम भूप आगम जनु, होत हैं बधाए।
राजभौन आसपास, दीपबृक्ष के बिलास,
जगति जोति जोबन जनु जोतिवंत आए।
मोतिनमय भीति नई, चंद्रचंद्रिकानि मई,
पंक-अंक-अंकित भव, भूरि भेद सौं करी।

---

[१४] बीथिन०—बीथी असवारनि (दीन० १, प्रताप०, सर०)। ताही-तेही (प्रताप०, सर०)। दिवस—सुरुज (दीन० १)। नसि—निसि (दीन० २, प्रताप०, सर०)। [१७] देखियत—दीपत (दीन० १); देखौ सब बास (दीन० २)। [१८] समान—प्रमान (दीन० १)। प्रमान—अमान (कौमुदी)। दुहुँ०—ताहि करनि को कहै बखान (दीन० १)। [१९] राज—राम (दीन० २)। [२०] रामचंद्र—रामदेव (दीन०, प्रताप०, सर०)।

मानहु ससि पंडित करि, जोन्ह जोति मंडित श्री-,
खंड सैल की अखंड, सुभ्र सुंदरी दरी ॥२१॥

एक दीप दुति बिभाति, दीपति मनि दीपपाँति,
मानहु भुवभूप तेज, मंत्रिन मय राजै।
आरे मनिखचित खरे, बासन बहु बास भरे,
राखत गृह गृह अनेक, मनहु मैन साजै।
अमल, सुमिल, जलनिधान, मोतिन के सुभ बितान,
तातर पलिका जराय जटित, जीव हरषै।
कोमल तापर रसाल, तनसुख की सेज लाल,
मनहु सोम सूरज पै, सुधाबिंदु बरषै ॥२२॥

फूलन के बिबिध हार, घुरिलनि उरमति उदार,
बिच बिच मनिस्याम हार, उपमा सुक भाषी।
जीत्यो सब जगत जानि, तुमसों हरि हार मानि
मनहु मदन निज धनु तें गुन उतारि राखी।
जल थल फल फूल भूरि, अंबर पटबास धूरि,
स्वच्छ जक्षकर्दम हिय देवन अभिलाषे।
कुंकुम मेदोजबादि, मृगमद करपूर आदि,
बीरा बनितन बनाइ, भाजन भरि राखे ॥२३॥

पन्नगी नगी कुमारि, आसुरी सुरी निहारि,
बिबिध बीन किंनरीन, किंनरी बजावैं।
मानौ निष्काम भक्ति, सक्ति आप आपनीन,
देहनि धरि प्रेमनि भरि, भजनभेद गावैं।
सोदर, सामंत, सूत, सेनापति, दास, दूत,
देस देस के नरेस, मंत्रि मित्र लेखियै।
बहुरे सुर असुर सिद्ध, पंडित मुनि कबि प्रसिद्ध,
'केसव' बहु राय राज, राजलोक देखियै ॥२४॥

(दोहा)—कहि 'केसव' सुक के बचन, सुनि सुनि परम बिचित्र।
राजलोक देखन चले, रामचंद्र जगमित्र ॥२५॥

---

[२१] बधाए, आए—बधायो, आयो (कौमुदी)। भूरि०—भेद सों प्रकासै (प्रताप०); भूरि भेदवारी (कौमुदी)। सुंदरी०—दरी भासै (प्रताप०); दरी सारी (कौमुदी)। [२२] बासन—भाजन (दीन० २)। तातर—तापर (प्रकाशिका); तामहँ (कौमुदी)। जापर—तनु तरु (दीन० २)। [२३] हरि—हिय (कौमुदी); प्रभु (प्रताप०)। कर्दम—गँधर्ब तिय (दीन० २)। हिय-जिय (दीन० १, प्रताप०, सर०)। [२४] आपनीन—आपनी सु (दीन० २, कौमुदी)।

(नराच)

सुदेस राजलोक आसपास कोट देखियो। रची बिचारि चारि पौँरि पूरबादि लेखियो
सुबेष एक सिंहपौरि एक दंतिराज है। सु एक बाजिराज एक नंदिबेष साज है ॥२६॥

(दोहा)—पाँच चौक मध्यहि रचे, सात लोक, तरहारि।
षट ऊपर तिनके तहाँ, चित्रे चित्र बिचारि ॥२७॥

(चामर)

भोज एक चौक मध्य, दूसरे रची सभा। तीसरे बिचार मंत्र और नृत्य की प्रभा।
मध्य चौक मैं तहाँ बिदेहकन्यका बसै। सर्ब भाव रामचंद्रलीन सर्बथा लसै ॥२८॥

(दोधक)—मंदिर कंचन को एक सोहै। सेत तहाँ छतुरी मन मोहै।
सोहत सीरष मेरुहिँ मानौ। सुंदर देव-दिवान बखानौ ॥२९॥

मंदिर लालन को एक सोहै। स्याम तहाँ छतुरी मन मोहै।
ताहि यहै उपमा सब साजै। सूरज अंग मनौ सनि राजै ॥३०॥

मंदिर नीलन को एक सोहै। सेत तहाँ छतुरी मन मोहै।
मानहु हंसन की अवली सी। प्राबिट-काल उड़ाइ चली सी ॥३१॥

मंदिर सेत लसै अति भारी। सोहत है छतुरी अति कारी।
मानहु ईस्वर के सिर सोहै। मूरति रावव की मन मोहै। ३२॥

(तोटक)—सब धामन मैं एक धाम बन्यो। अति सुंदर सेत सरूप सन्यो।
सनि सूर बृहस्पति मंडल मैं। परिपूरन चंद्र मनौ बल मैं ॥३३॥

(चौपाई)—बहुधा मंदिर देखे भले। देखन सुभ्र सालिका चले।
सीत भीत ज्यौं नैक न त्रसै। पलक बसनसाला महँ लसै ॥३४॥

जलसाला चातक ज्यौं गए। अलि ज्यौं गंधसालिका ठए।
निपट रंक ज्यौं सोभित भए। मेवा की साला मैं गए ॥३५॥

चतुर चोर से सोभत भए। धरनीधर धनसाला गए।
मानिनीन कैसे मन भेव। गए मानसाला मैं देव ॥३६॥

---

[२८] और–चौथ (कौमुदी)। [२९] मंदिर–मंडप (कौमुदी)। सेत०–चित्त तहाँ छतुरी सन (दीन० १)। [३०] मंदिरि–मंडप (कौमुदी)। ताहि०–ताहित या उपमा हिव (वही)। साजै, राजै–जानौ, मानौ (दीन० २)। [३१] मंदिर–मंडप (कौमुदी)। नीलन–नीलम (कौमुदी)। नीलम०–नील लखै मन लोभै (दीन०१); नील बन्यो भन लोभै (दीन०२)। प्राबिट-पावस (दीन० १)। मन०–इक सोहै (दीन०२); गन सोहै (दीन० १)। [३२] मंदिर–मंडप (कौमुदी)। अति–सुभ (दीन० २); सुख (दीन० १)। [३३] सुंदर०–उत्तम रूपनि रूप (दीन० १)। [३४] सुभ्र–बस्त्र (कौमुदी)। लसै–बसै (दीन० २)। [३६] ठए–रए (दीन० १)।

मंत्रिन स्यों बैठे सुख पाइ। पलक मंत्रसाला मँ जाइ।
सुभ सिँगारसाला कोँ देखि। उलटे ललित नयन से लेखि ॥३७॥

(तोटक)—जब रावर मँ रघुनाथ गए। बहुधा अवलोकत सोभ भए।
सब चंदन की सुभ सुद्ध करी। मनिलालसिरानि सुधारि धरी ॥३८॥

बरँगा अति लाल सुचंदन के। उपजे बन सुंदर नंदन के।
गजदंतन की सुभ सीँक नई। तिन बीचन बीचन स्वर्नमई ॥३९॥

तिनके सुभ छप्पर छाजत हैँ। कलसा मनि नील बिराजत हैँ।
अति अद्भुत थंभन की दुगई। गजदंत सुकंचन चित्रमई ॥४०॥
तिन माँझ लसैँ बहुभायन के। सुभकंचन फूल जरायन के ॥४१॥

(रूपमाला)

बर्न बर्न जहाँ तहाँ बहुधा तने सुबितान। झालरैँ मुकुतान की अरु झूमके बिन मान
चौकठैँ मनि नील की फटिकान के सुकपाट। देखि देखि सो होत हैँ सब देवता जनु भाट
सेत पीत मनीन के परदे रचे रुचिलीन। देखिकै तहँ देखियै जनु लोल लोचन मीन
सुभ्र हीरन को सुअंगन हैँ हिँडारा लाल। सुंदरी जहँ झूलहीँ प्रतिबिंब के तहँ जाल

(स्वागता)—धाम धाम प्रति आसन सोह। देखि देखि रघुनाथ बिमोहँ।
बर्नि सोभ कबि कौन कहै जू। जत्र तत्र मन भूलि रहै जू ॥४४॥

(दोहा)—जाके रूप न रेख गुन, जानत बेद न गाथ।
रंगमहल रघुनाथ गे, राजश्री के साथ ॥४५॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां
लोकवर्णनन्नामैकोनत्रिंशः प्रकाशः ॥२९॥

---

[३७] उलटे–पलटे (कौमुदी)। से–सौँ (दीन०, प्रताप०)। लेखि–देखि (कौमुदी)। [३८] बहुधा–चहुधाँ (कौमुदी)। [४०] छप्पर–छत्तर (दीन० २)। लाल–नील (दीन०)। [४१] सुभ–बहु (दीन० २)। कौमुदी में ये पंक्तियाँ अधिक हैँ—

तिनकी उपमा मन क्यौँहुँ न आवै। बहुलोकन को बहुभाँति भ्रमावै।

[४२] बहुधा०–बहुभाँति के (दीन० २)। [४३] तहँ–जनु (दीन० १)। जनु–सम (दीन० १); जहँ (दीन० २)। तहँ–सुभ (दीन० १); गन (दीन० २)। [४५] रघुनाथ०–मैं राम (दीन०, प्रताप०, सर०)।

३०

(चतुष्पदी)—दुति रंगमहल की, सहसबदन की, बरनै मति न बिचारी।
अध ऊरध राती, रंग-सँघाती, रुचि बहुधा सुखकारी।
चित्री बहुत चित्रनि, परम बिचित्रनि, रघुकुलचरित सुहाए।
सब देव अदेवनि, अरु नरदेवनि, निरखि निरखि सिर नाए ॥१॥
आईं बनि बाला, गुन-गन-माला, बुधिबल रूपन बाढ़ी।
सुभ जाति चित्रिनी चित्रगेह तें, निकसि भईं जनु ठाढ़ी।
मानौ गुनसंगनि, यौं प्रतिअंगनि, रूपक-रूप बिराजैं।
बीनानि बजावैं, अद्भुत गावैं, गिरा रागिनी लाजैं ॥२॥

(पद्धटिका)

स्वर नाद ग्राम नृत्यति सताल। मुखबर्ग बिबिध आलाप काल।
बहु कला जाति मूर्छना मानि। बड़ भाग गमक गुन चलत जानि ॥३॥
बहुबर्न बिबिध आलाप कालि। मुखचालि, चारु अरु सब्दचालि।
बहु उड्डुप, त्रियगपति, पति, अडाल। अरु लाग, धाउ, रापैरँगाल ॥४॥
उलथा टेकी, आलम, स-दिंड। पदपलटि, हुस्मयी, निसँक, चिंड।
असु तिनकी भ्रमनि देखि मतिधीर। भ्रमि सीखत है बहुधा समीर ॥५॥

(मोटनक)—नाचैं रस बेष असेष तबै। बर्षैं सुरसैं बहु भाँति सबै।
नौहूँ रस मिश्रित भाव रचैं। कौनौ नहिं हस्तकभेद बचैं ॥६॥

(दोहा)—पायँ पखाउज ताल स्यौं, प्रतिधुनि सुनियत गीत।
मानहु चित्र बिचित्रमति, पढ़त सकल संगीत ॥७॥
अमल कमलकर आँगुरी, सकल गुनन की मूरि।
लागत मूठ मृदंगमुख, सब्द रहत भरिपूरि ॥८॥

(दंडक)

अपघन घाय न बिलोकियत घायलनि, घनो सुख 'केसोदास' प्रगट प्रमान है।
मोहै मन, भूलै तन, नयन रुदन होत, सूखै सोच पोच, दुख-मारन-बिधान है।

---

[१] महल–सदन (दीन०, प्रताप०)। [२] माला–साला (दीन०, सर०)। यौं–स्यौं (कौमुदी)। [३] मुख–सुख (प्रताप०, सर०); सुभ (दीन०, कौमुदी)। बर्ग–गावँ (दीन० १, सर०); बरन (कौमुदी)। चलत–नचत (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४] बहु०–बहु बचन (प्रताप०, सर०); सुभ गान (कौमुदी)। [५] तिनकी०–तियन भ्रमनि लखि (कौमुदी)। बहुधा–सतधा सु (दीन० १, प्रताप०)। [६] भेद–भाव (दीन० २)। [७] पढ़त०–सिखत नृत्य (कौमुदी)। [८] मूठ–पाप (कौमुदी)।

आगम अगम तंत्र सोधि, सब जंत्र मंत्र, निगम, निवारिबे कौं केवल अयान है।
बालनि को तनत्रान, अमित अमान स्वर, रीझि रामदेव कहँ काम कैसो बान है॥९।

(दोहा)—कोटि भाँति संगीत सुनि, 'केसव' श्रीरघुनाथ।
सीताजू के घर गए, गहँ प्रीति को हाथ॥१०॥

(सुंदरी)

सुंदरि मंदिर मैं मन मोहति। स्वर्नसिंहासन ऊपर सोहति।
पंकज के करहाटक मानहु। है कमला बिमला यह जानहु॥११॥

फूलन को सु बितान तन्यो बर। कंचन की पलिका इक ता तर।
जोति जराय जर्‍यो अति सोभनु। सूरजमंडल तें निकस्यो जनु॥१२॥

(कुसुमविचित्रा)

दरसत ही नैनन रुचि बनै। बसन बिछाए सब सुख सनै।
अति सुचि सोहैं कबहुँ न सुन्यो। जनु तनु लैकै ससिकर चुन्यो॥१३॥

(चौपही)—चंपकदल दुति के गँडुए। मनहु रूप के रूपक उए।
कुसुम गुलाबन की गलसुईं। बरनी जाइ न नयननि छुईं॥१४॥

(दोहा)—रामचंद्र रमनीयतर, तापर पौढ़े जाइ।
पदपंकज पखराइकै, कहि 'केसव' सुख पाइ॥१५॥

(तोमर)—जिनके न रूप रेख। ते पौढ़ियो नरबेष।
निसि नासियो तेहि बार। बहु बंदि बोलत द्वार॥१६॥

(दोहा)—राजलोक जाग्यो सबै, बंदीजन के सोर।
गए जगावन राम पै, सारिकादि उठि भोर॥१७॥

सारिका—(हरिप्रिया)

जागियै त्रिलोकदेव, देवदेव रामदेव,
भोर भयो, भूमिदेव भक्त दरस पावैं।
ब्रह्मा मन मंत्र बरन, बिष्नुहृदय-चातक घन,
रुद्रहृदय-कमल-मित्र, जगत गीत गावै।
गगन उदित रबि अनंत, सुक्रादिक जोतिवंत,
छिनछिन छबि छीन होत, लीन पीन तारे।

---

[९] यह 'दीन०' मैं नहीं है। [१०] कोटि–भाँति। (दीन० १)। घर०–गेह दीन० १); गेह गे (दीन० २, प्रताप०)। को–सौं (दीन०, प्रताप०, सर०)।] निकस्यो–उतर्‍यो (दीन० १)। [१३] अति०–नैननि कौं बहु भाँतन गुनै ० १)। जनु०–मानौ (काशि०, सर०)। चुन्यो–बनै (दीन० १)। [१४]

मानहु परदेस देस, ब्रह्मदोष के प्रवेस,
ठौर ठौर तें बिलात जात भूप भारे ॥१८॥

अमल कमल तजि अमोल, मधुप लोल टोल टोल,
बैठत उड़ि करि-कपोल, दान-मानकारी।
मानहु मुनि ज्ञानबृद्ध, छोड़ि छोड़ि गृह समृद्ध,
सेवत गिरिगन प्रसिद्ध, सिद्ध सिद्धि-धारी।
तरनि-किरनि उदित भई, दीपजोति मलिन गई,
सदय हृदय बोध-उदय, ज्यौं कुबुद्धि नासै।
चक्रवाक निकट गई, चकई मन मुदित भई,
जैसे निज जोति पाइ, जीव जोति भासै ॥१९॥

अरुन तरनि के बिलास, एक दोइ उडु अकास,
कलि कैसे संत ईस, दिसन अंत राखै।
दीसत आनंदकंद निसि खिन दुतिहीन चंद,
ज्यौं प्रबीन जुवतिहीन पुरुष दीन भाखै।
निसिचरचय के बिलास, हास होत है निरास,
सूर के प्रकास त्रास, नासत तम भारे।
फूलत सुभ सकल गात असुभ सैल से बिलात,
आवत ज्यौं सुखद राम नाम मुख तिहारे ॥२०॥

सारो सुक सुभ मराल, केकी कोकिल रसाल,
बोलत कल पारावत, भूरि भेद गुनियै।
मनहु मदन पंडित रिषि, सिष्य गुनन मंडित करि,
अपनी गुदरैनि देन, पठए प्रभु सुनियै।
सोदर सुत मंत्रि मित्र, दिसि दिसि के नृप बिचित्र,
पंडित मुनि कबि प्रसिद्ध, सिद्ध द्वार ठाढ़े।
रामचंद-चंद ओर मानहु चितवत चकोर,
कुबलय जल जलधि जोर, चोप चित्त बाढ़े ॥२१॥

नचत रचत रुचिर एक, जाचक गुनगन अनेक,
चारन मागध अगाध, बिरद बंदि टेरे।
मानहु मंडूक मोर, चातक चय करत सोर,
तड़ित बसन संजुत घन स्याम हेत तेरे।

---

[१८] हृदय–चित्त (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२०] दीसत–दीखत (कौमुदी)। खिन–बिनु (दीन०, प्रताप० सर०, कौमुदी)। हीन–मंद (दीन० १, सर०)। नासत–भागत (दीन० १)। [२१] पठए–आए (दीन० १)।

'केसव' सुनि बचन चारु, जागे दसरथ-कुमारु,
रूप प्याइ ब्याइ लीन, जन जल थल ओक के।
बोलि हँसि बिलोकि बीर, दान मान हरी पीर,
पूरे अभिलाष लाख, भाँति लोक लोक के ॥२२॥

(दोहा)—जागत श्रीरघुनाथ के, बाजे एकहि बार।
निगर नगारे नगर के, 'केसव' आठहु द्वार ॥२३॥

(मरहट्ठा)—दिन दुष्ट निकंदन, श्रीरघुनंदन, आँगन आए जानि।
आईं नव नारी, सुभग सिंगारी, कंचनझारी पानि।
दात्योनि करत हैं, मननि हरत हैं, बोरि बोरि घनसार।
सजि सजि बिधि मूकनि, प्रति गंडूषनि, डारत गहत अपार ॥२४॥

(दोहा)—संध्या करि रबि पाँय परि, बाहिर आए राम।
गनक चिकित्सक आसिषा, बंधुन किये प्रनाम ॥२५॥

(मरहट्ठा)—सुनि सत्रु-मित्र की, नृपचरित्र की, रैयत-रावत-बात।
सुनि जाचकजन के, पसुपक्षिन के, गुनगन अति अवदात।
सुभ तन मज्जन करि न्हान दान करि, पूजे पूरन देव।
मिलि मित्र सहोदर बंधु सुभोदर कीन्हे भोजन भेव ॥२६॥

(दंडक)

निपट नवीन रोगहीन बहुछीरलीन, पीन बक्ष पीन तन तापन हरत हैं
ताँबे मढ़ी पीठि लागे रूपे के खुरन डीठि, डीठि स्वर्न सृंग मन आनँद भरत हैं।
काँसे की दोहनी स्याम पाट की ललित नोई, घंटन सौं पूजि पूजि पाँयन परत हैं।
सोभन सनौढ़ियन रामचंद्र दिन प्रति, गोसत सहस्र दै कै भोजन करत हैं ॥२७॥

(तोटक)—तहँ भोजन श्रीरघुनाथ करैं। षट रीति मिठाइन चित्त हरैं।
पुनि खीर सौं चौबिधि भात बन्यो। तक तीनि प्रकारनि सोभ सन्यो ॥२८
षट भाँति पहीति बनाइ सँची। पुनि पाँच सो ब्यंजन रीति रची।
बिधि पाँच सो रोटिन माँगत हैं। बिधि पाँच बरा अनुरागत हैं ॥२९॥
बिधि पाँच अथान बनाइ किये। पुनि द्वै बिधि छीर सो माँगि लिये।
पुनि झारि सो द्वै बिधि स्वाद घने। बिधि दोइ पछ्यावरि सात पने ॥३०॥

---

[२२] ओक०—ओकै (कौमुदी)। लोक०—लोकै (वही)। [२३] निगर—निकर (कौमुदी)। [२४] बोरि०—ओर बोरि (कौमुदी)। [२७] तन—थन (कौमुदी)। तापन—हीयन (दीन० २, कौमुदी)। डीठि०—देखि देखि (दीन०२); डीठि देखि (कौमुदी); डीठि (सर०)। मन—देखि (प्रताप०); देखिकै (सर०); मई (दीन० १)। रामचंद्र—रामदेव (दीन०, प्रताप०, सर०)। दै०—दैदै (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२७] हरैं—करैं (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३०] अथान—सुथार (दीन० २, प्रताप०); सुथान (दीन० १, सर०)

(दोहा)—पाँच भाँति ज्योनारि सब षट रस रुचिर प्रकास।
भोजन करि रघुनाथजू बोले 'केसवदास' ॥३१॥

(हरिलीला)

बैठे बिसुद्ध गृह-अग्रज-अग्र जाइ। देखो बसंत रितु सुंदर मोददाइ।
बौरे रसाल कुल कोयल केलि काल। मानो अनंद-ध्वज राजत श्रीबिसाल ॥३२॥
फूली लवंग लवली लतिका बिलोल। भूले जहाँ भ्रमर बिभ्रम मत्त डोल।
बोलैं सुहंस सुक कोकिल केकिराज। मानो बसंत भट बोलत जुद्ध काज ॥३३॥
सोहै पराग चहुँ भाग उड़ै सुगंध। जातैं बिदेस बिरहीजन होत अंध।
पालासमाल बिन पत्र बिराजमान। मानो बंसत दिय कामहिँ अग्निबान ॥३४॥

(विजय)

फूले पलास बिलास थली बहु 'केसवदास' प्रकास न थोरे।
सेष असेष मुखानल की जनु ज्वाल बिसाल चली दिबि ओरे।
किंसुकश्री सुकतुंडन की रुचि राचै रसातल मैं चित चोरे।
चंचुनि चाँपि चहूँ दिसि डोलत चारु चकोर अँगारन भोरे ॥३५॥

(मोतियदाम)

जरैं बिरहीजन जोवत गात। धरे उर सीत लसे जलजात।
किधौं मन मीनन को रघुनाथ। पसारि दियो जनु मन्मथ हाथ ॥३६॥
जिते नर नागर लोग बिचारि। सबै बरनैं रघुनाथ निहारि।
किधौं परमानँद को यह मूल। बिलोकतहीँ सु हरै सब सूल ॥३७॥
किधौं बन जीवन को मधुमास। रचे जग-लोचन-भौंरँ-बिलास।
किधौं मधु को सुख देत अनंग। धर्‌यो मन-मीन निकारन अंग ॥३८॥
किधौं रति कीरति-बेलि-निकुंज। बसै गुन पक्षिन को जहँ पुंज।
किधौं सरसीरुह ऊपर हंस। किधौं उदयाचल ऊपर हंस ॥३९॥

(दोहा)—प्राची दिसि ताही समय, प्रगट भयो निसिनाथ।
बरनत ताहि बिलोकिकै सीता सीतानाथ ॥४०॥

(हरिणी)

फूलन की सुभ गेंद नई। सूँघि सची जनु डारि दई।
दर्पन सो ससि श्री रति को। आसन काम महीपति को ॥४१॥

---

[३३] भूले—झूले (दीन० १); फूले (दीन० २)। [३५] बहु—कहि (दीन०)। [३६] धरे—उधरे (काशि०, सर०, प्रकाशिका); अँधरे (दीन० २); खिले (कौमुदी)। किधौं—मनो (दीन०, प्रताप०, सर०)। जनु—बहु (कौमुदी)। [३७] मूल—फूल (दीन० २, प्रताप०)। सु—जु (कौमुदी)। [३९] बसै—बनै (प्रताप०, सर०)। ऊपर—के सिर (दीन०, प्रताप०)। हंस—अंस (प्रताप०)। [४१] नई०—नई है, दई है (कौमुदी)।

(हरिणी)—मोतिन को श्रुतिभूषन भनो। भूलि गई रवि की तिय मनो।
अंगद को पितु सो सुनियै। सोहत तारहि संग लियै ॥४२॥
भूप मनोभव छत्र धर्‌यो। लोक बियोगिन को बिडर्‌यो।
देवनदी-जल राम कर्‌यो। मानहु फूलि सरोज रह्यो ॥४३॥
फेन किधौं नभसिंधु लसै। देवनदी जल हंस बसै। ४४॥

(दोहा)—चारु चंद्रिका सिंधु मैं सीतल स्वच्छ सतेज।
मनो सेषमय सोभिजै हरिनाधिष्ठित सेज ॥४५॥

(दंडक)

'केसोदास' है उदास कमलाकर सो कर, सोषक प्रदोष ताप तमोगुन तारियै।
अमृत असेष के बिसेष भाव बरसत, कोकनद मोद चंड खंडन बिचारियै।
परमपुरुषपद-बिमुख परुष रुख, सुमुख सुखद बिदुषन उर धारियै।
हरि हैं री हिये मैं न हरिन हरिननैनी, चंद्रमा न चंद्रमुखी नारद निहारियै ॥४६॥

(दोहा)—आई जानि बसंत रितु बनहिं बिलोकत राम।
धरनीधर सीतासहित, रति समेत जनु काम ॥४७॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां वसंतदर्शनं नाम त्रिंशत्प्रकाशः ॥३०॥

३१

(चंचला)—भोर होत ही गयो सु राजलोक मध्य बाग।
बाजि आनियो सु एक इंगितज्ञ सानुराग।
सुभ्र सुद्ध चारिहून अंस रेनु के उदार।
सीखि सीखि लेत हैं ते चित्त चंचला प्रकार ॥१॥

(तोमर)—चढ़ि बाजि ऊपर राम। बन कौं चले तजि धाम।
चढ़ि चित्त ऊपर काम। जनु मित्र को सुनि नाम ॥२॥

---

[४२] भनो०—जानो, मानो (कौमुदी)। सुनियै—सुनियै जू (वही)। [४३] पादांत में 'ज्यौं, जू' अधिक (कौमुदी)। [४४] जल—जनु (दीन०)। 'कौमुदी' में ये दो चरण और है—संख किधौं हरि के कर सोहै। अंबर सागर ते निकसो है।

[१] सुद्ध—सुंभ (दीन०, प्रताप०, कौमुदी)।

मग मैं बिलंब न कीन। बनराज मध्य प्रबीन।
सब भूपरूप दुराइ। जुवती बिलोकौं जाइ ॥३॥

(स्वागता)—राम संग सुक एक प्रबीनो। सीयदासि गुन बर्नन कीनो।
केस पास सुभ स्याम सनेही। दास होत प्रभु जीव बिदेही ॥४॥
भाँति भाँति कबरी सुभ देखी। रूपभूप-तरवारि बिसेषी।
पीय प्रेम पन राखन हारी। दीह दुष्ट छल खंडन कारी ॥५॥

(चौपही)

किधौं सिँगार-सरित सुखकारि। बंचकतानि बहावनिहारी।
कंचन पत्रपाँति सोपान। मनौ सिँगार लोक के जान ॥६॥
सीसफूल अरु बँदा लसै। भाग सोहाग मनौ सिर बसै।
पाटिन चमक चित्त चौंधिनी। मानौ दमकति घन दामिनी ॥७॥
सेँदुर माँग भरी अति भली। तिहि पर मोतिन की आवली।
गंग-गिरा तन सौं तन जोरि। निकसीं जनु जमुना-जल फोरि ॥८॥
सीसफूल सुभ जर्‍यो जराय। माँगफूल सोहै सुभ भाय।
बेनीफूलन की बर माल। भाल भले बँदाजुत लाल ॥९॥
तम-नगरी पर तेजनिधान। बैठे मनौ बारहौ भान।
भृकुटि कुटिल बहु भायन भरी। भाल लाल दुति दीसत खरी ॥१०॥
मृगमद तिलक रेख जुग बनी। तिनकी सोभा सोभति घनी।
जनु जमुना खेलति सुभगाथ। परसन पितहि पसारे हाथ ॥११॥

(पंकजवाटिका)

लोचन मनहु मनोभव जंत्रनि। भ्रूजुग उपर मनोहर मंत्रनि।
सुंदर सुखद सुअंजन अंजित। बान मदन बिष सौं जनु रंजित ॥१२॥
सुखद नासिका जग मोहियो। मुक्ताफलनि जुक्त सोहियो।
आनँदलतिका मनहु सफूल। जनु सूँघि तजत ससि सकल सूल ॥१३॥

(पद्धटिका)

जनु भालतिलक-रबि अतहिं लीन। नृपरूप अकासहिँ दीप दीन।
ताटंक जटित मनि श्रुति बसंत। सब एकचक्र रथ से लसत ॥१४॥

---

[४] कीनो—लीनो (दीन०, प्रताप०) [५] पन—क्रम (दीन० १, प्रताप०, सर०)। दुष्ट०—बिरहदुख काटनहारी (दीन० १)। छल—बल (दीन० २)। [६] पत्र-पान (कौमुदी)। [९] सुभ—अति (दीन० १); सिर (दीन० २, सर०)। सुभ—सम (कौमुदी)। जुत—जुग (वही)। [१०] बैठे—ऊगे (दीन० १); मानो सोभत द्वादस भान (दीन० २)। [११] पसार्‍यो—पसारे (दीन०, प्रताप० सर०)। [१२] जंत्रनि०—जंत्रहि, मंत्रहि (कौमुदी)। [१३] जनु०—सूँघि तजत ससि सकल कुसूल (कौमुदी)।

अति झुलमुलीन सह झलक लीन। फहरात पताका जनु नवीन।
अति तरुन अरुन द्विज दुति लसंति। निजु दाड़िम बीजन कौं हसंति ॥१५॥

संध्याहि उपासत भूमिदेव। जनु बाकदेव की करत सेव।
सुभ तिनके सुख मुख के बिलास। भयो उपबन मलयानिल निवास ॥१६॥

(चौपही)

मृदु मुसुकानि लता मन हरैं। बोलत बोल फूल से झरैं।
तिनकी बानी सुनि मनहारि। बानी बीना धर्यो उतारि ॥१७॥

लटकै अलिक अलक चीकनी। सूक्षम अमल चिलक सौं सनी।
नकमोती दीपकदुति जानि। पाटी रजनी ही उनमानि ॥१८॥

जोति बढ़ावत दसा उसारि। मानहु स्यामल सींक पसारि।
जनु कबिहित रबि रथ तैं छोरि। स्यामपाट की बाँधी डोरि ॥१९॥

रूप अनूप रुचिर रसभीनि। पातुर नैननि की पुतरीनि।
नेह नचावत हित रतिनाथ। मरकत-लकुट लियें जनु हाथ ॥२०॥

(दोहा)—गगन-चंद्र तैं अति बड़ो तिय-मुख-चंद्र बिचारु।
दई बिचारि बिरंचि चित कला चौगुनी चारु ॥२१॥

(दंडक)

दीन्हो ईस दंडबल, दलबल, द्विजबल, तपबल, प्रबल समेत कुलबल की।
'केसव' परमहंसबल, बहु कोसबल, कहा कहौं बड़ीयै बड़ाई दुर्ग-जल की।
बिधिबल, चंद्रबल, श्री को बल श्रीसबल, करत है मित्रबल रक्षा पल पल की।
मित्रबल हीन जानि अबला मुखनि बल, नीकेहीं छड़ाइ लई कमला कमल की ॥२२॥

(दोहा)—रमनी-मुखमंडल निरखि राकारमन लजाइ।
जलद जलधि सिव सूर मैं राखत बदन दुराइ ॥२३॥

(विशेषक)

भूषन ग्रीवन के बहु भाँतिन सोहत हैं। लाल सितासित पीत प्रभा मन मोहत हैं।
सुंदर रागन के बहु बालक आनि बसे। सीखन कौं बहु रागिनि 'केसवदास' लसे ॥२४

---

[१४] सब–रवि (कौमुदी)। [१५] निजु–जन (प्रताप०) [१६] बाकदेव–बामदेव (प्रताप०, सर०); बाकदेवि (कौमुदी)। बिलास–सुबास (दीन०, प्रताप०)। मलया०–मलयाचल (दीन०, प्रताप०, सर०)। [१८] ही०–हियहित मानि (दीन०, प्रताप०)। [१९] उसारि–उनारि (कौमुदी); बिचारि (दीन० २)। बाँधी–डारी (दीन०, प्रताप०, कौमुदी)। [२२] द्विज–बीज (कौमुदी)। ही–कै (वही)। [२३] दुराइ–छिपाय (कौमुदी)। [२४] बहु–जनु (दीन०, प्रताप०, सर०)। बहु–मनु (दीन०)।

(चौपही)—हरिपुर सी सुरपुरदूषिता। मुक्ताभरन-प्रभाभूषिता।
कोमलसब्दनिवंत सुवृत्त। अलंकारमय मोहनमित्त ॥२५॥

काव्यापद्धति-सोभा गहे। तिनके बाहुपास कबि कहे।
नव रँग बहु असोक के पत्र। तिन महँ राखत राजकलत्र ॥२६॥

देखहु देव दीन के नाथ। हरत कुसुम के हारत हाथ।
सुंदर अँगुरिन मुँदरी बनी। मनिमय सुबरन-सोभा-सनी ॥२७॥

राजलोक के मन रुचिरए। मानो कामिनि कर करि लए।
अति सुंदर उर मैं उरजात। सोभासर मैं जनु जलजात ॥२८॥

अखिल लोक जलमय करि धरे। बसीकरन-चूरनचय भरे।
कामकुँवर-अभिषेक-निमित्त। कलस रचे जनु जौबन मित्त ॥२९॥

(दोहा)—रोमराजि स्रृंगार की ललित लता सी राज।
ताहि फले कुचरूप फल लै जगजोति-समाज ॥३०॥

(चौपही)—सूक्ष्म रोमावली सुवेष। उपमा दीन्ही सुक सबिसेष।
उर मैं मनहु मदन की रेख। ताकी दीपति दिपति असेष ॥३१॥

(दोहा)—कटि के तत्व न जानियै सुनि प्रभु त्रिभुवनराव।
जैसैं सुनियत जगत के सत अरु असत सुभाव ॥३२॥

(नराच)—नितंब-बिंब फूल से कटिप्रदेस छीन है।
बिभूति लूटि ली सबै सुलोकलाज लीन है।
अमोल ऊजरे उदार जंघजुग्म जानियै।
मनोज के प्रमोद सौं बिनोदजंत्र मानियै ॥३३॥

छवान की छुई न जाति सुभ्र साधु माधुरी।
बिलोकि भूलि भूलि जात चित्त-चालि-आतुरी।
बिसुद्ध पाद-पद्म चारु अंगुली नखावली।
अलक्तजुक्त मित्र की सुचित्त-बैठकी भली ॥३४॥

(दोहा)—कठिन भूमि, अति कोंवरे, जावकजुत सुभ पाइ।
जनु मानिक तनत्रान कौं पहिरी तरी बनाइ ॥३५॥

(चौपही)—बरन बरन अँगिया उर धरे। मदन मनोहर के मन हरे।
अंचल अति चंचल रुचि रचैं। लोचन चल जिनके सँग नचैं ॥३६॥

---

[२५] 'हरि···भूषिता' कौमुदी में नहीं है। [२६] काव्या०—काव्य सुपद्धति (कौमुदी); काव्यपद्य सी (प्रताप०)। तिनके—तिनसौं (प्रताप०, सर०); इनके (कौमुदी)। [२७] सनी—घनी (दीन०, सर०)। [२८] उर मैं—उर पै (कौमुदी)। [२९] कौमुदी मैं ये दो पंक्तियाँ अधिक हैं—कामकेलि कंदुक कमनीय। मनौ छिपाए रति निज हीय। [३३] ली—सी (दीन० २)।

(दोहा)—मधुबन फूल्यो देखि सुक बरनत है निरसंक।
सोहत हाटकघटित रितु-जुवतिन के ताटंक ॥५॥

(दोधक)—बेल के फूल लसैं अति फूले। भौंर भवैं तिनके रस भूले।
यों करबीर करी बन राजैं। मन्मथबानन की गति साजैं॥६॥
केतक-पुंज प्रफुल्लित सोहैं। भौंर उड़ैं तिनमें अति मोहैं।
श्रीरघुनाथ के आवत भागे। जे अपलोक हुते अनुरागे॥७॥

(दोहा)—स्याम सोन दुति फूल की फूले बहुत पलास।
जरैं कामकैला मनो मधुरितु-बात-बिलास ॥८॥

(तोटक)—बहु चंपक की कलिका हुलसी। तिनमें अति स्यामल ज्योति लसी।
उपमा सुक सारिक चित्त धरी। जनु हेमकुपी सब सौंध भरी॥९॥

(चौपही)—अलि उड़ि धरत मंजरीजाल। देखि लाज साजति सब बाल।
अलि अलिनी के देखत भाइ। चुंबत चतुर मालती जाइ॥१०॥
अद्भुत गति सुंदरी बिलोकि। बिहँसति हैं घूँघट-पट रोकि।
गिरत सदाफल श्रीफल ओज। जनु धर धरत देखि बक्षोज॥११॥

(तारक)—उदरे उरदाड़िम दीह बिचारे। सुदतीन के सोभन दंत निहारे।
अति मंजुल बंजुलकुंज बिराजैं। बहु गुंजनिकेतन-पुंजनि साजैं॥१२॥
नर अंध भए दरसे तरु मौरे। तिनके जनु लोचन हैं इकठौरे।
थल सीतल तप्त सुभावनि साजे। ससि सूरज के जनु लोक बिराजे॥१३॥
जलजंत्र बिराजत भाँति भली है। धर तें जलधार अकास चली है।
जमुनाजल सूक्षम बेष सँवार्‍यो। जनु चाहत है रबिलोक बिहार्‍यो॥१४॥

(चंचरी)—भाँति भाँति कहौं कहाँ लगि बाटिका बहुधा भली।
ब्रह्मघोष घने तहाँ जनु है गिरा-बन की थली।
नीलकंठ नचैं बने जनु जानियै गिरिजा-बनी।
सोभिजै बहुधा सुगंध मनो मलैबन की धनी॥१५॥

---

[५] सुक-सो (दीन० १); कबि (दीन० २)। [७] में-तें (दीन०, प्रताप, सर०)। अति-मन (प्रताप०, कौमुदी)। जे-जो (प्रताप०); ज्यों (कौमुदी)। [९] में-पै (कौमुदी)। ज्योति-सोभ (दीन०, प्रताप०)। लसी-बसी (दीन०)। [१०] भाइ-धाइ (कौमुदी); जाइ (दीन० २)। [११] हैं०-घूँघटपट मुह (दीन०, प्रताप०, सर०)। धर०-धँखि देत (दीन०, सर०); धर धँसत (प्रताप०); धर परत (कौमुदी)। [१२] उदरे-बिदरे (कौमुदी)। [१३] सुभावनि-सुगंधनि (प्रताप०, सर०); सुभायन (कौमुदी०)। [१४] भाँति-पाँति (कौमुदी)। जमुना-सरजू (कौमुदी+)। [१५] घोष-दोष (दीन०, सर०)। घने-गने (दीन० १)।

(चौपही)—करुनामय बहु कामनि फली। जनु कमला की बासस्थली।
सोभै रंभा सोभा सनी। मनो सची की आनँद-बनी ॥१६॥

(कमल)—तरुचंदन उज्वलता तन धरे। लपटी नव नागलता मन हरे।
नृप देखि दिगंबर बंदन करे। चिर चंद्रकलाधर रूपनि भरे ॥१७॥

अति उज्वलता सब कालहुँ बसै। सुक केकि पिकादिक कंठहँ लसै।
रजनीदिन आनँद-कंदनि रहै। मुखचंदन की जनु चंदनि अहै ॥१८॥

(तोटक)—सब जीवन को बहु सुक्ख जहाँ। बिरहीजन ही कहँ दुक्ख तहाँ।
जहँ आगम पौनहिं को सुनिये। नित हानि असौंधहि की गुनिये ॥१९॥

(दोहा)—तप ही को ताड़न जहाँ, तृष चातक के चित्त।
पात फूल फल दलन को, भ्रम भ्रमरनि के मित्त ॥२०॥

(तारक)—तिनमैं इक कृत्रिम पर्बत राजै। मृग पक्षिनकी सब सोभहि साजै।
बहु भाँति सुगंध मलैगिरि मानौ। कलधौतस्वरूप सुमेरु बखानौ ॥२१॥

अति सीतल संकर को गिरि जैसो। सुभ सेत लसै उदयाचल ऐसो।
दुतिसागर मैं मयनाक मनो है। अजलोक मनो अजलोक बनो है ॥२२॥

(तोटक)—सरिता तिहि तैं सुभ तीन चली। सिगरी सरितान की सोभ दली।
इक चंदन के जल उज्वल है। जग जन्हुसुता सुभसील गहै ॥२३॥

(चौपही)—सुरगज को मारग छबि छायो। जनु दिबि तैं भूतल पर आयो।
जनु धरनी मैं लसत बिसाल। त्रुटित जुही की घन बनमाल ॥२४॥

(दोहा)—तज्यो न भावै एक पल, 'केसव' सुखद समीप।
जासौं सोहत तिलक सो, दीन्हे जंबू दीप ॥२५॥

(दोधक)—एनन के मद के जल दूजी। है जमुना-दुति कै जनु पूजी।
धार मनो रसराज बिसाल। पंकजजालमयी जनु माल ॥२६॥

---

[१७] करे–कीने (प्रताप०)। चिर–सिर (प्रताप०); जनु (कौमुदी)। रूपनि–रूपहि (वही)। भरे–धरे (दीन० १, सर०); लीने (प्रताप०)। [१८] कालहुँ–कालहु (सर०, कौमुदी); काल (प्रताप०)। केकि०–हू पिक के मुख (प्रताप०, सर०)। कंठहुँ०–मुह ही सुरसै (दीन० १); मुख बिलसै (दीन० २); हीँ बिलसै (प्रताप०); ही बिच लसै (सर०); सब्दहु लसै (कौमुदी)। [१९] नित०–अति हानि ससोकहिँ (दीन० १); नित हानि असोभहि (दीन० २, प्रताप०, सर०)। [२०] तप ही–तापहि (प्रताप०, सर०, कौमुदी)। मित्त–नित्त (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२२] अजलोक बनो–जुत हंसघनो (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२३] सुभसील–जनु सीतल है (दीन० २); सुभ लागत है (प्रताप०); सुभलील गहै (सर०)। [२४] घन–जनु (दीन० १, प्रताप०, सर०); छन (काशि०)। [२६] कै–कौं (प्रताप०, कौमुदी)। जाल–नील (दीन० १. कौमुदी)।

(दोहा)—दुखखंडनि तरवारि सी, किधौं सृंखला चारु।
क्रीड़ागिरि मातंग की, यहै कहै संसारु ॥२७॥
क्रीड़ागिरि तें अलिन की अवली चली प्रकास।
किधौं प्रतापानलन की पदवी 'केसवदास' ॥२८॥
(दोधक)—और नदी जल कुंकुम सोहै। सुद्ध गिरा मन मानहु मोहै।
कंचन के उपबीतहि साजै। ब्राह्मन सो यह खंड बिराजै ॥२६॥
(स्वागता)—लौंगफूलमय सेवटि लेखी। एलबीज बहु बालुक देखी।
केरिफूल-दल नावन माहीं। श्रीसुगंध तहँ है बहुधाहीं ॥३०॥
(दोहा)—खेवत मत्त मलाह अलि, को बरनै वह जोति।
तीनौ सरिता मिलत जहँ, तहाँ त्रिबेनी होति ॥३१॥
सीता श्रीरघुनाथजू देखी श्रमित सरीर।
द्रुम अवलोकन छाँडिकै गए जलासय-तीर ॥३२॥
(चौपही)—आई कमल-बास सुखदैन। मुख-बासन आगे ह्वै लैन।
देख्यो जाइ जलासय चारु। सीतल सुखद सुगंध अपारु ॥३३॥
(मरहट्ठा)
बनश्री को दर्पनु, चंद्रातप जनु किधौं सरद आबास।
मुनिजनगन-मन सो, बिरहीजन सो, बिस-बलयानि बिलास।
प्रतिबिंबित थिर चर, जीव मनोहर, मनु हरिउदर अनंत।
बंधनजुत सोहै, त्रिभुवन मोहै, मानो बलि जसवंत ॥३४॥
(चौपही)—बिषमय पै सब सुख को धाम। संबररूप बढ़ावै काम।
कमलनि मध्य भ्रमर सुख देत। संतहृदय जनु हरिहि समेत ॥३५॥
बीच बीच सोहैं जलजात। तिनतें अलिकुल उड़ि उड़ि जात।
संतहियन तें मानहु भाजि। चंचल चली असुभ की राजि ॥३६॥
(दंडक)
एक दमयंती ऐसी हरै हँसि हंसबंस, एक हंसिनी सी बिसहार हियें रोहिये।
भूषन गिरत एक लेत बूड़ि बूड़ि बीच, मीन गति लीन हीन उपमान टोहिये।

---

[२७] क्रीडा—सोभा (दीन०)। मातंग—गजकाम (प्रताप०); गजगंध (सर०)। [२८] सुद्ध—स्वर्ग (दीन० १); सुभ्र (दीन० २, सर०)। इसके अनंतर दीन०, प्रताप०, सर० में दो चरण अधिक हैं—फूल परागनि के मन मोहै। पावन कूल दुहूँ दिसि सोहै। [३०] मय—दल (कौमुदी)। बीज०—फूल दल बालक (वही); बीज जातीफल (प्रताप०); बीज बहु कालक (सर०)। [३१] मिलत०—मिलत ही (प्रताप०); मिलित जहँ (काशि०); मिलति जहँ (कौमुदी)। [३२] गए—चले (कौमुदी)। [३३] आई—आए (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३४] बलि०—बनिज बसंत (प्रताप०); बलित बसंत (सर०)। [३५] संत—चंद (प्रताप०)।

एक पतिकंठ लागि लागि बूड़ि बूड़ि जात, जलदेवता सी दिगदेवता बिमोहिये
'केसोदास' आसपास भँवर भँवत जलकेलि मैं जलजमुखी जलज सी सोहिये ॥३७

(दोहा) – क्रीड़ा-सरबर मैं नृपति, कीन्ही बहु बिधि केलि।
निकसे तरुनिसमेत जनु, सूरज किरन सकेलि ॥३८॥

(हाकलिका)—नीरनि तैं निकसीं तिय सबै। सोहति हैं बिन भूषन तबै।
चंदन-चित्र कपोलन नहीं। पंकज-केसर सोभत तहीं ॥३९॥

मोतिन की बिथुरी सुभ छुटैं। हैं उरझी उरजातन लटैं।
हास-सिँगार-लता मनु बनी। भैंटति कल्पलता हित घनी ॥४०॥

केसनि ओरनि सीकर रमै। रिक्षनि को तमपी जनु बमै।
सज्जल अंबर छोड़त बने। छूटत हैं जल के कन घने।
भोग भले तिनसों मिलि करे। छूटत जानि ते रोवत खरे ॥४१॥

भूषन जे जलमध्यहिँ रहे। ते बनपाल-बधूटिन लहे।
भूषन बस्त्र जबै सजि लए। चारिहु द्वारन दुंदुभि भए ॥४२॥

(दोहा)—गूँगे कुबजे बावरे, बहरे बामन बृद्ध।
बान लिये जन आइगे, खोरे खंज प्रसिद्ध ॥४३॥

(चौपही)—सुखद सुखासन बहु पालकी। फिरक-बाहिनी सुखचाल की।
एकनि जोते हय सोहिये। बृषभ कुरंग अंग मोहिये ॥४४॥

तिन चढ़ि राजलोक सब चल्यो। नगर-निकट सोभाफल फल्यो।
मनिमय कनकजालिका घनी। मोतिन की झालरि अति बनी ॥४५॥

घंटा बाजत चहुँदिसि भले। रामचंद्र तिहि गज चढ़ि चले।
चपला चमकत चारु अगूढ़। मनहु मेघ मघवा आरूढ़ ॥४६॥

आसपास नरदेव अपार। पाइ पियादे राजकुमार।
बंदीजन जस पढ़त अपार। यहि बिधि गए राजदरबार ॥४७॥

---

[३७] बूड़ि बीच-बीचि बीच (कौमुदी)। पति०—मत कै कै लागि लागि बूड़ि जात (वही)। लागि०—लागि बूड़ि बूड़ि जाति जल (प्रताप०); लागि लागि जल लीन होति (सर०)। दिग—दृग (काशि०); देवि (कौमुदी)। [३९] नीरनि—नीरधि (कौमुदी)। सबै—जबै (वही)। [४०] बनी, घनी—बने, घने (कौमुदी)। हित—नित (दीन०)। [४१] तमपी—तमयी (कौमुदी)। तिन—जिन (प्रताप०, सर०); तन (कौमुदी)। छूटत—बिछुरत (काशि०, सर०); छोड़त (कौमुदी)। [४३] कुबजे—लुंजे (सर०)। बान०—दान लेन (प्रताप०)। खंज—षंढ (सर०)। [४४] बहु—गन (दीन० १, प्रताप०)। [४५] चल्यो, फल्यो—चले, फले (कौमुदी)। निकट०—निगर० (दीन०१, प्रताप०); असोक बृच्छ कहँ (दीन०२)। [४६] चमकत०—चमक बारिगत गूढ़ (दीन० १); चमक चारु अति गूढ़ (दीन० २, प्रताप०, सर०)।

(विजय)—भूषित देह विभूति दिगंबर नाहिन अंबर अंग नवीने।
दूरिकै सुंदर सुंदरि, 'केसव' दौरि दरीन मैं आसन कीने।
देखिय मंडित दंडन सौं भुजदंड दुवौ असिदंडबिहीने।
राजनि श्रीरघुनाथ के बैर, कुमंडल छाँडि कमंडल लीने ॥४८॥

(दोहा)—कमल-कुलन मैं जात ज्यौं, भँवर भर्‌यो रस चित्त।
राजलोक मैं त्यौं गए, रामचंद्र जगमित्त ॥४९॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां वनविहारवर्णनन्नाम द्वात्रिंशः प्रकाशः ॥३२॥

३३

(त्रिभंगी)—दुर्जन-दल-घायक, श्रीरघुनायक, सुखदायक त्रिभुवनसासन।
सोहैं सिंहासन, प्रभाप्रकासन, कर्मबिनासन, दुखनासन।
सुग्रीव बिभीषन, सुजन, बंधुजन, सहित तपोधन, भूपतिगन।
आए सँग मुनिजन, सकल देवगन, मृगतपकानन चतुरानन ॥१॥

(तोटक)—उठि आदर सौं अकुलाइ लयो। अति पूजन कै बहुधा बिनयो।
सुखदायक आसन सोभरए। सब को सो जथाबिधि आन दए ॥२॥

(दोहा)—सबन परसपर बूझियो, कुसल-प्रस्न सुख पाइ।
चतुरानन बोले बचन, स्लाघा बिनय बनाइ ॥३॥

ब्रह्मा—(मनोरमा)

सुनिये चित दै जग के प्रतिपालक। सबके गुरु हौ हरि जद्यपि बालक।
सबकौं सब भाँति सदा सुखदायक। गुन गावत बेद मनो बच कायक ॥४।
तुम लोक रचे बहुधा रुचि कै तब। सुनिये प्रभु ऊजर हैं सिगरे अब।
जग कोउ न भूलिहु जाइ निरैमग। मिटि गे सब पापन पुन्यन के नग ॥५॥

(दोहा)—बरुनपुरी धनपतिपुरी, सुरपतिपुर सुखदानि।
सप्तलोक बैकुंठ सब, बस्यो अवध मैं आनि ॥६॥

---

[४८] आसन-मंदिर (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४९] मैं त्यौं-देखन (प्रताप०)।
[२] को सो-काहिं (कौमुदी)। बिधि-मति (दीन० १)। [३] बोले०-बूझत (दीन०)। [५] जग-नर (दीन० १); जनु (प्रताप०, सर०)। पापन०-पापहु पुन्य के मारग (दीन०, सर०); पापहु के मुनि मारग (प्रताप०)। [६] दानि-साज (दीन० १)। मैं आनि-सुखराज (वही)।

(तोमर)—हँसि यों कह्यो रघुनाथ। समझी सबै विधि गाथ।
मम इच्छ एक सुजान। कबहूँ न होइ सु आन ॥७॥

तव पुत्र जे सनकादि। मम भक्त जानहु आदि।
सुत मानसिक तिन केति। भुवदेव भुव प्रगटे ति ॥८॥

हम दियो तिन सुभ ठाउँ। कछु और दीबे गाउँ।
अब देहिं हम केहि ठौर। तुम कहौ सुर-सिरमौर ॥९॥

ब्रह्मा (मरहट्ठा)—सब वै मुनि रूरे, तपबल पूरे, बिदित सनाढ्य सुजाति।
बहुधा बहु बारनि, प्रति अवतारनि, दै आए बहु भाँति।
सुनि प्रभु-आखंडल, मथुरामंडल मैं दीजै सुभ ग्राम।
बाढ़ै बहु कीरति, लवनासुर हति, अति अजेय संग्राम ॥१०॥

(दोहा)—जिनके पूजे तुम भए अंतरजामी श्रीप।
तिनकी बात हमैं कहा पूछत त्रिभुवन-दीप ॥११॥

द्विज आयो ताही समय, मृतक-पुत्र के साथ।
करत बिलाप-कलाप हा रामचंद्र रघुनाथ ॥१२॥

(मल्लिका)—बालकै मृतै सु देखि। धर्मराज सौं बिसेखि।
बात यौं कही निहारि। कर्म कौन को बिचारि ॥१३॥

धर्मराज—(मनोरमा)

निज सूद्रन की तपसा सिसुघालक। बहुधा भुवदेवन के सब बालक।
करि बेगि बिदा सिगरे सुरनायक। चढ़ि पुष्पक आसु चले रघुनायक ॥१४॥

(दोधक)—राम चले सुनि सूद्र की गीता। पंकजजोनि गए जहँ सीता।
देखि लगी पग राम की रानी। पूछिकै बूझति कोमल बानी ॥१५॥

सीता—कौनहु पूरब पुन्य हमारे। आजु फले जु इहाँ पगु धारे।
ब्रह्मा—देवन को सब कारज कीन्हो। रावन मारि बड़ो जस लीन्हो ॥१६॥

मैं बिनती बहु भाँतिन कीनी। लोकन की करुनारस भीनी।
उत्तर मोहि दियो सुनि सीता। जाकी न जानि परै जिय गीता ॥१७॥

---

[७] होइ–होत (कौमुदी)। [१०] प्रभु–जग (दीन०)। [१२] रघुनाथ–पुरनाथ (दीन० १)। [१३] मृतै०–गतासु (दीन०, प्रताप०, सर०)। [१४] सब–बहु (दीन०)। आसु–अस्व (दीन० २); आपु (प्रताप०, सर०); जान (कौमुदी) [१६] इहाँ–इतै (कौमुदी)। बड़ो–सबै (दीन० २)। [१७]जिय–सुभ (दीन० १); कछु (दीन० २); जय (प्रताप०, सर०)।

भरत (दोहा)—सदा सुद्ध अति जानकी, निंदत यौं खलजाल ।
जैसे श्रुतिहि सुभावहीं, पाखंडी सब काल ।।३०।।

भव अपबादन तें तज्यो, यौं चाहत सीताहि ।
ज्यौं जग के संजोग तें जोगीजन समताहि ।।३१।।

(झूलना)—मन मानिकै अतिसुद्ध सीतहिं आनियो निज धाम ।
अवलोकि पावक-अंक ज्यौं रबि-अंक पंकजदाम ।
केहि भाँति ताहि निकारिहौ अपबाद-बादि बखानि ।
सिव ब्रह्म धर्म समेत श्री पितु साखि बोल्यो आनि ।।३२।।

जमनादि के अपबाद क्यौं द्विज छोड़िहै कपिलाहि ।
बिरहीन को दुख देत, क्यौं हर डारि चंद्रकलाहि ।
यह है असत्य जु, होहिगो अपबाद सत्य सु नाथ ।
प्रभु छाँडि सुद्ध सुधानि पीवहु आपने बिष हाथ ।।३३।।

(दोहा)—प्रिय पावनि प्रियबादिनी पतिब्रता अतिसुद्ध ।
जग को गुरु अरु गुर्बिनी छाँडत बेद बिरुद्ध ।।३४।।

वा माता वैसे पिता तुम सो भैया पाइ ।
भरथ भए अपबाद के भाजन भूतल आइ ।।३५।।

राम—(हरिलीला)

साँची कही भरथ बात सबै सुजान । सीता सदा परम सुद्ध कृपानिधान ।
मेरी कछू अबहिं इच्छ यहै सु हेरि । मोकौं हतौ बहुरि बात कहौ जु फेरि ।।३६।।

लक्ष्मण—(दोधक)

दूषत जैन सदा सुभ गंगा । छाँडहुगे बहु तुंग-तरंगा ।
मायहि निंदित हैं सब जोगी । क्यौं तजिहैं भव भूपति भोगी ।।३७।।

ग्यारसि निंदत हैं मठधारी । भावति है हरिभक्तनि भारी ।
निंदत हैं तव नामहिं बामी । का कहियै तुम अंतरजामी ।।३८।।

(दोहा)—तुलसी को मानत प्रिया, गौतम-तिय अति अज्ञ ।
सीता कौं छाँडन कहौ, कैसे कै सर्बज्ञ ।।३९।।

(शत्रुघ्न)—स्वप्नहू नहिं छाँडिये तिय गुर्बिनी पल दोइ ।
छाँडियो तब सुद्ध सीतहि गर्भमोचन होइ ।

---

[३१] समताहि—ममताहि (दीन०, सर०)। [३२] अति—तुम (प्रताप० सर०)। सिव—रिषि (प्रताप०)। [३३] डारि—छाड़ि (दीन० १)। सुधा०—सुधा[illegible] पीवत बिषहि अपने (कौमुदी)। [३५] अपबाद०—अपलोक० (दीन० २ सर० भवलोक में अपजस भाजन (दीन० १)। [३६] कृपा०—क्रियाबिधान (कौमुदी)। [३७ बहु—वह (कौमुदी)। भव—सब (वही)। [३९] कैसे०—काहे कौं (दीन०, सर०

पुत्र होइ कि पुत्रिका यह बात जानि न जाइ।
लोकलोकन में अलोक न लीजिये रघुराइ ॥४०॥

(दोहा)—रामचंद्र! जगचंद्र तुम, फल दल फूल समेत।
सीता पावन पद्मिनी, न्यायनहीं दुख देत ॥४१॥
घर घर प्रति सब जग सुखी, राम तुम्हारे राज।
अपनेहि घर तक करत हौ, सोक असोक समाज ॥४२॥

राम—(तोटक)

तुम बालक हौ बहुधा सबमैं। प्रतिउत्तर देहु न फेरि हमैं।
जु कहैं हम बात सु जाइ करौ। मन मध्य न और बिचार धरौ ॥४३॥

(दोहा)—और होइ तौ जानियै, प्रभु सौं कहा बसाइ।
यह बिचारिकै सत्रुहा भरथ गए अकुलाइ ॥४४॥

राम (दोधक)—सीतहि लै अब अत्वर जैये। राखि महाबन मैं पुनि ऐये।
लक्ष्मन जौ फिरि उत्तर दैहौ। सासनभंग को पातक पैहौ ॥४५॥
लक्ष्मन लै बन सीतहि धाए। थावर जंगमहू दुख पाए।
गंगहि देखि कह्यो यह सीता। श्रीरघुनायक की जनु गीता ॥४६॥
पार भए जबहीं जन दोऊ। भीम बनी जनु जंतु न कोऊ।
निर्जल निर्जन कानन देख्यो। भूतपिचासन को घर लेख्यो ॥४७॥

सीता (नगस्वरूपिणी)—सुनौं न ज्ञान-कारिका। सुकी पढ़ैं न सारिका।
न होम-धूप देखियै। न गंधबंधु पेखियै ॥४८॥
सुनौं न बेद की गिरा। न बुद्धि होति है थिरा।
रिषीन की कुटी कहाँ। पतिव्रता बसैं जहाँ ॥४९॥
मिलै न कोउवै कहूँ। न आवतै न जातहूँ।
चले हमैं कहाँ लियैं। डराति हौं महा हियैं ॥५०॥

(दोहा)—सुनि सुनि लक्ष्मन भीत अति, सीताजू के बैन।
उत्तर मुख आयो नहीं, जल भरि आयो नैन ॥५१॥

(नराच)

बिलोकि लक्ष्मनै भई बिदेहजा बिदेह सी। गिरी अचेत ह्वै मनो घनै बनै तड़ित्त सी।
करी जु छाँह एक हाथ एक बात बास सौं। सिंच्यौ सरीर बीर-नैन-नीरहीं प्रकास सौं

---

[४०] न लीजिये-बिलोकिबो (दीन०); बिलोकियौ (प्रताप०, सर०)। [४४] गए-उठे (दीन० २) अकुलाइ-सुख पाय (दीन० १); दुख पाइ (प्रताप०)। [४५] मैं पुनि-मैं फिरि (दीन० १, प्रताप०, कौमुदी); भीतर (दीन० २)। [४६] सीतहि०-सीय सिधाए (दीन०, प्रताप०, सर०)। [५२] इसके अनंतर 'दीन०' में यह दोहा और है—

मृतक जानि लछिमन तबै मरन लगे ततकाल। भइ अकासबानी तबै जाहु जियैगी बाल।

(रूपमाला)—राम की जपसिद्धि सी सिय कौं चले बन छाँड़ि।
छाँह एक फनी करी फन दीह मालनि माँडि।
बालमीकि बिलोकियो बन-देवता जनु जानि।
कल्पबृक्ष-लता किधौं दिवि तें गिरी भुव आनि ॥५३॥

सींचि मंत्र-सँजीव-जीवन जी उठी तेहि काल।
पूँछियो मुनि कौन की दुहिता बधू अरु बाल।
सीता—हौं सुता मिथिलेस की दसरथ्थपुत्र-कलत्र।
मुनि—कौन दोष तजी (सीता-) न जानति, कौन आपुन अत्र ॥५४॥

मुनि—पुत्रिके सुनि मोहि जानहि बालमीकि द्विजाति।
सर्बथा मिथिलेस को गुरु सर्बदा सुभ भाँति।
होहिंगे सुत द्वै सुधी पगु धारिये मम ओक।
रामचंद्र छितीस के सुत जानिहैं तिहुँ लोक ॥५५॥

सर्बथा गुनि सुद्ध सीतहि लै गए मुनिराइ।
आपनी तपसानि की सुभ सिद्धि सी सुख पाइ।
पुत्र द्वै भए एक श्री कुस दूसरो लव जानि।
जातकर्महि आदिदै सब किये बेद बखानि ॥५६॥

(दोहा)—बेद पढ़ायो प्रथम ही धनुर्बेद सबिसेष।
अस्त्र सस्त्र दीन्हे घने दीन्हे मंत्र असेष ॥५७॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां जानकी-त्यागवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत् प्रकाशः ॥३३॥

३४

(दोधक)—एक समै हरि धर्म-सभा मैं। बैठे हुते नरदेव-प्रभा मैं।
संग सबै रिषिराज बिराजैं। सोदर मंत्रिन मित्रन साजैं ॥१॥

कूकर एक फिरादहि आयो। दुंदुभि धर्म-दुवार बजायो।
बाचतहीं उठि लक्ष्मन धाए। स्वानहि कारन बूझन आए ॥२॥

---

[५३] किधौं—मनो (दीन० १)। [५४] दुहिता०—बिटिया बहू (दीन०, प्रताप०, सर०)। [५६] मुनि—रिषि (दीन०, प्रताप०, सर०) । पाइ—दाइ (वही)। [५७] घने—सबै (दीन०, प्रताप०)।

[१] बैठे०—सोहत हे (दीन०, प्रताप०)।

कूकर—काहु के क्रोध बिरोध न देखौं। राम को राज तपोमय लेखौं।
तामहँ मैं दुख दीरघ पायो। रामहिं हौं सो निवेदन आयो ॥३॥
लक्ष्मण—धर्म-सभा महँ रामहिं जानौ। स्वान चलौ निज पीर बखानौ।
श्वान—हौं अब राजसभा नहिं आऊँ। आऊँ तौ 'केसव' सोभ न पाऊँ ॥४॥

(दोहा)—देव, अदेव, नृदेव घर, पावन थल समुदाइ।
बिनु बोले आनंदमति, कुत्सित जीव न जाइ ॥५॥

(दोधक)—राजसभा महँ स्वान बोलायो। रामहिं देखत ही सिर नायो।
राम कह्यो जु कछू दुख तेरे। स्वान निसंक कहौ पुर मेरे ॥६॥

श्वान—(तारक)

तुम हौ सरबज्ञ सदा सुखदाई। अरु हौ सबकौं समरूप सदाई।
जग सोवत है जगतीपति जागे। अपने अपने सब मारग लागे ॥७॥
नरदेवन पाप परै परजा को। निसिवासर होइ न रक्षक ताको।
गुन दोषन को जब होइ न दर्सी। तबहीं नृप होइ निरैपदपर्सी ॥८॥

(दोहा)—निज स्वारथ ही सिद्धि द्विज, मोकौं कह्यो प्रहार।
बिन अपराध अगाधमति, ताको कहा बिचार ॥९॥

(तारक)—तब ताकहँ लेन गए जन धाए। तबहीं नगरी महँ ते गहि लाए।
राम—यहि कूकर क्यौं बिन दोषहि मार्‍यो। अपने जिय त्रास कछू न बिचार्‍यो ॥१०॥
ब्राह्मण (दोहा)—यह सोवत हो पंथ में हौं भोजन कौं जात।
मैं अकुलाइ अगाधमति याकौं कीन्हो घात ॥११॥

राम—(स्वागता)

ब्रह्म ब्रह्मरिषिराज बखानौ। धर्म कर्म बहुधा तुम जानौ।
कौन दंड द्विज कौं अब दीजै। चित्त चेति कहिये सोइ कीजै ॥१२॥
कश्यप—है अदंड भुवदेव सदाई। जत्र तत्र सुनिये रघुराई।
ईस सीख अब याकहँ दीजै। चूकहीन अरि कोउ न कीजै ॥१३॥
राम (तोमर)—सुनि स्वान कहि तू दंड। हम देहिं याहि अखंड।
कहि बात तू डर डारि। जिय मध्य आपु बिचारि ॥१४॥

---

[४] पीर—दुख्ख (दीन०, प्रताप०)। आऊँ—जाऊँ (कौमुदी)। आऊँ तौ—आवत (दीन०); जायकै (कौमुदी)। [८] होइ न रक्षक—होत ' ' (दीन०, प्रताप०)। नृप०—नृप होत (वही)। [११] अकुलाइ०—अपडर अकुलाइकै (दीन०, प्रताप०)। कीन्हो०—मारी लात (दीन०)। [१२] तुम—सब (दीन० १, सर०)। बहुधा०—बहु भाँतिन (दीन० २, प्रताप०)। [१४] मध्य—माँझ (दीन०, प्रताप०, सर०)। आपु—देखि (दीन० १)।

श्वान (दोहा)—मेरो भायो करहु जौ, रामचंद्र हित मंडि।
कीजै द्विज यहि मठपती, और दंड सब छंडि ॥१५॥

(निशिपालिका)

पीत पहिराइ पट बाँधि सिर सौं पटी। बोरि अँगराग अरु जोरि बहुधा गटी।
पूजि परि पाइँ मठ ताहि तबहीँ दयो। मत्त गजराज चढ़ि बिप्र मठ कौं गयो ॥१६॥

(दोहा)—भयो रंक तैं राज द्विज, कह्यो स्वान-करतार।
भोगन लाग्यो भोगवै, दुंदुभि बाजत द्वार ॥१७॥

(सुंदरी)—बूझत लोग सभा महँ स्वानहिँ। जानत नाहिन या परमानहिँ।
बिप्रहिँ त जु दई पदवी यह। है यह निग्रह कैधौँ अनुग्रह ॥१८॥

श्वान—(दोधक)

एक कनौज हुतो मठधारी। देव चतुर्भुज को अधिकारी।
मंदिर कोउ बड़ो जब आवै। अंग भली रचनानि बनावै ॥१९॥

जा दिन 'केसव' कोउ न आवै। ता दिन पालक तैं न उठावै।
भेटनि लै बहुधा धन कीनो। नित्य करै बहु भोग नवीनो ॥२०॥

एक दिना इक पाहुन आयो। भोजन सो बहु भाँति बनायो।
ताहि परोसन कौं पितु मेरो। बोलि लयो हितु हो सब केरो ॥२१॥

ताहि तहाँ बहु भाँति परोस्यो। कँहूँ कहूँ नख माहिँ रह्यो घ्यो।
ताहि परोसि अहीँ घर आयो। रोवत हौं हँसि कंठ लगायो ॥२२॥

(चामर)

मोहिँ मातु तप्त दूध भात भोज कौं दियो। बात सौं सिराइ तात छीर अंगुली छियो
घ्यो द्रयो भष्यो गयो अनेक नर्कबास भो। हौं भ्रम्यौं अनेक जोनि औध आनि स्वान भो

(दोहा)—वाको थोरो दोष, मैं दीन्हो दंड अगाध।
राम चराचर ईस तुम छमियो यह अपराध ॥२४॥

लोक कह्यो अपवित्र वहि लोक नरक को बास।
छुवै जु कोऊ मठपतिहिँ ताको पुन्य-बिनास ॥२५॥

रामायणे यथा—ब्रह्मस्वं देवद्रव्यं च स्त्रीणां बालधनं च यत्।
दत्तं हरति यो मोहात्स पचेन्नरके ध्रुवम् ॥

---

[१६] अँगराग—अनुराग (दीन० २, कौमुदी)। अरु—अँग (प्रताप०, सर०)। [१८] महँ—सब (दीन० १, प्रताप०, सर०); प्रति (दीन० २)। [१९] मंदिर—तापहँ (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२०] बहु०—भुवभोगप्रबीनो (दीन०, १); बहुभोगप्रबीनै (सर०)। [२३] अनेक०—मखौ अनेक नर्क गो (दीन०, प्रताप०, सर०); अनेक नर्कवान भो (कौमुदी)। [२५] छुवै—छियै (कौमुदी)।

स्कंदपुराणे यथा—हरस्य चान्यदेवस्य केशवस्य विशेषतः।
माठपत्यं च यः कुर्यात्सर्वधर्मबहिष्कृतः॥

पद्मपुराणे यथा—पत्रं पुष्पं फलं तोयं द्रव्यमन्नं मठस्य च।
योऽश्नाति स पचेद्घोरान्नरकानेकविंशतिः॥

देवीपुराणे यथा—अभोज्यं मठिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।
स्पृष्ट्वा मठपतिं विप्रं सवासा जलमाविशेत्॥

(दोहा)—औरौ एक कथा कहौं, बिकल भूप की राम।
वहौ अजोध्या बसत है, बंसकार के धाम॥२६॥

(बसंततिलका)

राजा हुतो प्रबल दुष्ट अनेक हारी। बारानसी बिमल छेत्रनिवासकारी।
सो सत्यकेतु यहि नाम प्रसिद्ध सूरो। बिद्याबिनोदरत धर्मबिधान पूरो॥२७॥

धर्माधिकारपर एक द्विजाति कीन्हो। संकल्पद्रव्य बहुधा तेहि चोरि लीन्हो।
बंदीबिनोद गनिकादि-बिलास-कर्ता। पावैं दसांस द्विजदान, असेषहर्ता॥२८॥

राजा बिदेस बहु साजि चमू गयो हो। जूझ्यो तहाँ समर जोधन सौं भयो हो।
आए कराल किल दूत कलेसकारी। लीन्हे गए नृपति कौं जहँ दंडधारी॥२६॥

(भुजंगप्रयात)

धर्म—कहा भोगवैगो महाराज दू मैं। कि पापै कि पुन्यै कह्यो भूरि भू मैं।
राजा—सुनौ देव मोकौं कछू सुद्धि नाहीं। कहौ आप ही पाप जो मोहिं माहीं॥३०॥
धर्म—कियो तैं द्विजाती जु धर्माधिकारी। सु तौ नित्य संकल्प-बित्तापहारी।
दियो दुष्ट रंडानि मुंडानि लै लै। महापाप माथे तिहारे सु दै दै॥३१॥
हुतो तैं सबै देस ही को नियंता। भले की बुरे की करी तैं न चिंता।
महा सूक्ष्म है धर्म की बात देखौ। जितो दान दीनो तितो पाप लेखौ॥३२॥

(दोहा)—कालसर्प से समुझियै सबै राज के कर्म।
ताहू तैं अति कठिन है नृपति दान के धर्म॥३३॥

(भुजंगप्रयात)

भयो कोटिधा नर्कसंपर्क ताको। हुते दोष संसर्ग के सुद्ध जाको।
सबै पाप भे क्षीन, भो मुक्तलेखी। रह्यो औध मैं आनि ह्वै कोलबेषी॥३४॥

---

[२६] कार—तिलक (दीन०)। [२७] अनेक०—अनै प्रहारी (कौमुदी)। [२८] कर्ता, हर्ता—कारी, हारी (दीन० १, सर०)। [२६] किल—जम (कौमुदी)। [३०] कि पापै०—अधर्मैं कि धर्मैं (दीन०)। [३१] मुंडानि—बित्तानि (दीन०)। [३२] दान०—पुन्य कीनौ (दीन० १)। [३३] अति०—बिषम गनि (दीन० १, प्रताप०, सर०)।

(दोहा)—'केसव' बासर बारहूँ, रघुपति के सब बीर।
लवनासुर के जमहिं जनु, मेले जमुना-तीर ॥४७॥

(मनोरमा)—लवनासुर आइ गयो जमुनातट। अवलोकि हँस्यो रघुनंदन के भट।
धनु-बान लिये निकसे रघुनंदन। मद के गज कौं सुत केहरि को जनु॥

लवणासुर—(भुजंगप्रयात)

सुन्यो तैं नहीं जौ यहाँ भूलि आयो। बड़ो भाग मेरो बड़ो भक्ष पायो।
शत्रुघ्न—महाराज श्रीराम हैं क्रुद्ध तोसौं। तजौ देस कौं कै सजौ जुद्ध मोसौं॥४६॥

लवणासुर—वहै राम राजा दसग्रीवहंता। सु तौ बंधु मेरो सुरस्त्रीनरंता।
हतौं तोहि वाकौं करौं चित्तभायो। महादेवकी सौं बड़ो भक्ष पायो॥५०॥

भए क्रुद्ध दोऊ दुवौ जुद्धरंता। दुवौ अस्त्रसस्त्रप्रयोगी निहंता।
बली बिक्रमी धीर सोभाप्रकासी। नस्यो हर्ष दोऊ सबर्षैं बिनासी॥५१॥

शत्रुघ्न (दोहा)—लवनासुर सिवसूल बिनु और न लागै मोहिं।
सूल लिये बिन भूलिहूँ हौं न मारिहौं तोहिं॥५२॥

(मोटनक)—लीन्हो लवनासुर सूल जहीं। मार्‍यो रघुनंदन बान तहीं।
काट्यो सिर सूलसमेत गयो। सूलीकर सुक्ख त्रिलोक भयो॥५३॥

बाजे दिवि दुंदुभि दीह तबै। आए सुर इंद्रसमेत सबै।
देव—कीन्हो बहु बिक्रम या रन मैं। माँगौ बरदान रुचै मन मैं॥५४॥

शत्रुघ्न (प्रमाणिका)—सनाढ्यबृत्ति जो हरै। सदा समूल सो जरै।
अकालमृत्यु सो मरै। अनेक नर्क सो परै॥५५॥

सनाढ्य-जाति सर्बदा। जथा पुनीत नर्मदा।
भजैं सजैं ते संपदा। बिरुद्ध ते असंपदा॥५६॥

(दोहा)—मथुरा-मंडल मधुपुरी 'केसव' सुबस बसाइ।
देखे तब सत्रुघ्नजू रामचंद्र के पाइ॥५७॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां लवणासुर-बधवर्णनन्नाम चतुस्त्रिंशत् प्रकाशः॥३४॥

---

[४७] सब—बर (दीन० २)। [५१] दोऊ०—दोऊ न वर्षैं (दीन० २, १ द्वौ ईषु बर्षैं (कौमुदी)। [५७] तब०—तबहीं सत्रुहन (दीन० १); यह कहि (प्रताप०); तब सत्रुघ्नश्री (सर०)।

(दोहा)—बिस्वामित्र बसिष्ठ स्यौं एक समय रघुनाथ।
आरंभी 'केसव' करन अस्वमेध की गाथ ॥१॥

राम (चामर)—मैथिली-समेत तौ अनेक दान मैं दियो।
राजसूय आदि दै अनेक जज्ञ मैं कियो।
सीय-त्याग पाप तैं हियैं सु हौं महा डरौं।
और एक अस्वमेध जानकी बिना करौं ॥२॥

कश्यप (दोहा)—धर्म कर्म कछु कीजई, सफल तरुनि के साथ।
ता बिन जो कछु कीजई, निष्फल सोई नाथ ॥३॥

(तोटक)—करियै जुतभूषन रूपरई। मिथिलेससुता इक स्वर्नमई।
रिषिराज सबै रिषि बोलि लिये। सुचि सौं सब जज्ञविधान किये ॥४॥

हयसालन तैं हय छोरि लियो। ससिबर्न सो 'केसव' सोभरयो।
स्रुति स्यामल एक बिराजत है। अलि स्यौं सरसीरुह लाजत है ॥५॥

(रूपमाला)

पूजि रोचन स्वच्छ अक्षत पट्ट बाँधिय भाल। भूषि भूषन सत्रुदूषन छाड़ियो तेहि काल
संग लै चतुरंग सैनहि सत्रुहंता साथ। भाँति भाँतिन मान दै पठए सु श्रीरघुनाथ ॥६॥

जात है जित बाजि 'केसव' जात हैं तित लोग। बोलि बिप्रन दान दीजत जत्रतत्र सभोग
बेनु बीन मृदंग बाजत दुंदुभी बहुभेव। भाँति भाँतिन होत मंगल देव से नरदेव ॥७॥

(कमल)—राघव की चतुरंग चमूचय को गनै 'केसव' राजसमाजनि।
सूर-तुरंगन के उरझैं पग तुंग पताकनि की पटसाजनि।
टूटि परैं तिनतैं मुकता धरनी उपमा बरनी कबिराजनि।
बिंदु किधौं मुखफेनन के किधौं राजसिरी स्रवै मंगललाजनि ॥८॥

(विजय)—राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी जलहू थल छाई।
मानौ प्रतापहुतासन-धूम सो 'केसवदास' अकास न माई।
मेटिकै पंच प्रभूत किधौं बिधि रेनुमयी नव रीति चलाई।
दुख्ख-निवेदन कौं भुवभार को भूमि किधौं सुरलोक सिधाई ॥९॥

(दंडक)—नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूरि गिरि,
सोखि सोखि जल भूरि भूरि थल गाथ की।

---

[१] आरंभी—आरंभ्यो (कौमुदी)। करन—कहन (दीन०, प्रताप०, सर०)। [३] तरुनि—त्रिया (दीन० १)। सोई०—सो रघुनाथ (दीन० २)। [४] सुचि०—बिधि सौं सब जज्ञप्रयोग किये (दीन० १)। [५] केसव०—केसर केस-स्यौ (दीन०, प्रताप०, सर०)। [६] सु०—सुश्री (दीन० १); तिनै (दीन० २)। [८] बिंदु०—सिंधु मनौ मुखफेन मजै (दीन० २)।

'केसोदास' आसपास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी संपत्ति सब आपने ही हाथ की।
उन्नत नवाइ नत उन्नत बनाइ भूप,
सत्रुन की जीविका ति मित्रन के साथ की।
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिसि दिसि जीति सेना रघुनाथ की ॥१०॥

(दोहा)—दिसि बिदिसिन अवगाहिकै, सुख ही 'केसवदास'।
बालमीकि के आश्रमहिँ, गयो तुरंग प्रकास ॥११॥

(दोधक)—दूरिहि तेँ मुनिबालक धाए। पूजित बाजि बिलोकन आए।
भाल को पट्ट जहीँ लव बाँच्यो। बाँधि तुरंगम जैरस राच्यो ॥१२॥

(श्लोक)—एकवीरा च कौसल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः।
तेन रामेण मुक्तोऽसौ वाजी गृह्णात्विमं बली ॥१३॥

(दोधक)—घोर चमू चहुँ ओर तेँ गाजी। कौनेहि रे यह बाँधियो बाजी।
बोलि उठे लव मैँ यहि बाँध्यो। योँ कहिकै धनुसायक साँध्यो ॥१४॥
मारि भगाइ दए सिगरे योँ। मन्मथ के सर ज्ञान घने ज्योँ।

(धीर)—जोधा भगे बीर सत्रुघ्न आए। कोदंड लीन्हेँ महाँ रोष छाए।
ठाढ़ो तहाँ एक बालै बिलोक्यो। रोक्यो तहीँ जोर नाराच मोक्यो ॥१५॥

शत्रुघ्न—(सुंदरी)

बालक छाँडि दै छाँड़ि तुरंगम। तोसोँ कहा करौँ संगर संगम।
ऊपर बीर हिये करुना रस। बीरहि बिप्र हते न कहूँ जस ॥१६॥

लव—(तारक)

कछु बात बड़ी न कहौ मुख थोरेँ। लव सोँ न जुरौ लवनासुर मोरेँ।
द्विज-दोषन ही बल ताकोँ सँघाखो। मरही जु रह्यो सु कहा तुम माखो ॥१७॥

(चामर)—रामबंधु बान तीनि छोँडियो त्रिसूल से।
भाल मैँ बिसाल ताहि लागियो ते फूल से।

---

[१०] साथ-हाथ (दीन०, काशि०, प्रकाशिका)। [१२] तुरंगम०—तुरंग तबै रन (दीन० १); तुरंग बिजैरस (दीन० २)। [१४] घोर-दौरि (दीन० २)। ओर-देस (दीन० १)। म०-हौँ हय (दीन०, प्रताप०, सर०)। [१५] जोर-ज्यौँन (दीन०); जौन (प्रताप०, सर०)। प्रताप० मैँ और सर० मैँ भी क्वचित् यह भुजंगप्रयात कर दिया गया है, आरंभ मैँ एक लघु बढ़ाकर—जोधा-सुजोधा। कोदंड-जु कोदंड। ठाढ़ो०-खड़ो है तहीँ। रोक्यो०-रुक्यौ सो तहीँ। [१६] बीरहि-बीरन (दीन०, सर०)। [१७] जुरौ-भिरौ (दीन० २, प्रताप०)।

लव—घात कीन्ह राज तात गात तैं कि पूजियो।
कौन सत्रु तैं हत्यो जु नाम सत्रुहा लियो ॥१८॥

(निशिपालिका)

रोष करि बान बहु भाँति लव छंडियो। एक ध्वज, सूत जुग, तीन रथ खंडियो।
सस्त्र दसरथ्थसुत अस्त्र कर जो धरै। ताहि सियपुत्र तिल तूलसम खंडरै ॥१९॥

(तारक)

रिपुहा तब बान वहै कर लीन्हो। लवनासुर कौं रघुनंदन दीन्हो।
लव के उर मैं उरभ्यो वह पत्री। मुरझाइ गिर्‌यो धरनी महँ छत्री ॥२०॥

(मोटनक)

मोहे लव भूमि परे जबहीँ। जै-दुंदुभि बाजि उठे तबहीँ।
भू तैं रथ-ऊपर आनि धरे। सत्रुघ्न सु यों करुनाहि भरे ॥२१॥
घोरो तबहीँ तिन छोरि लयो। सत्रुघ्नहि आनँद चित्त भयो।
लैकै लव कौं ते चले जबहीँ। सीता पहँ बाल गए तबहीँ ॥२२॥

बालक (झूलना)—सुनि मैथिली नृप एक को लव बाँधियो बर बाजि।
चतुरंग सेन भगाइकै सब जीतियो वह आजि।
उर लागि गो सर एक को भुव मैं गिरो मुरझाइ।
तब बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुंदुभीन बजाइ ॥२३॥

(दोहा)—सीता गीता पुत्र की सुनिकै भई अचेत।
मनौ चित्र की पुत्रिका मन क्रम बचन समेत ॥२४॥

(झूलना)—रिपुहाथ श्रीरघुनाथ को सुत क्यौं परै करतार।
पतिदेवता सब काल तौ लव जी उठै यहि बार।
रिषि हू नहीँ कुस है नहीँ लव लेइ कौन छुँडाइ।
बन माँझ टेर सुनी जहीँ कुस आइयो अकुलाइ ॥२५॥

कुश (दोहा)—रिपुहि मारि संघारि दल जम तैं लेहुँ छुँडाइ।
लवहि मिलैं हौं देखिहौं माता तेरे पाइ ॥२६॥

(विजय)—गाहियो सिंधु सरोवर सो जेहि बालि बली बर सो बर पेख्यो।
ढाहि दिये सिर रावन के गिरि से गुरु जात न जा तन हेख्यो।

---

[१८] तात—पुत्र (दीन०); भ्रात (प्रताप०)। [१९] तूल०—तूल खंडन करै (दीन०, प्रताप०, सर०)। [२०] रघु०—रघुनायक (दीन०, प्रताप०, सर०)। गिर्‌यो०—पर्‌यो रन मैं वह (दीन० २); गिर्‌यौ धर मैं तब (प्रताप०); गिर्‌यो महि मैं वह (सर०)। [२३] लागि०—लागियो (दीन०)। भुव मैं—धरनी (दीन० १)। [२५] तौ०—जौ लव जीतियौ (दीन० २); जौ लव जोवितै (प्रकाशिका)। टेर—बात (दीन०)। [२६] मिलैं०—मिलैहौं (कौमुदी); लिये हौं (प्रताप०, सर०)।

साल समूल उखारि लिये लवनासुर पीछे तें आइ सो टेर्यो।
राघव को दल मत्त करीसुर अंकुस दै कुस 'केसव' फेर्यो ॥२७॥

(दोहा)—कुस की टेर सुनी जहीं, फूलि फिरे सत्रुघ्न।
दीप बिलोकि पतंग ज्यों, जदपि भयो बहु बिघ्न ॥२८॥

(मनोरमा)

रघुनंदन को अवलोकत ही कुस। उर माँझ हयो सर सुद्ध निरंकुस।
ते गिरे रथ-ऊपर लागत ही सर। गिरि-ऊपर ज्यों गजराज-कलेबर ॥२९॥

(सुंदरी)—जूझि गिरे जबहीं अरिहा रन। भाजि गए तबहीं भट के गन।
काढ़ि लियो जबहीं लव को सर। कंठ लग्यो तबहीं उठि सोदर ॥३०॥

(दोहा)—मिले जु कुस लव कुसल सों, बाजि बाँधि तरुमूल।
रनमहि ठाढ़े सोभिजैं, पसुपति गनपति तूल ॥३१॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्र चंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां शत्रुघ्नसंमोहो नाम पंचत्रिंशः प्रकाशः ॥३५॥

३६

(रूपमाला)—जज्ञमंडल में हुते रघुनाथजू तेहि काल।
चर्म अंग कुरंग को सुभ स्वर्न की सँग बाल।
आसपास रिषीस सोभित सूर सोदर साथ।
आइ भग्गुल लोग बरनी जुद्ध की सब गाथ ॥१॥

भग्गुल—(स्वागता)

बालमीकि-थल बाजि गयो जू। बिप्र-बालकन घेरि लयो जू।
एक बाँचि पट घोटक बाँध्यो। दौरि दीह धनुसायक साँध्यो ॥२॥

भाँति भाँति सब सैन संघार्यो। आपु हाथ जनु ईस सँवार्यो।
अस्त्र सस्त्र तव बंधु जु धारै। खंडखंड करि ताकहँ डारै ॥३॥

रोष बेष वह बान लयो जू। इंद्रजीत लगि आपु दयो जू।
कालरूप उर माहि हयो जू। बीर मूर्छि तब भूमि भयो जू ॥४॥

---

[२७] आइ—जाय (दीन०, प्रताप०, सर०)। करीसुर—करी तेहि (दीन० २)। [२८] भयो—होइ (दीन० २); है (दीन० १)। [२९] हयो—हन्यौ (दीन० २)। सुद्ध—क्रुद्ध (दीन० १); जुद्ध (कौमुदी); ते—सु (दीन०, प्रताप०, सर०)।

[३] सँवार्यो—सुधार्यौ (दीन०, प्रताप०, सर०)। [४] इंद्रजीत—मेघनाद (दीन० १)।

(तोमर)—वहि बीर लै अरु बाजि। जबहीं चले दल साजि।
तब और बालक आनि। मग रोकियो तजि कानि ॥५॥
तेहि मारियो तुव बंधु। तब ह्वै गए सब अंधु।
वह बाजि लै अरु बीर। रन रह्यो रूपि धीर ॥६॥

(दोहा)—बुधि बल बिक्रम रूप गुन सील तुम्हारे राम।
काकपक्षधर बाल द्वै जीते सब संग्राम ॥७॥

राम (चतुष्पदी)—गुनगनप्रतिपालक, रिपुकुलघालक बालक ते रनरंता।
दसरथ नृप को सुत मेरो सोदर लवनासुर को हंता।
कोऊ द्वै मुनिसुत काकपक्षजुत सुनियत है तिन मारे।
यहि जगतजाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे ॥८॥

(मरहट्ठा)—लक्ष्मन सुभलक्षन, बुद्धिबिचक्षन, लेहु बाजि को सोधु।
मुनिसिसु जनि मारेहु, बंधु उधारेहु, क्रोध न करेहु प्रबोध।
बहु सहितदक्षिना, दै प्रदक्षिना, चल्यो परम रनधीर।
देख्यो मुनिबालक, सोदर, उपज्यो करुना अद्भुत बीर ॥९॥

कुश (दोधक)—लक्ष्मन को दल दीरघ देख्यो। कालहु तें अति भीम बिसेख्यो।
दो मैं कहौ सो कहा लव कीजै। आयुध लैहौ कि घोटक दीजै ॥१०॥

लव—बूझत हौ तौ यहै मत कीजै। मो असु दै बरु अस्व न दीजै।
लक्ष्मन को दल सिंधु निहारो। ताकहँ बान अगस्त तिहारो ॥११॥
कौन यहै घटिहै अरि घेरे। नाहिन हाथ सरासन मेरे।
नेकु जहीं दुचितो चित कीन्हो। सूर बड़ो इषुधी धनु दीन्हो ॥१२॥
लै धनुबान बली तब धायो। पल्लव ज्यौं दल मारि उड़ायो।
यौं दोउ सोदर सैन सँघारैं। ज्यौं बन पावक पौन बिहारैं ॥१३॥
भागत हैं भट यौं लव आगे। राम के नाम तें ज्यौं अघ भागे।
जूथपजूथ यौं मारि भगायो। बात बड़े जनु मेघ उड़ायो ॥१४॥

---

[५] दल—रथ साजि (दीन० १); हय गाजि (दीन० २); तजि आजि (प्रताप०, सर०)। मग०—दल रोकियो सजि बानि (दीन० २); तेहि फेरियो रथ जानि दीन० १); दल······(प्रताप०, सर०)। [६] तब०—दल ह्वै गयो (कौमुदी)। [८] कुटिल—परम (दीन० २)। [९] बुद्धि०—रघुकुलरत्तन (दीन०, प्रताप०, सर०)। देख्यो०—लीने भट को गन चतुर महारन पहुँचे लच्छन बीर (दीन० २)। [१०] अति०—अतिभीतक लेख्यो (दीन० २, प्रताप०); अरिभूषन लेख्यो (दीन० १); अति भीषन लेख्यो (सर०)। आयुध०—ओट गहौ किधौं (दीन० २,सर०); ओट गहौ कि तौ (प्रताप०)। [१२] कौन—एक (कौमुदी)। सूर०—सूरज एक बड़ो (दीन० १); सूर बड़ो इषु दै (दीन० २)। बड़ो०—तहीं (वही)। [१३] उड़ायो—भगायौ (दीन०)। [१४] बड़े—बढ़े (दीन०); बड़ी (कौमुदी)।

(दुर्मिला)—अति रोषरसे कुस 'केसव' श्रीरघुनायक सौं रनरीति रचैं।
तेहि बार न बार भई बहु बारन खग्ग हने न गिनैं बिरचैं।
तहँ कुंभ फटैं गजमोति कटैं ते चले बहि स्रोनित रोचि रचैं।
परिपूरन पूर पनारन तें जनु पीक कपूरन की किरचैं ॥१५॥

(नराच)

भगे चपे चमू चमूप छाँडि छाँडि लक्ष्मनै। भगे रथी महारथी गयंद-बृंद को गनै।
लवै कुसै निरंकुसै बिलोकि बंधु राम को। उठ्यो रिसाइकै बली बँध्यो जु लाजदाम को

कुश—(मौक्तिकदाम)

न हौं मकराक्ष न हौं इँद्रजीत। बिलोकि तुम्हैं रन होहुँ न भीत।
सदा तुम लक्ष्मन उत्तमगाथ। करौ जनि आपनि मातु अनाथ ॥१७॥

लक्ष्मण—कहौ कुस जो कहि आवति बात। बिलोकत हौं उपबीतहि गात।
इते पर बालबहिक्रम जानि। हियें करुना उपजै अति आनि ॥१८॥

बिलोचन लोचत हैं लखि तोहि। तजौ हठ आनि भजौ किन मोहि।
क्षम्यो अपराध अजौं घर जाहु। हियें उपजाउ न मातहि दाहु ॥१९॥

(दोधक)—हौं हतिहौं कबहूँ नहिं तोहीं। तू बरु बानन बेधहि मोहीं।
बालक बिप्र कहा हनियै जू। लोक अलोकन मैं गनियै जू ॥२०॥

कुश (हरिणी)—लक्ष्मन हाथ हथ्यार धरौ। जज्ञ बृथा प्रभु को न करौ।
हौं हय कौं कबहूँ न तजौं। पट्ट लिख्यो सोइ बाँचि लजौं ॥२१॥

(स्वागता)—बान एक तब लक्ष्मन छंड्यो। चर्म बर्म बहुधा तेहि खंड्यो।
ताहि हीन कुस चित्तहि मोहै। धूमभिन्न जनु पावक सोहै ॥२२॥

रोषबेस कुस बान चलायो। पौनचक्र जिमि चित्त भ्रमायो।
मोह मोहि रथ-ऊपर सोए। ताहि देखि जड़-जंगम रोए ॥२३॥

(नराच)—बिराम राम जानिकै भरथ्थ सौं कथा कहैं।
बिचारि चित्त माहिँ बीर बीर वै कहाँ रहैं।
सरोष देखि लक्ष्मनै त्रिलोक तौ बिलुप्त है।
अदेव देवता त्रसैं कहा ते बाल दीन द्वै ॥२४॥

राम (रूपमाला)—जाहु सत्वर दूत लक्ष्मन हैं जहाँ यहि बार।
जाइकै यह बात बर्नहु रक्षियो मुनि-बार।

---

[१५] गिनैं—खनै खिरचैं (दीन० २)। [१६] चपे—चये (कौमुदी)। बली—हठी (दीन०, सर०)। [१८] बिलोकत०—बिलोकि कहौं (दीन० १)। [२१] बाँचि—देखि (दीन० १)। [२३] जिमि—जनु (दीन०)। [२४] वै—द्वै (दीन०) दीन०—दीस द्वै (दीन०)।

हैं समर्थ सनाथ वै असमर्थ और अनाथ।
देखिबे कहँ लाइयो मुनि-बाल उत्तमगाथ ॥२५॥

(सुंदरी)—भग्गुल आइ गए तबहीं बहु। बार पुकारत आरत रक्षहु।
वे बहु भाँतिन सैन सँघारत। लक्ष्मन तौ तिनको नहिं मारत ॥२६॥

बालक जानि तजे करुना करि। वै अति ढीठ भए दल संघरि।
कँहुँ न भाजत गाजत हैं रन। बीर अनाथ भए बिन लक्ष्मन ॥२७॥

जानहु जैं उनको मुनिबालक। वै कोउ हैं जगतीप्रतिपालक।
हैं कोउ रावन के कि सहायक। कै लवनासुर के हित लायक ॥२८॥

भरत—बालक रावन के न सहायक। ना लवनासुर के हित लायक।
हैं निज पातकवृक्षन के फल। मोहत हैं रघुबंसिन के बल ॥२९॥

जीतहि को रन माँझ रिपुघ्नहिं। को कर लक्ष्मन के बल बिघ्नहिं।
लक्ष्मन सीय तजी जब तें बन। लोक अलोकन पूरि रहे तन ॥३०॥

छोड़ोइ चाहत ते तब तें तन। पाइ निमित्त कस्यो मन पावन।
भाइ तज्यो तन सोदर लाजनि। पूत भए तजि पापसमाजनि ॥३१॥

(दोधक)—पातक कौन तजी तुम सीता। पावन होत सुने जग गीता।
दोषबिहीनहिं दोष लगावै। सो प्रभु ये फल काहे न पावै ॥३२॥

हौं तेहि तीरथ जाइ मरौंगो। संगतिदोष असेष हरौंगो।
बानर रक्षस रिक्ष तिहारे। गर्ब बढ़े रघुबंसहिं भारे।
ता लगि कै यह बात बिचारी। हौ प्रभु संतत गर्बप्रहारी ॥३३॥

(चंचरी)—क्रोध कै अति भर्थ अंगद संग संगर कौं चले।
जामवंत चले बिभीषन और बीर भले भले।
को गनै चतुरंग सेनहिं रोदसी नृपता भरी।
जाइकै अवलोकियो रन मैं गिरे गिरि से करी ॥३४॥

इति श्रीमत्सकलोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां
भरतसमागमो नाम षट्त्रिंशः प्रकाशः ॥३६॥

---

[२५] बाल–पुत्र (दीन० १, सर०)। [२६] बार–बीर (दीन०)। [२८] हित०–सुत लायक (दीन० १); सुखदायक (दीन० २, सर०)। [२९] हैं–वै (दीन० २, सर०)। [३३] बढ़े–चढ़े (कौमुदी, प्रकाशिका)।

३७

(रूपमाला)—जामवंत बिलोकियो रन भीम-भू हनुमंत।
स्रोन की सरिता बही सु अनंत रूप दुरंत।
जत्र तत्र धुजा पताका दीह देहनि भूप।
टूटि टूटि परे मनौ बहु बात बृक्ष अनूप ॥१॥

पुंज कुंजर सुभ्र स्यंदन सोभिजैं सुठि सूर।
ठेलि ठेलि चले गिरीसनि पेलि सोनितपूर।
ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारु चर्म बिसाल।
चक्र से रथचक्र पैरत बृक्ष गृद्ध मराल ॥२॥

केकरे कर बाहु मीन, गयंद सुंड भुजंग।
चीर चौंर सुदेस केस सिवाल जानि सुरंग।
बालुका बहु भाँति हैं मनिमालजाल प्रकास।
पैरि पार भए ते द्वै मुनिबाल 'केसवदास' ॥३॥

(दोहा)—नाम बरन लघु बेष लघु, कहत रीझि हनुमंत।
इतो बड़ो बिक्रम कियो, जीते जुद्ध अनंत ॥४॥

भरत—(तारक)

हनुमंत दुरंत नदी अब नाखौ। रघुनाथ-सहोदर जी अभिलाषौ।
तब जो तुम सिंधुहि नाँघि गए जू। अब नाँघहु काहे न, भीत भए जू ॥५॥

हनुमान (दोहा)—सीतापद सनमुख हुते, गयौं सिंधु के पार।
बिमुख भए क्यौं जाहुँ तरि, सुनौ भरथ यहि बार ॥६॥

(तारक)—धनुबान लिये मुनिबालक आए। जनु मन्मथ के जुग रूप सोहाए।
करिबे कहँ सूरन के मद हीने। रघुनायक मानहु द्वै बपु कीने ॥७॥

भरत—मुनिबालक हौ तुम जज्ञ करावौ। सु किधौं बर बाजिहि बाँधन धावौ।
अपराध छमौ अब आसिष दीजै। बर बाजि तजौ जिय रोष न कीजै ॥८॥

(दोहा)—बाँध्यो पट्ट जो सीस यह, क्षत्रिन काज प्रकास।
रोष कर्‍यो बिन काज तुम, हम बिप्रन के दास ॥९॥

कुश—(दोधक)

बालक बृद्ध कहौ तुम काकौं। देहनि कौं किधौं जीव-प्रभा कौं।
है जड़ देह कहै सब कोई। जीव सो बालक बृद्ध न होई ॥१०॥

---

[१] बहु०—सुभ बृक्षजाल (दीन०, सर०)। [२] सुठि—बहु (दीन० १); जनु (दीन० २); सुभ (सर०)। गिरीसनि-ति भूड़नि (दीन० १)। [८] बर-नृप (दीन० १); मख (कौमुदी)। [१०] बृद्ध—सब्द (दीन०)।

जीव जरै न मरै नहिँ छीजै। ताकहँ सोक कहा अब कीजै।
जीवहि बिप्र न क्षत्रिय जानौ। केवल ब्रह्म हिये महँ आनौ ॥११॥

जौ तुम देव हमैं कछु सिक्षा। तौ हम देहिँ तुम्हैं हय-भिक्षा।
चित्त बिचार परै सोइ कीजै। दोष कछू न हमैं अब दीजै ॥१२॥

(स्वागता)—बिप्र-बालकन की सुनि बानी। क्रुद्ध सूरसुत भे अभिमानी।
सुग्रीव—बिप्रपुत्र तुम सीस सँभारौ। राखि लेहि अब ताहि पुकारौ ॥१३॥

लव—(गौरी)

सुग्रीव कहा तुमसौं रन माँडौं। तोकौं अतिकायर जानिकै छाँडौं।
बाली तुमहीं बहु नाच नचायो। मोसौं अब ह्याँ रनमंडन आयो ॥१४॥

(तारक)—फलहीन सो ताकहँ बान चलायो। अति बात भ्रम्यो बहुधा मुरझायो।
तब दौरिकै बान बिभीषन लीन्हो। लव ताहि बिलोकतहीं हँसि दीन्हो ॥१५

(सुंदरी)—आउ बिभीषन तूँ रनदूषन। एक तुँही कुल को निज भूषन।
जूझ जुरे जो भगे भय जी के। सत्रुहि आनि मिले तुम नीके ॥१६॥

(दोधक)—देवबधू जबहीं हरि ल्यायो। क्यौं तबहीं तजि ताहि न आयो।
यौं अपने जिय के डर आयो। क्षुद्र सबै कुल-छिद्र बतायो ॥१७॥

(दोहा)—जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान।
ताकी पत्नी तूँ करी पत्नी मातु समान ॥१८॥

को जानै कै बार तूँ कही न ह्वैहै माइ।
सोई तैं पत्नी करी सुनि पापिन के राइ ॥१९॥

(तोटक)—सिगरे जग माँझ हँसावत हैं। रघुबंसिन पाप नसावत हैं।
धिक तोकहँ तूँ अजहूँ जु जियै। खल जाइ हलाहल क्यौं न पियै ॥२०॥

कछु है अब तोकहँ लाज हियैं। कहि कौन बिचार हथ्यार लियैं।
अब जाइ करीष की आगि जरौ। अरु बाँधिकै सागर बूड़ि मरौ ॥२१॥

(दोहा)—कहा कहौं हौं भरथ कौं, जानत है सब कोइ।
तो सो पापी संग है, क्यौं न पराजय होइ ॥२२॥

---

[११] केवल—पूरन (दीन० १)। [१४] तुमहीं०—सबको कहँ (कौमुदी)। मोसौं०—कहा रनमंडन मो सन (दीन० २, काशि०, प्रकाशिका); तौ ह्याँ रनमंडन मो सन (कौमुदी)। [१८] पत्नी तू—तिय लै तू (दीन०); त्रिम तैं लै (सर०);। [२०] रघुबंसिन—रिपुबंसहि (दीन० १); रघुबंसहि (सर०)। पाप—दोष (दीन० २)। नसावत—लगावत (कौमुदी)। [२२] इसके अनंतर दीन०, सर० में यह छंद अधिक है—

बहुत जुद्ध भो भरथ सों, देव अदेव समान।
मोहि महारथ पर गिरे, मारे मोहन-बान॥ २३॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां भरत-मोहनो नाम सप्तत्रिंशत्प्रकाशः॥३७॥

३८

(दोहा)—भरथहि भयो बिलंब कछु, आए श्रीरघुनाथ।
देख्यो वह संग्राम-थल, जूझि परे सब साथ॥१॥

(तोटक)—रघुनाथहि आवत आइ गए। रन मैं मुनिबालक रूपरए।
गुन रूप सुसीलन सों रन मैं। प्रतिबिंब मनौ निज दर्पन मैं॥२॥

(मधुतिलका)

सीतासमान मुखचंद्र बिलोकि राम। बूझ्यो कहाँ बसत हौ तुम कौन ग्राम।
माता पिता कवन कौनेहिं कर्म कीन। बिद्या बिनोद सिख कौनेहिं अस्त्र दीन॥३॥

कुश (रूपमाला)—राजराज तुम्हैं कहा मम बंस सों अब काम।
बूझि लीजौ ईस लोगन जीतिकै संग्राम।
राम—हौं न जुद्ध करौं कहे बिन बिप्रबेष बिलोकि।
बेगि बीर कथा कहौ तुम आपनी रिस रोकि॥४॥

कुश—कन्यका मिथिलेस की हम पुत्र जाए दोइ।
बालमीक असेष कर्म करे कृपारस मोइ।
अस्त्र सस्त्र सबै दए अरु बेदभेद पढ़ाइ।
बाप को नहिं नाम जानत आजु लौं रघुराइ॥५॥

(दोधक)—जानकि के मुख अक्षर आने। राम तहीं अपने सुत जाने।
बिक्रम साहस सील बिचारे। जुद्ध बृथा गहि आयुध डारे॥६॥

हाँसिनिहीं कुस मारि बिभीषन आनन ही मैं हते जो गरूरे।
भूमि गए उठि बैठतहीं उर मैं अति रोष के मारि मरूरे।
सोभित दंतन की किरचैं बिच छाँडत लोहू के लोल दरूरे।
खाइ तमोर तरुन्नि के संग करै मनो कामी कपूर-करूरे॥

[भूमि०–भूमि भए (सर०)। संग–काम। कामी–भूमि (वही)।]

[३] बूझ्यो–पूछे (सर०)। कीन–कीने (वही)। सिख०–सिखए केहि (वही)। दीन–दीने (वही)। [४] बेष–बाल (दीन० १)। [६] बृथा०–कथा कहि (प्रकाशिका); ब्यथा गहि (कौमुदी)।

राम—अंगद जीति इन्हैं गहि ल्यावौ। कै अपने बल मारि भगावौ।
बेगि बुझावहु चित्तचिता कौं। आजु तिलोदक देहु पिता कौं ॥७॥

अंगद तौ अँगअंग न फूले। पौन के पुत्र कह्यो अति भूले।
जाइ जुरे लव सौं तरु लैकै। बात कही सत खंडन कैकै ॥८॥

लव—अंगद जौ तुम पै बल होतौ। तौ वह सूरज को सुत को तौ।
देखत ही जननी जु तिहारी। वा सँग सोवति ज्यौं बर नारी ॥९॥

जा दिन तें जुवराज कहाए। बिक्रम बुद्धि बिबेक बहाए।
जीवत पै कि मरे पहँ जैहै। कौन पिताहि तिलोदक दैहै ॥१०॥

अंगद हाथ गहै तरु जोई। जात तहीं तिलसो कटि सोई।
पर्बतपुंज जिते उन मेले। फूल के तूल लै बानन‍ि झेले ॥११॥

बानन‍ि बेधि रही सब देही। बानर तें जु भए अब सेही।
भूतल तें सर मारि उड़ायो। खेल के कंदुक को फल पायो ॥१२॥

सोहत है अध ऊरध ऐसें। होत बटा नट को नभ जैसें।
जान कहूँ न इतै उत पावै। गोबल चित्त दसौ दिसि धावै ॥१३॥

बोल घट्यो सु भयो सुरभंगी। ह्वै गयो अंग त्रिसंकु को संगी।
हा रघुनायक हौं जन तेरो। रक्षहु गर्ब गयो सब मेरो ॥१४॥

दीन सुनी जन की जब बानी। जी करुना लव बानन‍ि आनी।
छाँड़ि दियो गिरि भूमि पर्‌योई। बिह्वल ह्वै अति मानौं मर्‌योई ॥१५॥

(विजय)—भैरव से भट भूरि भिरे बल खेत खरे करतार करे कै।
भारे भिरे रन-भूधर भूप न टारे टरे इभ-कोट अरे कै।
रोष सौं खर्ग हने कुस 'केसव' भूमि गिरे न टरेहू गरे कै।
राम बिलोकि कहैं रस अद्भुत खाएँ मरे नग नाग मरे कै ॥१६॥

(दोधक)—बानर रिक्ष जिते निसिचारी। सैन सबै इक बान सँघारी।
बानबिधे सब ही जब जोए। स्यंदन मैं रघुनंदन सोए ॥१७॥

(गीतिका)—रन जोइकै सब सीसभूषन संग्रहे जु भले भले।
हनुमंत को अरु जामवंतहि बाजि स्यौं ग्रसि लै चले।
रन जीतिकै लव साथ लै करि मातु के कुस पाँ परे।
सिर सूँघि कंठ लगाइ आनन चूमि गोद दुवौ धरे ॥१८॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां कुशलव-जयवर्णनन्नामाष्टत्रिंशत्प्रकाशः ॥३८॥

---

[१२] कंदुक-गेंदुक (दीन०)। [१५] गिरि–खसि (दीन० २)। बिह्वल–व्याकुल (कौमुदी)। [१६] टरेहू–कटेहू (दीन०, सर०)। मरे कै-परे कै (कौमुदी)। [१८] धरे-भरे (दीन० २)।

३६

(रूपमाला)—चीन्हि देवर के बिभूषन देखिकै हनुमंत।
पुत्र हौं बिधवा करी तुम कर्म कीन दुरंत।
बाप कौं रन मारियो अरु पितृभ्रातृ सँघारि।
आनियो हनुमंत बाँधि न आनियो मोहिं गारि ॥१॥

(दोहा)—माता सब काकी करी बिधवा एकहि बार।
मो सी और न पापिनी पाए बंस-कुठार ॥२॥

(दोधक)—पाप कहाँ हति बापहि जैहौ। लोक चतुर्दस ठौर न पैहौ।
राजकुमार कहै नहिं कोऊ। जारज जाइ कहावहु दोऊ ॥३॥

कुश मोकहँ दोष कहा सुनि माता। बाँधि लियो जो सुन्यो उनि भ्राता।
हौं तुमहीं तेहि बार पठायो। राम पिता कब मोहिं सुनायो ॥४॥

(दोहा)—मोहिं बिलोकि बिलोकिकै, रथ पर पौढ़े राम।
जीवत छाँड्यौ जुद्ध मैं, माता करि बिश्राम ॥५॥

(सुंदरी)—आइ गए तबहीं मुनिनायक। श्रीरघुनंदन के गुनगायक।
बात बिचारि कही सिगरी कुस। दुख्ख कियो मन मैं कलि-अंकुस ॥६॥

मुनि (गौरी)—कीजै न बिडंबन संतति सीते। भावी न मिटै जु कहूँ सुभगीते।
तूँ तौ पतिदेवन की गुरु बेटी। तेरी जग मृत्यु कहावत चेटी ॥७॥

(उपजाति)

सिगरे रनमंडल माँझ गए। अवलोकत ही अति भीत भए।
दुहुँ बालक को अति अद्भुत बिक्रम। अवलोकि भयो मुनि के मन संभ्रम ॥८॥

(दंडक)

स्रोनित सलिल नर बानर सलिलचर, गिरि बालिसुत बिष बिभीषन डारे हैं।
चवँर पताका बड़ी बड़वा-अनल सम, रोगरिपु जामवंत 'केसव' बिचारे हैं।
बाजि खुरबाजि सुरगज से अनेक गज, भरथ सबंधु इंदु-अंमृत निहारे हैं।
सोहत सहित सेष रामचंद्र कुसलव जीतिकै समर-सिंधु साँचहूँ सुधारे हैं ॥९॥

सीता (दोहा)—मनसा बाचा कर्मना जौ मेरे मन राम।
तौ सब सेना जी उठै होहि घरी न बिराम ॥१०॥

---

[१] पितृभ्रातृ—मंत्रिमित्र (दीन० १); मारि साधु (दीन० २); पित्र मित्र (सर०)। [३] पाप—पापि (कौमुदी। [४] सुनि—कहि (दीन०, सर०); सुनु (कौमुदी)। उनि—जब (दीन०१, सर०); सब (दीन० २)। [५] बिश्राम—संग्राम (दीन० १)। [६] कुस०—केसव से (कौमुदी)। सुधारे—सँवारे (वही)।

(दोधक)—जीय उठी सब सेन सभागी। 'केसव' सोवत तेँ जनु जागी।
स्यौँ सुत सीतहि लै सुखकारी। राघव के मुनि पायनि पारी ॥११॥

(मनोरमा)

सुभ सुंदरि सोदर पुत्र मिले जहँ। बरषा बरषे सुर फूलन की तहँ।
बहुधा दिवि दुंदुभि के गन बाजत। दिगपाल गयंदन के गन लाजत ॥१२।

अंगद—(स्वागता)

रामदेव तुम गर्बप्रहारी। नित्य तुच्छ अति बुद्धि हमारी।
जुद्ध देउ भ्रम तेँ कहि आयो। दास जानि प्रभु मारग लायो ॥१३॥

(रूपमाला)—सुंदरी सुत लै सहोदर बाजि लै सुख पाइ।
साथ लै मुनि बालमीकहि दीह दुक्ख नसाइ।
राम धाम चले भले जस लोकलोक बढ़ाइ।
भाँति भाँति सुदेस 'केसव' दुंदुभीन बजाइ ॥१४॥

भर्थ लक्ष्मन सत्रुहा पुरभीर टारत जात।
चौँर ढारत हैँ दुवौ दिसि पुत्र उत्तमगात।
छत्र है कर इंद्र के सुभ सोभिजै बहु भेव।
मत्त दंति चढ़े पढ़ैँ जय सबद देव नृदेव ॥१५॥

(दोधक)—जज्ञथली रघुनंदन आए। धामनि धामनि होत बधाए।
श्रीमिथिलेससुता बड़भागी। स्यौँ सुत सासुन के पग लागी ॥१६॥

(दोहा)—चारि पुत्र द्वै पुत्रसुत कौसल्या तब देखि।
पायो परमानंद मन दिगपालन सम लेखि ॥१७॥

(रूपमाला)

जज्ञ पूरन कै रमापति दान देत असेष। हीर नीरज चीर मानिक बरषि बर्षाबेष।
अंगराग तड़ाग बाग फले भले बहु भाँति। भवन भूषन भूमि भाजन भूरि बासर राति

(दोहा)—एक अयुत गज बाजि द्वै तीनि सुरभि सुभबर्न।
एक एक बिप्रहिँ दई 'केसव' सहित सुबर्न ॥१९॥

देव अदेव नृदेव अरु जितने जीव त्रिलोक।
मनभायो पायो सबनि कीन्हे सबनि असोक ॥२०॥

---

[१२] गन लाजत–मद लाजत (दीन० १); गन गाजत (दीन० २, सर०)। [१५] उत्तम–सुंदर (दीन० १)। [१६] रघुनंदन–रघुनायक (दीन० १)। [१७] दिग०–आसिष दियौ असेष (दीन० १)। [१८] बर्षा–बारिद (दीन०, प्रताप०, सर०)।

अपने अरु सोदरन के पुत्र बिलोकि समान।
न्यारे न्यारे देस दै, नृपति करे भगवान ॥२१॥
कुस लव अपने भरथ के नंदन पुष्कर तक्ष।
लक्ष्मन के अंगद भए चित्रकेतु रनदक्ष ॥२२॥

(भुजंगप्रयात)—भले पुत्र सत्रुघ्न द्वै दीप जाए। सदा साधु सूरे बड़े भाग्य पाए।
सदा मित्रपोषी हनै सत्रुछाती। सुबाहै बड़ो दूसरो सत्रुघाती ॥२३॥

(दोहा)—कुस कौं दई कुसावती नगरी कोसल देस।
लव कौं दई अवंतिका उत्तर उत्तमबेस ॥२४॥
पस्चिम पुष्कर कौं दई पुष्करवति है नाम।
तक्षसिला तक्षहिं दई लई जीति संग्राम ॥२५॥
अंगद कहँ अंगदनगर दीन्हो पच्छिम ओर।
चंद्रकेतु चंद्रावती लीन्ही उत्तर जोर ॥२६॥
मथुरा दई सुबाहु कहँ पूरन पावनगाथ।
सत्रुघात कौं नृप कर्यो देसहि को रघुनाथ ॥२७॥

(तोटक)—यहि भाँति सुरक्षित भूमि भई। सब पुत्र भतीजन बाँटि दई।
सब पुत्र महाप्रभु बोलि लिये। बहु भाँतिन के उपदेस दिये ॥२८॥

(चामर)—बोलिये न झूठ ईठि मूढ़ पै न कीजई।
दीजई जु बात हाथ भूलि हू न लीजई।
नेहु तोरियै न देहु दुक्ख मंत्रि मित्र कौं।
जत्र तत्र जाहु पै पत्याहु जैं अमित्र कौं ॥२९॥

(नराच)

जुवा न खेलियै कहूँ जुबान बेद रक्षियै। अमित्रभूमि माहिं जैं अभक्ष भक्ष भक्षियै।
करौ न मंत्र मूढ़ सौं न गूढ़ मंत्र खोलियै। सुपुत्र होहु जैं हठी मठीन सौं न बोलियै।
बृथा न पीड़ियै प्रजाहि पुत्र-मान पारियै। असाधु साधु बूझिकै जथापराध मारियै।
कुदेव देव नारि को न बाल-बित्त लीजियै। बिरोध बिप्रबंस सौं सु स्वप्नहू न कीजियै

---

[२३] सूरे-पूरे (दीन० १); रूरे (दीन० २)। [२४] अवंतिका—अवन्तिका (कौमुदी)। [२६] पच्छिम—पूरब (कौमुदी)। उत्तर—उत्तम (दीन० १, प्रताप०, सर०)। [२७] को—कहँ (कौमुदी)। देसहि०—बायव्र दिसि (दीन० १); दीपनि को (दीन० २)। देसनि को (प्रताप०)। [२९] जु बात—जु बस्तु (कौमुदी); जुबान (दीन० १)। हाथ—तात (दीन०, सर०)। [३०] माहिं०—मैं रमै न मौन (दीन० १, प्रताप०); मैं रमै रमै न (सर०)। [३१] पीड़ियै०—दंडियै प्रजाहि दुष्ट (दीन० १)। प्रजाहि०—प्रजा हितू समान पालियै (प्रताप०); प्रजा हितू समान मारियै (सर०)।

(भुजंगप्रयात)

परद्रव्य कौं तौ बिषप्राय लेखौ। परस्त्रीन कौं ज्यौं गुरुस्त्रीन देखौ
तजौ काम क्रोधै महामोह लोभै। तजौ गर्ब कौं सर्बदा चित्तक्षोभै ॥३२॥
जसै संग्रहौ निग्रहौ जुद्ध जोधा। करौ साधुसंसर्ग जो बुद्धिबोधा।
हितू होइ सो देइ जो धर्मसिक्षा। अधर्मीन कौं देहु जैं बाकभिक्षा ॥३३॥
कृतघ्नी कुबादी परस्त्रीबिहारी। करौ बिप्र लोभी न धर्माधिकारी।
सदा द्रव्य संकल्प कौं रक्षि लीजै। द्विजातीन कौं आपु ही दान दीजै ॥३४॥

(विजय)—तेरह मंडल मंडित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम साधै।
कैसहु ताकहँ सत्रु न मित्र सु 'केसवदास' उदास न बाधै।
सत्रु समीप, परे तेहि मित्र, सु तासु परे जु उदास कै जोवै।
बिग्रह, संधिनि, दाननि सिंधु लौं लै चहुँ ओरनि तौ सुख सोवै ॥३५॥

(दोहा)—राजश्री बस कैसेहूँ होहु न उरअवदात।
जैसे तैसे आपुबस ताकहँ कीजै तात ॥३६॥
यहि बिधि सिख दै पुत्र सब बिदा करे दै राज।
श्री राजत रघुनाथ-सँग, सोभन बंधु-समाज ॥३७॥

(रूपमाला)—रामचंद्रचरित्र कौं जु सुनै सदा चित लाय।
ताहि पुत्र कलत्र संपति देत श्रीरघुराय।
जज्ञ दान अनेक तीरथ न्हान को फल होइ।
नारि का नर बिप्र क्षत्रिय बैस्य सूद्र जु कोइ ॥३८॥

(रूपक्रांता)—असेष पुन्य पाप के कलाप आपने बहाइ।
बिदेहराज ज्यौं सदेह भक्त राम को कहाइ।
लहै सुभक्ति लोक लोक अंत मुक्ति होहि ताहि।
पढ़ै कहै सुनै गुनै जु रामचंद्रचंद्रिकाहि ॥३९॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचंद्रचंद्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां कुशलव-समागमो नामैकोनचत्वारिंशत्प्रकाशः ॥३९॥

---

[३५] परे०—करौ जनि मित्र सु सत्रु को सत्रु सदा करि जोवै (दीन० १)। [३७] राजत—सोहत (दीन० १)। इसके अनंतर 'दीन० १' में यह छंद अधिक है —

दस हजार दस सै बरष कस्यो राज जुवराज। बसी अवधि बैकुंठ में सूकर स्वान समाज ॥

[३८] जज्ञ—स्नान (दीन०, प्रताप०, सर०)। न्हान—पुन्य (दीन० १, सर०); दान (दीन० २)। [३९] होहि०—द्रव्य पाइ (दीन० १)।

रामचंद्रचंद्रिका

परिशिष्ट

(१) कथासूची

प्रकाश १—यहि पहिले परकास मैं मंगलचरन बिसेष।
ग्रंथारंभ 'रु आदि की कथा लहहिं बुध लेख ॥ (कौमुदी)।

२—या दूसरे प्रकास[1] मैं मुनि-आगमन प्रकास।
राजा सौं रचना-बचन राघव-चलन-बिलास ॥ (काशि०)।
१—द्वितीय परकास (कौमुदी)।

३—कथा तृतीय प्रकास मैं बनबरनन सुभ जानि।
रक्षन जज्ञ मुनीस को श्रवन स्वयंबर मानि ॥ (प्रताप०, काशि०, कौमुदी)।

४—कथा चतुर्थ प्रकास मैं बानासुर-संवाद।
रावन सौं अरु धनुष करि दसमुख-बान-बिवाद[1] ॥ (काशि०, कौमुदी)।
१—मान बिषाद (प्रताप०)।

५—यहि प्रकास[1] पंचम कथा रामगवन मिथिलाहि।
उद्धारन गौतम-घरनि स्तुति अरुनोदय आहि ॥
मिथिलापति के बचन अरु धनुभंजन उर धारि[2]।
जयमाला दुंदुभि अमर बरषन फूल अपार ॥ (काशि०, कौमुदी)।
१—प्रभाव (प्रताप०)। २—धनुर्भंग निरधार (वही)।

६—छठयँ[1] प्रकास कथा रुचिर दसरथ-आगम जानि।
लगनोत्सव श्रीराम को ब्याहबिधान बखानि ॥ (काशि०)।
१—छठे (कौमुदी)।

७—यहि प्रकास सप्तम कथा परसराम सौं बादु[1]।
रघुबर सौं अरु रोष तेहि भंजन मान बिषादु ॥ (काशि०)।
१—संवाद (कौमुदी)।

८—यहि प्रकास अष्टम कथा अवधि-प्रवेस बखानि।
सीताबर स्यौं[1] दसरथहि और बंधुजन मानि ॥ (काशि०)।
१—बरन्यो (कौमुदी)।

९—यहि प्रकास नवमे कथा रामगमन बन जानि।
जनकनंदनी को सुकृत-बरनन रूप बखानि ॥ (काशि०, कौमुदी)।

१०—यहि प्रकास दसमे कथा आवन भरथ सुनाम[1]।
राजमरन अरु तासु को बसिबो नंदीग्राम ॥ (काशि०)।
१—स्वधाम (कौमुदी)।

११—एकादसें प्रकास में पंचबटी को बास।
सूपनखा के रूप कौं रघुपति[1] करिहैं नास ॥ (प्रताप०, काशि०, कौमुदी)।
१—करिहैं रघुकुल (सर०)।

१२—या[1] बारहें प्रकास में दूषनादि को नास।
सीताहरन बिलाप[2] अरु[3] गत सुकंठ के पास ॥ (प्रताप०)।
१—या द्वादसें प्रकास खरदूषन त्रिसिरा (काशि०, कौमुदी); (दोधक) इहि द्वादसे······त्रिसिरा (सर०)। २—प्रलाप (वही)। ३—सुग्रीवँमिलन हरित्रास (काशि०, कौमुदी); सुग्रीव प्रकास मिलाप (सर०)।

१३—या तेरहें प्रकास में बालि[1] बध्यो कपिराज।
बरषा-बरनन सरद को सिंधु[2]-उलंघन-काज[3] ॥ (प्रताप०)।
१—बलि बधि कपिबरराज (सर०)। २—उदधि (काशि०, सर०, कौमुदी)। ३—साज (काशि०, कौमुदी)।
लंक बिलोकन सीय को रावनबचन बिसेषि।
मेघनाद हनुमंत[1] को दरसन बंधन लेखि ॥ (प्रताप०)।
१—हनिवंत (सर०)।

१४—या चौदहें प्रकास में ह्वैहै लंकादाह।
सागरतीर मिलान पुनि करिहैं रघुकुलनाह ॥ (प्रताप०, काशि०, कौमुदी)।

१५—सुनि[1] पंद्रहें प्रकास में दससिर करै बिचार।
मिलै[2] बिभीषन सेतु रचि रघुपति जैहैं पार ॥ (प्रताप०)।
१—या (काशि०, कौमुदी)। २—मिलन (वही)।

१६—या[1] बरननु है षोडसें 'केसवदास' प्रकास।
रावन अंगद सौं बिबिधि सोभित बचनबिलास ॥ (प्रताप०)।
१—यह (काशि०, कौमुदी)।

१७—या सत्रहें प्रकास में लंका को अवरोधु।
सत्रु[1]-चमू-बरनन समर लक्ष्मन को परमोधु[2] ॥ (काशि०, कौमुदी)।
१—मंत्र (प्रताप०)। २—परबोध (वही)।

१८—अष्टादसें प्रकास में 'केसवदास' कराल।
कुंभकर्न[1] को बरनिबो मेघनाद[1] को को काल ॥ (काशि०, कौमुदी)।
१—मेघनाद-बध (प्रताप०); मेघनाद को (सर०)। २—कुंभकर्न (प्रताप०, सर०)।

१९—ओनईसए[1] प्रकास में रावन दुख्खनिधान[2]।
जूझैगो मकराक्ष[3] पुनि ह्वैहै दूत[3]-बिधान ॥

रावन जैहै गूढ़थल रावर[४] लुटै बिसाल।
मंदोदरी कढ़ोरिबो[५] अरु रावन को काल ॥ (काशि०)।

१—यह बोनईस (प्रताप०)। २—निदान (कौमुदी०)। ३—लंक (दीन०)। ४—जहाँ जज्ञ की साल (प्रताप०)। ५—कढ़ोरिनी (वही)।

२०—या बीसए प्रकास मैं सीता मिलन बिसेषि।
ब्रह्मादिक की[१] स्तुति गमन अवधिपुरी कौं लेखि।
प्राग[२] बरनि अरु बाटिका भरद्वाज की जानि।
रिषि रघुनाथ मिलाप कहि पूजा करि सुख मानि ॥ (काशि०)।

१—स्तुति (प्रताप०); अस्तुति (कौमुदी०)। २—बरनि प्रयाग सुबाटिका (प्रताप०)
'दीन० १' मैं यह पाठ है—

बीस मैं सीतामिलन ब्रह्मस्तुति जु प्रमान।
बन बर्ननै प्रयाग को भरद्वाज-सनमान ॥

२१—इकईसए[१] प्रकास मैं कह[२] रिषि दानबिधान।
भरथ[३]-मिलन कपिगुनन कौं श्रीमुख आप बखान ॥ (काशि०, कौमुदी०)।

१—या इकईस (दीन० १)। २—द्विज सनाढ्य की बृत्ति (प्रताप०)। ३—भरतादिक के मिलन अरु बानरगन की किर्ति (वही); भरतादिक के मिलन अरु बानरालि की कृत्ति (दीन० १)।

२२—या बाइसे प्रकास मैं अवधिपुरीहि प्रवेस।
पुरबासिन मातान सौं मिलिबो रामनरेस ॥ (काशि०, कौमुदी)।
'प्रताप०' मैं यह पाठ है—
बाईसै बरनन अवधपुरबासिन की प्रीति।
मिलिबो सब मातानि को कहि 'केसव' यह नीति ॥

२३—या तेइसे प्रकास मैं रिषिजन-आगम लेखि।
राज्यश्री-निंदा कही श्रीमुख राम बिसेषि ॥ (काशि०, कौमुदी)।

२४—चौबीसए प्रकास मैं राम बिरक्त बखानि।
बिस्वामित्र बसिष्ट सौं[१] बोध कही[२] सुभ आनि ॥ (काशि०)।

१—स्यौं (कौमुदी)। २—कह्यो (वही)।
'दीन०' मैं यह रूप है—

चौबीसयँ मैं जानकी जीवनदुख्ख-प्रमाद।
रिषिन सहित श्रीरामजू करिहैं सुख संवाद ॥

२५—कथा पचीस प्रकास मैं रिषि बसिष्ट सुख पाइ।
जीवउधारन-रीति सब रामहि कह्यो सुनाइ ॥ (काशि०, कौमुदी)।

२६—कथा छबीस प्रकास मैं कह्यो बसिष्ट बिबेक।
रामनाम को तत्व अरु रघुबर को अभिषेक ॥ (काशि०, कौमुदी)।

३६—छत्तीसएँ प्रकास मेँ लक्ष्मन-मोहन जानि[1] ।
आयसु लहि श्रीराम को आगम-भरथ बखानि[2] ॥ (काशि०, कौमुदी) ।
१—कुससंबाद बखानि (प्रताप०)। २—लक्ष्मन सोयो जुद्ध मेँ लक्ष्मन मोहन आनि (वही०) ।

३७—सैँतीसएँ प्रकास मेँ लव कटु बैन बखान ।
मोहन बहुरि भरथ्थ कौँ लागे मोहन बान ॥ (काशि०, कौमुदी) ।

३८—अठतीसएँ[1] प्रकास मो अंगदजुद्ध बखान ।
ब्याज-सैन रघुनाथ को[2] कुसलव-आश्रम जान ॥ (काशि०) ।
१— अड़तीसएँ (कौमुदी) । २— के (वही) ।

३९—नवतीसएँ प्रकास सिय रामसँजोग निहारि ।
जज्ञ पूरि सब सुतन कौँ दीन्हो राज बिचारि ॥ (काशि०, कौमुदी) ।

---

(२) छंद-लक्षण

(जहाँ कोई संकेत नहीँ है वहाँ 'प्रताप०' समझेँ)

।१८ *श्री*—गुरु एक पद कहि । चारि बर्न श्री सु लहि ॥

।१० टि० *मधु*—दुइ लघु को पद अक्षर चारि । ताकौँ बुध मधु छंद बिचारि ॥

।११ *रमण*—जुगल सगन । छंद रमन ॥

।१२ *तरणिजा*—नगन गुर नगन गुर । तरनिजा धरहु उर ॥

।१३ *प्रिया*—सगन एक द्वै जगन गुरु पुनि । प्रिया छंद यह कहत हिये गुनि ॥

।१५ *कुमारललिता*—जगन सगन अंत गुरु । कुमारललिता छंद कुरु ॥

।१९ *गाहा*—बारह प्रथम द्वितीय मेँ कला अठारह देहु ।
तिसरे बारह चउथ मेँ पंद्रह गाहा एहु ॥

।२० *चतुष्पदी*—दस परि करि बिश्राम पुनि बसु अरु द्वादस जानि ।
देहु अंत गुर द्वै तहाँ चतुःपदी तहँ आनि ॥

।२२ *रोला*—चौबिस कला को चरन । लघु अंत रोला बरन ॥

।२३ *घत्ता*—(लीलावती)—
बत्तिस कला लिलावति जानो । यामेँ और न नेम बखानो ॥

।२५ *पद्धटिका*—षोडस कला चरन प्रति जानो । पद्धटिका सो छंद बखानो ॥
पद्धटिका नामांतरं पद्धारी ज्ञातव्यम् ।÷
प्रतिचरन कला षोडस लसंत । कहि छंद पधारी जगन अंत ।+

।२८ *नवपदी*—सोरह मात्रा भेद मैं छुंद नवपदी जानि।
गुरु लघु को कछु नेम नहिँ अंत एक लघु आनि॥

।३० *अरिल्ल*—षोडस कला को अडिला जानहु। बिबि लघु गमक अंत मह आनहु॥

।३३ *पादाकुलक* (शशिवदना)– नगन यगन जहँ। ससिबदना तहँ॥+

।३४ *चतुष्पदी* (पद्मावती)—कला अठारह प्रथम मैं द्वै बिश्राम बिचारि।
द्वादस कला सु अंत मैं पद्मावती सुधारि॥

।३६ *हाकलिका*—तीनि भगन जहँ कीजिए लघु इक इक गुरु अंत।
हाकालिका सो छुंद है बरनत कबि बुधिवंत॥

।३८ *आभीर*—सिव कल जगन सुअंत। कही अभीर अनंत॥

।३६ *हरिगीत*—प्रथमहि द्वै लघु मध्य पुनि इकइस कला प्रतीत।
अंत रगन जहँ दीजिए छुंद होत हरिगीत॥

।४१ *त्रिभंगी*—दस बसु बसु रस पर बिमल बिरति धर जगनहीन कबि करहु जहाँ।
भनि सातो गन जहँ अंत सगन तहँ होत त्रिभंगी छुंद तहाँ॥ ÷

त्रिभंगी लक्षनांतर दोहा +

दस मात्रा पर बिरति जहँ बसु बसु रस पर संत।
छुंद त्रिभंगी जगन बिनु देहु एक गुर अंत॥+

।४३ *हीरक*—चारि लघुन आदिहि गुर तीनि थलनि कीजियै।
अंत रगन ताहि तबहि हीरक कहि दीजियै॥

।४४ *सिंहविलोकित* (सिंहावलोकन)—
चारि सगन कै द्विज चरन सिंहबिलोकित येहु।
अंत आदि के चरन मैं मुक्तक पद असि देहु॥÷
औ केसवदास याहू कौं सिंहबिलोकित लिख्यौ है।÷
लक्षनांतर-रस आयुध बहु कला। तहँ सिंहबिलोकन छुंद भला॥+

।४५ *मरहट्टा*—धरि छकल चतुःकल पंच धरहु पुनि अंतहु गुर लघु होइ।
कहि कबि सु मरहठा छुंद छबीलो जानत सज्जन लोइ॥

।४६ *सोरठा*—बिषम इगारह होइ, सम मैं तेरह जानिये।
सोरठ जानिय सोइ, दोहा उलटो करि पढ़े॥

।४७ *कुंडलिया*—दोहा कहि प्रथमहि बहुरि चारि चरन रोलाहि।
आदि अंत जुरि जमकजुत कुंडलिका कहि ताहि॥

२।१ *हंस*—आदिहि गुर दै लघु पुनि अंत। पंद्रह कला सु हंस कहंत॥

।२ *मालती*—आदि नगन पुनि यगन दै रचहु मालती छुंद। (कौमुदी)।

।४ *समानिका*—रगन जगन अंत गुरु। सो समानिकाहि कुरु॥
आदि अंत गुर बरनिये जगन नगन तिन माह।
कीनी प्रगट समानिका सप्तबर्न कबिनाह॥ (सर०)।

।५ *मदनमल्लिका*—दीर्घ ह्रस्व चारि चार। मल्लिका सु छंद यार॥
अष्ट बरन सुभ[1] सहित क्रम गुरुलघु 'केसवदास'।
मदनमल्लिका नाम यह कीजै छंद प्रकास॥ (दीन०१, सर०, कौमुदी)।
१—पद देहु (सर०)।

।१२ *तोमर*—सगन एक जगन दोइ। तोमर सु छंद होइ।
सगन आदि रचि[1] द्वै जगन रचिजै[2] बहु सुखकंद।
चरन चारु[3] नव बरन मैं प्रगटउ[4] तोमर छंद॥ (सर०, कौमुदी)।
१—पुनि (कौमुदी)। २—धरिए। ३—चारि। ४-प्रगटत (वही)।

।१४ *अमृतगति*—जगन[1] करौ द्वै नगन मैं देहु एक गुर अंत।
प्रगट[2] करौ यह अमृतगति छंद नाम[3] भगवंत॥
१—जगन रच्यौ जू [दू] नगन मैं (सर०); नगन जगन पुनि नगन दै (कौमुदी)। २—प्रगट कर्यो वह (सर०); तब प्रगटतु है (कौमुदी)
३—महाछबिवंत (कौमुदी)।
लक्षनांतर—द्वादस कला गुरु अंत। यह अमृतगति बुधिवंत॥

।१५ दोधक—आदि अंत गुरु मध्य पुनि तीनि[1] सु सगन बिचारु।
पद एकादस बरन को दोधक छंद सुधारु[2]॥
१—कीन्ही चारु (सर०)। २—प्रचारु (वही)।

।१६ *तोटक*—रचि[1] पद बारह बरन को[2] 'केसवदास' सुजानु।
चारि सगन को चारुमति तोटक छंद बखानु[3]॥
१—प्रति (कौमुदी)। २—दै (वही)। ३—प्रमान (सर०)।

।१८ षट्पद (छप्पय)—प्रथम इगारह कला पुनि तेरह रोला रीत।
चारि सु यौं पद जुगल मैं पंद्रह तेरह नीत॥

।१६ *सुंदरी*—चारि भगन को सुंदरी छंद छबीलो होइ।
प्रतिपद द्वादस[1] बरन[2] रचि[3] 'केसव' कबिकुललोइ॥
१—बारह (कौमुदी)। २—बर्न (सर०)। ३—धरि रचौ याहि सब कोय (वही)।

।२७ *पंकजवाटिका*—आदि भगन पुनि नगन रचि[1] बहुरि जगन द्वै आनि।
[2]पंकजबाटिक अंत लघु तेरह बरन बखानि॥
१—धरि (कौमुदी)। २—अँति लघु पंकजवाटिका तेरह बर्न बखानु (सर०); अंतहि लघु दै छंद रचु तेरह बरन सुजान (कौमुदी)।

।२८ *चामर*—दिर्घ ह्रस्व दिर्घ ह्रस्व बर्न पंद्रहो धरो।
पिंगलै बिलोकि चारु छंद चामरै करो॥
रगन जगन पुनि जगन रचि बहुरयौ रगनहि आनि।
आदि अंत गुरु चामरहि पंद्रह बर्न बखानि॥ (सर०)।

।२६ *निशिपालिका*—त्रिगुर आदि तिहु नगन की अंत[1] रगन रचि चारु।
होइ छंद निसिपालिका पंद्रह बरन बिचारु॥
१—अंत र भगन बिचारु (सर०)। [दूसरा दल सर० में नहीं है]।

३।२ *सुप्रिया*[1]—समुझु सबै लघु अंत गुरु सुप्रिय[2] छंद प्रकास।
अक्षर प्रतिपद पंचदस बरनहु[3] 'केसवदास'॥
१—सुखप्रिया (सर०)। २—सुप्रिया (कौमुदी)। ३—बरनत (वही)।

।३ *नराच*—लघुगुरु क्रमहीं देहु पद[1] सोरह[2] बर्न प्रमान।
छंद नराच बखानियै 'केसवदास' सुजान॥
१—देउ (सर०); देव (कौमुदी)। २ षोडस (वही)।

।४ *विशेषक*—पंच भगनमय[1] अंत गुरु एक[2] रच्यौ[3] सुभसाज।
प्रगटहु[4] छंद बिसेषकहि[5] 'केसव' कबिकुलराज॥
१—व्यय (सर०); धरि (कौमुदी)। २—रचै (सर०)। ३—षोडस बरन सुजान (वही)। ४—प्रगटत (कौमुदी)। ५—बिसेषका कह केसव कबिराज (वही)।

।५ *चंचला*—क्रमहीं गुरलघु रुचिर पद प्रतिपद षोडस बर्न।
चारु छंद यह चंचला प्रगटहु[2] कबि मनहर्न॥
१—दीजिये (कौमुदी)। २—प्रगटत (वही)।

।७ *शशिवदना*—आदि नगन अरु यगन पुनि अक्षर षट परमानु।
ससिवदना सो छंद सुभ 'केसवदास' बखानु॥

।१२ *चंचरी*—जगन दोइ पुनि यगन एक बहुरि रगन द्वै आनि।
आदि अंत गुर चंचरी बरन अठारह बानि॥ (सर०)

।१३ *शार्दूलविक्रीड़ित*—मगन सगन जगनै सगन द्वै गुर यगन लसंत।
सारदूलबिक्रीड़ितै इक लघु इक गुर अंत॥

।१५ *सवैया*—(माधवी)—सात भगन जहँ कीजिये दीजै द्वै गुर अंत।
छंद माधवी कहत हैं तेइस बर्न लसंत॥

।२६ *घनाक्षरी*—(मनहरण दंडक)—
सोरह पर बिरति पुनि पंद्रह पर कीजिये।
अंत गुर छंद मनहर्न कहि दीजिये।
सौरस्यनामांतरं मनहरण इति बोधव्यम्।

।३१ *गीतिका*—आदि सगन पुनि जगन द्वै भगन रगन जहँ होइ।
सगन देहु लघु एक गुर छंद गीतिका सोइ॥
सगन जगन द्वै भगन पुनि रगन सगन इकु आनु।
लघु गुर अंतहिं गीतिका बिसति बर्न बखानु॥ (सर०)।

४।२ *डिल्ल* (तिलक)—सगन दोइ। तिलक होइ ॥

।४ *बिज्जोहा*—रगन द्वै होइ जह। छंद बिज्जोह तह ॥

।७ *मंथान*—द्वै तगन आनि। मंथान जानि ॥

तगन दोय षट बरन जुत रचहु मंथना छंद ॥ (कौमुदी)

।८ *मालती*—द्वै जगन जहँ जोइ। तहँ मालती होइ ॥+

जगन दोइ षट बर्नजुत जानु[1] मालती कंत[2] । (सर०)।

१—रचहु (कौमुदी)। २—छंद (वही)।

।१० *तुरंगम*—षट लघु दीजै द्वै गुर अंत। छंद तुरंगम तहाँ लसंत ॥

नगन दोइ गुरु अंत द्वै रचहु तुरंगम तंत[1] । (सर०)।

१—छंद (कौमुदी)।

।१३ *कमला*—नगन आदि पुनि सगन दै लघुगुर दीजै अंत।

अष्ट[1] बरन प्रति पदन[2] के[3] कमला छंद कहंत ॥

१—आठ (कौमुदी)। २—प्रतिपद लखौ (वही)। ३—कै (सर०)।

।१४ *तोमर*—सगन एक द्वै जगन रचि तोमर छंद प्रसिद्धि।

प्रतिपद नवधा बरन दै 'केसवदास' सुबुद्धि[1] ॥

१—प्रसिद्ध (सर०)।

।१७ *संयुता*—सगनै जु द्वै परजंत है। कहि संजुता गुर अंत है ॥

।२४ *मधुभार*—करि कला आठ। मधुभार पाठ ॥

५।१ *तारक*—जहँ तोटक एक गुरूहि बढ़ाई। यह तारक छंद कहो कबिराई ॥

।२ *मोहन*—आदि भगन पुनि नगन रचि लगन यगन पद चारि।

क्रम तैं बारह बर्न जहँ मोहन छंद बिचारि ॥

।६ *कुसुमविचित्रा*—चारि लघु दोइ गुर बार द्वै कीजिये।

कुसुमबिचित्र सुभ छंद कहि दीजिये ॥

।७ *कलहंस*—आदि सगन पुनि जगन द्वै भगन रगन जहँ पाइ।

छंद कहत कलहंस सो पंद्रह बर्न बनाइ ॥

।९ *चौपाई*—सोरह कला चरन प्रति आनो। चौपाई सो छंद बखानो ॥

।१२ *चंचरी*—रगन सगन दै जगन द्वै भगन रगन दै और।

होत चंचरी छंद तहँ बरनत कबिसिरमौर ॥ (मिलाइए ३।१२)

।२१ *मोहन*—आदि सगन पुनि जगन रचि अक्षर षट पद मानि।
कबिजन ताकों कहत हैं मोहन छंद सुजान ॥

।३३ *स्वागता*—रगन नगन अरु भगन रचि दीजे द्वै गुर अंत।
होत स्वागता छंद तहँ बरनत हैं बुधिवंत ॥

।३५ *पद्धटिका* (पज्झटिका)—
तीनि सगन क्रम सों जहाँ जगन अंत मह आनि।
प्रज्झटिका सो छंद है कबिकुल कहत बखानि ॥ (मिलाइए १।२५)

।४७ *चित्रपद*—द्वै भगन द्वै गुर अंत जहँ। सो चित्रपद कहि छंद तहँ ॥

६।६ *अनुकूला*—भगन तगन वो नगन पुनि दीजै द्वै गुर अंत।
छंद होत अनुकूल तहँ भाख्यो सुभग अनंत ॥

।१२ *भुजंगप्रयात*—जहाँ चारि कीजै यगन्नै सुपातै। तहाँ छंद जानौ भुजंगप्रयातै ॥

।२२ *तामरस*—आदि नगन द्वै जगन पुनि अंत भगन कह देहु।
छंद तामरस होत तहँ कबिजन जानहु येहु ॥

।२७ *मालिनी*—षट लघु धरि द्वै गुर धरो फेरि रगन द्वै जत्र।
अंत एक गुर दीजिये होत मालिनी तत्र ॥

७।८ चंद्रकला—करियै सगनै क्रम आठ जहीँ। कहि चंद्रकला सुभ छंद तहीँ ॥

।१२ *किरीट*—आठ जहाँ भगनै करियै क्रमहीन न होइ प्रबीन सुनो सब।
याहि किरीट करो निःसंक मयंक-उदै सम होहु सुखी सब ॥

।१४ दंडक—आठ आठ पै बिरति त्रय देहु सुकबि अभिराम।
बहुरि सात पर दीजिये दंडक काम ललाम ॥ (मिलाइए ३।१६)

।१६ *मदिरा*—सात भगन जहँ। मदिरा कहि तहँ।

।४८ *मोटनक*—आदि अंत गुर दीजिये मध्य भगन जहँ तीन।
छंद मोटनक कहत सो जे हैं सुकबि प्रबीन ॥

८।१ *सुमुखी*—द्वै लघु अरु सगन तीन। सुमुखी यह छंद कीन ॥

।४ *कलहंस*—आदि सगन पुनि जगन रचि बहुरि सगन दै दोइ।
छंद होत कलहंस तहँ अंत एक गुर होइ ॥

६।७ *मोतियदाम*—जहँ करियै जगनै क्रम चारि। सु मोतियदाम ललाम बिचारि ॥

।१० *सारवती*—दै भगनै भ य अंत गुरै। सारवती यह छंद फुरै ॥

।२५ *सुप्रिया*—चौदह लघु दै इक गुरु अंत। छंद सुप्रिया तहाँ लसंत ॥ (मि० ३।२)

।२६ *द्रुतबिलंबित*—आदि नगन द्वै भगन पुनि अंतरगत जहँ होइ।
द्रुतबिलंबिता छंद सो ताहि कहत सब कोइ ॥

।३४ *जगमोहन* (दंडक)—आठ आठ पै बिरति त्रय बहुरि सात पर जास ।
दंडक काम सु होत तहँ कीन्हो सेष प्रकास ॥(मि०७।१४)

।३६ *अनंगशेखर* (दंडक)—जगन रगन जगन रगन क्रमहिं पाँच पाँच जानि ।
लघु गुरु सु अंत मैं अनंगसेषरै बखानि ॥

।४० *प्रकर्ष* (दंडक)—षट अक्षर पर बिरति दै दीजे दस पर और ।
पुनि षट पर नव पर बहुरि सो प्रकर्ष सिरमौर ॥
जगमोहनस्य नामांतरं प्रकर्ष इति बोधनम् ।

१०।३९ *इंद्रवज्रा*—तगन दोइ रचि जगन इक द्वै गुर दीजै अंत ।
इंद्रवज्र सो छंद है बरनत सेष अनंत ॥

।४० *उपेंद्रवज्रा*—इंद्रवज्र रचि सर्ब । बरन्यो नाग अखर्ब ।
पूर्ब बरन लघु कीजिये । उपेंद्रबज्र सो छंद है ॥

११।१ *उद्धता*—रगन नगन पुनि रगन रचि लघु गुरु अंत सु आनि ।
होत उद्धता छंद सो कबिसिरमौर बखानि ॥

।२ *चंद्रवर्त्म*—रगन नगन अरु भगन रचि सगन रचो जहँ आनि ।
चंद्रबर्तमनि ताहि कौं छंद फनीस बखानि ॥

।३ *वंशस्थविल*—जगन सु द्वै गुर सगन पुनि लघु गुर लघु गुर होइ ।
बंसस्थबिल सु छंद है कहत सयाने लोइ ॥

।६ *प्रमिताक्षरा*—द्वै लघु गुर लघु गुर लघुहि बहुरि सगन द्वै अंत ।
ताहि कहत प्रमिताक्षरा जे कबिता-बुधिवंत ॥

।७ *लक्ष्मीधर*—तीनि रगन बर । सो लक्ष्मीधर ॥

।८ *मालती*—नगन एक द्वै जगन रचि अंत रगन है जत्र ।
कबि कोबिद सब कहत हैं छंद मालती तत्र ॥

।१० *वसंततिलक*—तगन भगन द्वै जगन रचि द्वै गुर अंत सुधारि ।
तहँ बसंततिलका कहत नाग नरिंद्र बिचारि ॥

।१४ *पृथ्वी*—जगन सगन लघु गुर रचो नगन रगन द्वै अंत ।
पृथिवी छंद फनिंद कहि सत्रह बर्न लसंत ॥

।१५ *पद्मावती*—तीस कला को छंद है बिरति जानि तहँ दोइ ।
अट्ठारह अरु बारहे पदुमावति सो होइ ॥

।१८ *चंद्रकला* (दुर्मिला)—
करियै सगनै क्रम आठ जहाँ कहुँ भूलि नहीँ गन और परै ।
द्रुमिला यह छंद फनिंद भनैं सब आनँदकंद न काहि करै ॥ +

।१६ *हाकलिका*—भगन तीनि धरिये सुभग पुनि लघु गुरुहि मिलाउ।
हाकलिका सुभ छंद रचि 'केसव' हरिगुन गाउ ॥ (कौमुदी)
(मि० १।३६)

।२३ *नाराच* (द्वितीय)—नगन दोइ अरु रगन चारि जहँ।
कहत सेष नाराच छंद तहँ।

।३२ *मरहठा*—वोनतिस मात्रा भेद मँ मारष्टादिक देखि।
आठ लाख बत्तिस सहस्र चालिस भेद बिसेषि ॥

।३४ *मनोरमा* (द्वितीय तारक)—चारि सगन दै द्वै लघु अंत।
तारक छंद सु कह्यो अनंत ॥

।३६ *मल्लिका*—दीर्घ ह्रस्व को क्रमै सुबर्न आठ है सही।
पिंगलै बिलोकिकै सु छंद मल्लिका कही ॥

१२।२१ *हरिलीला*—बीस कला को छंद है तगन आदि जगनंत।
हरिलीला सो छंद है भाख्यो सेष अनंत ॥

।२८ दोधक—कै भगनै त्रय द्वै गुर पाछे। दोधक छंद कहैं कबि आछे ॥ (मि० २।१५)

।४१ चंद्रकला—दुर्मिला छंदस्य नामांतरं चंद्रकला इति बोधव्यम्।

।६२ दंडक—बिरति तीनि बसु पर परै बहुरि सात पर होइ।
एकतिस अक्षर को चरन दंडक नाम सु होइ ॥ (मि० ६।३४)

१३।३६ दंडक—आठ आठ पर तीनि बिसराम बर कहत कबितकर आठ पर फेरि होइ।
जानहु घनाक्षरहि बीस-बार अक्षरहि बरतन साक्षरहि कबिकुल सबकोइ

।८६ सुंदरी—जहँ रगन नगन द्वै भगन होइ।
उपजाति सुंदरी छंद सोइ ॥

१५।१३ कलहंस—सगन जगन पुनि द्वै सगन देहु अंत गुर एक।
होत छंद कलहंस सो कीन्हो सेष बिबेक ॥ (मि० ८।४)

१६।२ *चित्रपदा*—द्वै भगनै गुर द्वै है। चित्रपदा सु कहै है। (मि० ५।४।७)

।६ *मत्तमातंगलीलाकर* (दंडक)—

पाइ करो नौ रगन तैं चौदह लोचन चाहि।
नाम मत्तमातंग को लीलाकर कहि ताहि ॥

औ केसोदास आठहू रगन को मत्तमातंग दंडक लिख्यो है।
औ पिंगल के मते आठ रगन को लक्षी छंद होत है—तद्यथा

रचि भुजंग बसु यगन कौं लक्षी रगनै आठ।
आठ भ कहत किरीट है आठ स दुर्मिला पाठ ॥

।१८ *द्रुतविलंबित* (सुंदरी)—नगन एक पुनि भगन है रगन अंत में होइ ।
नाग रच्यो यह सुंदरी पिंगलमत तें सोइ ॥ (मि०६।२६)

१७।२७ *चंद्रवर्त्म*—रगन नगन अरु भगन दै अंत सु सगन सुधारि ।
चंद्रवर्त्मा छंद यह भाख्यो सेष बिचारि ॥ (मि० ११।२)

१६।५० *लीलावती*—लघुगुरु बर्न सु नेम नहि बिरति नेम नहि होइ ।
बत्तिस मात्रा को तहाँ छंद लिलावति सोइ ॥

।५३ *माधवती*—आठ सगन जहँ दीजिये इक गुर अंत प्रमान ।
माधवती सो छंद है कबिकुल करत बखान ॥

२०।६ *उपजातिवज्रा*—तक्कार कन्नो सगनो यगन्नो, सो इंद्रवज्रा दस एक बन्नो ।
उपेंद्रबज्रा जगनादि सोई, दुहूँ मिले पै उपजाति होई ॥

२१।१ *सोमराजी*—दोइ यगनै जहाँ । सोमराजी तहाँ ॥

।५ *गोपाल*—दोधक अंत परै लघु जाहि । छंद गोपाल कहै सब ताहि ।

।७ *टि० अनुष्टुप*—पद आठ अक्षर को प्रथम तहँ चारि तजि लघु गुर धरो ।
पद दूसरे अति बरन तजि है बार लघुगुर कों करो ।
इहि भाँति रचि पद चारि लेहु बिचारि आनँदकंद है ।
तहँ होत आनि अनुष्टुपै सुभ छंद भाखि फनिंद है ॥

।१६ *गौरी* (मोटक)—मोटनक छंद इक अंत गुर और जहँ ।
नागपति कह्यो यह मोटक सु छंद तहँ ॥

।३० *मदनमनोहर* (मोहन)—भगन जगन सगन नगन भगन फेरि आनियै ।
जगन सगन नगन और भगनै बखानियै ।
दीजै लघु एक और रगन अंत में धरौ ।
पिंगलै बिचारि छंद मदनमोहनै करौ ॥

२२।२ *तरंगिणी*—तगन भगन रचियै क्रमहि गुर लघु अंत सुधारि ।
है तरंगिनी छंद सो कबिजन कहत बिचारि ॥

।८ *विजय*—आठ जगन लघु अंत में छंद सो बिजय प्रकास ।
बरनवृत्ति की रीत यह भाखै 'केसवदास' ॥

।१६ *मदनहरा*—तिरभंगी के चरन प्रति अंत कला बसु और ।
मदनहरा सो छंद है कह्यो सेष करि गौर ॥

२३।७ *रूपमाला*—रगन सगन जहँ होइ जगन जुगल पुनि भगन रचि ।
गुर लघु अंतहु सोइ, छंद रूपमाला वहै ॥

।१४ *चौपई*—पंद्रह कला होत चौपई । भाख्यो सेष छंद सुखमई ॥

२४।११ *मकरंद*—सात जगन रचिये क्रमहि मगन एक धरि अंत ।
होत मंजरी छंद तहँ बरनत सुकबि अनंत ॥
मंजरी-छंदस्य नामांतरं मकरंदेति ज्ञातव्यम् ।

२६।३० *झूलना* (रूपमाला)—पद आदि में जहँ सगन । पुनि अंत में जहँ जगन ।
कल बीस दस बसु होइ । कहि रूपमाला सोइ ॥
यह केसोदास के मते दूसरो रूपमाला है ।

२७।१० *रूपमाला* (चंचरी)—चौबिस कल जगनांत जो छंद चंचरी होत ।
मात्रामुक्त प्रकर्न में कीन्हे सेष उदोत ॥

२९।२० *हरिप्रिया*—कला बयालिस धरि चरन द्वै गुर अंत बिलास ।
हरिप्रिया सो छंद है बिरच्यो 'केसवदास' ॥

३१।२४ *विशेषक* (नील)—दै भगनै क्रम सों जहँ पाँच गुरेक सही ।
जानहु नीलहि यों कबिव्रातन बात कही ॥ (मि० ३।४)

३३।४३ *तोटक*—करियै सगनै क्रम चारि जहाँ । यह तोटक छंद प्रसिद्ध तहाँ ॥
(मि० २।१६)

३४।३६ *मरहट्टा*—षटकल । श्रुति थल । जुग कल । गुर हल ॥ (मि० १।४५)

छंदमाला

१

(भुजंगप्रयात)

अनंगारि है पै लसै संग नारी। दिपै मुंडमाला कहूँ गंगधारी।
भखै कालकूटै लसै सीस चंदै। कहा एक हो ताहि त्रैलोक बंदै ॥१॥

महादेव जाके न जानै प्रभावै। महादेव के देव कौं चित्त भावै।
महानाग सोहै सदा देहमाला। महाभावयंती करौं छंदमाला ॥२॥

(दोहरा)—भाषाकबि समुझैं सबै, सिगरे छंद सुभाइ।
छंदन की माला करी सोभन 'केसवराइ' ॥३॥

एक बर्न को पद प्रगट छब्बिस लौं मतिवंत।
तदुपरि 'केसवराइ' कहि दंडक छंद अनंत ॥४॥

श्री—(दोहा)

(लक्षण)—दीर्घ एक ही बरन को दीजै पद सुखकंद।
मंगल सकल निधान जग नाम सुनहु श्री छंद ॥५॥

(उदाहरण)—श्री धी। री घी—श्री छंद S,S,S,S

नारायण

लक्ष०—लघु दीरघ को जहँ बरन द्वै अक्षर गनि लेहु।
वह *नारायन* छंद है सुखदायक श्रीगेहु ॥६॥

उदा०—रमा। समा। हरी। करी।—*नारायण* ।S, ।S, ।S, ।S

रमण

लक्ष०—द्वै लघु दीजै आदिहीं, एक अंत गुरु जानि।
रमनिरमन के रमन कौं *रमन* छंद करि मानि ॥७॥

उदा०—जगु ज्यौं, तजियै। हरि यौं, भजियै।—रमण ।।S, ।।S, ।।S, ।।

---

[५] श्री०—सिद्धिरिद्धि (चंद्रिका १।८.)।

तरणिजा

लक्षण०—नगन आदि गुरु अंत है छंद *तरनिजा* जानि।

उदा०—बरनिबो, बरन सो। जगत को सरन जो।

—तरणिजा ।।।S, ।।।S, ।।।S, ।।।S

मदन

रगन आदि लघु अंत है; *मदन* छंद परमानि ॥८॥

उदा०—रामचंदु। लोकबंदु। चित्त चाहि। दुःख दाहि।

—मदन S।S।, S।S।, S।S।, S।S।

माया

रगन अंत द्वै आदिलघु *माया* छंद बखानु।
'केसवदास' प्रकास सो पंचबरन परमानु ॥९॥

उदा०—सुखकंद हैं, रघुनंदजू। जग यों कहै, जगबंदजू।

—माया ।।S।S, ।।S।S, ।।S।S, ।।S।S

अथ षडाक्षरभेद—मालती

आदि नगन पुनि जगन रचि चरन षडक्षर बानि।
अमल *मालती* छंद यह कबिकुल कौं सुखदानि ॥१०॥

उदा०—बरन बजै न। लगत कुचैन। अरथबिकास। बिरुध सुभास।

—मालती ।।।।S।, ।।।।S।, ।।।।S।, ।।।।S।

सोमराजी

जगन दोय मय बर्न षट *सोमराजि* सो छंद।

—सोमराजी ।S।।S।, ।S।।S।, ।S।।S।, ।S।।S।

शंकर

रगन जगन षटबर्नमय सो संकर जगबंद ॥११॥

उदा०—बात तात मानि। चित्त माझ आनि।
एक राम सत्य। दूसरो असत्य।

—शंकर S।S।S।, S।S।S।, S।S।S।, S।S।S।

बिज्जोहा

रगन दोय षटबर्नजुत *बिज्जोहा* परमान।

उदा०—संभुकोदंडु दै। राजपुत्री किते।
टूक द्वै तीनि कै। जाहुँ लंका जितै॥

—बिज्जोहा S।SS।S, S।SS।S, S।SS।S, S।SS।S

---

[८] जो-सो (चंद्रिका १।१२)।

मंथान

तगन जुगल षट बर्न करि मानौ मन *मंथान* ॥१२॥

उदा०—श्रीराम सोहैं जु। सीता सती सैं जु।
भाई जती हैं जु। तीन्यौ चले सैं जु।

—मंथानक SS|SS|, SS|SS|, SS|SS|, SS|SS|

सुखदा

आदि अंत गुरु दोय दै मध्य दोय लघु आनि।
कहि 'केसव' षट बरन को *सुखदा* छंद बखानि ॥१३॥

उदा०—माया सन रूठौ। जानौ जग भूठौ।
एकै हरि साँचौ। बैराग न पाँचौ।

—सुखदा SS||SS, SS||SS, SS||SS, SS||SS

अथ सप्ताक्षरभेद—कुमारललिता

आदि जगन दै सगन पुनि अंत गुरु इक लेखि।
करि *कुमारललिता* प्रगट बर्न सप्त सुभ देखि ॥१४॥

उदा०—सबै जगत गावै। बिरंचि समभावै।
तऊ न समझै रे। हियैं न हरि है रे।

—कुमारललिता |S|||SS

प्रमाणिका

आदि एक गुरु सोभिजै जगन रगन तिन माह।
कीनी प्रगट *प्रमानिका* सप्तबर्न कबिनाह ॥१५॥

उदा०—छाड़ि देहि रे हठै। संग छाड़िजै सठै।
चित्त हाथ कीजियै। मुक्ति छीनि लीजियै।

—प्रमाणिका S|S|S|S

अथ अष्टाक्षरभेद—मल्लिका (S|S|S|S)

जगन रगन रचि आदि गुरु एक अंत लघु लेखि।
सुनौ *मल्लिका* छंद यह अष्ट बरन पद देखि ॥१६॥

उदा०—देस देस के नरेस। सोभिजै सभा सुबेस।
जानिजै न आदि अंत। कौन दास कौन कंत।

---

[१२] बाहुँ०—बाउँ लंकाहि लै (चंद्रिका ४।४)।

नगस्वरूपिणी

आठबर्न को बर्न जहँ क्रमहीँ लघु गुरु होइ।
कहियत *नगस्वरूपिणी* छंद सकल कबिलोइ ॥१७॥

उदा०—सुमित्र तैं न भागिये। अमित्र तैं न रागिये।
बिचारि देखि धौं हिये। भली परै कहा किये।
—नगस्वरूपिणी ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ

मदनमोहनी

तगन आदि दै जगन पुनि गुरु लघु दीजत अंत।
मदनमोहनी छंद यह अष्टबर्न सुनि कंत ॥१८॥

उदा०—जाकौं सब जानि ठग्गु। ताकौं तजिकै सु भग्गु।
जारै किन जीव दुक्ख। सोचै रहि पाइ सुक्ख।
—मदनमोहन ऽऽ।।ऽ।ऽ।

बोधक

आदि अंत गुरु दोय दै मध्य रचौ लघु चारि।
अष्टबर्न 'केसव' कहत *बोधक* छंद बिचारि ॥१९॥

उदा०—झूठे हय गय तेरे। लक्ष्मी हय गय चेरे।
सीतापति अति साचे। तासौं कवनहु राचें।
—बोधक ऽऽ।।।।ऽऽ

तुरंगम

नगन दोय गुरु अंत द्वै रचौ *तुरंगम* छंद।
अष्टबर्न को एक पद 'केसव' आनँदकंद ॥२०॥

उदा०—बहुत बदन जाके। बिबिध बचन ताके।
बहुभुजजुत जोई। सबल कहत सोई।
—तुरंगम ।।।।।।ऽऽ

अथ नवाक्षरभेद—नागसुरूपिणी

आदि अंत रचि जगन सुभ मध्य रगन रचि मित्त।
प्रगटहु *नागसुरूपिनी* नव अक्षर धरि चित्त ॥२१॥

उदा०—भले बुरे जपौ जु ईस। बिराजमान चंद्र सीस।
सिवा बिलास सोभमान। सु सिद्धि निद्धि देत दान।
नागसुरूपिणी—।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।

---

[१९] (चंद्रिका २३।२)। [२०] कहत–कहिय (चंद्रिका ४।१०)।

तोमर

सगन आदि गुनि द्वै जगन रचियै बहु सुखकंद।
चरन चारि नव बरन को प्रगटहु *तोमर* छंद ॥२२॥
—तोमर ॥ऽ।ऽ॥ऽ।

उदा०—रघुबंस के अवतंस। सुनि दान-मानस-हंस।
मन माहि जौ अति नेहु। इक बात मो कहिँ देहु।

अथ दशाक्षरभेद—हरिणी (ऽ॥ ऽ॥ ऽ॥ ऽ)

भगन तीनि रचि आदि पुनि अंत देहु गुरु एक।
हरिणी छंद बखानिजै दसधा बर्न बिबेक ॥२३॥

उदा०—श्रीरघुनाथ चले बन कौं। लै सँग सीता लक्ष्मन कौं।
सिद्धि चले हरि हेरि हियैँ। सिद्धिहि सिद्धहि संग लियैँ।

अमृतगति (॥। ।ऽ। ॥ऽ)

जगन रचौ दुइ नगन मैं देहु एक गुरु अंत।
कहि *अमृतगति* छंद यह दस अक्षर गुनवंत ॥२४॥

उदा०—सुमति महारिषि सुनिजै। श्रवन कथा सुनि गुनिजै।
कुमति सदा मन तजियै। तन मन केसव भजियै।

तोमर—(॥। ॥ऽ ॥ऽ।)

नगन आदि पुनि सगन द्वै एक अंत लघु आनि।
दस अक्षर को बर्न कहि *तोमर* छंद बखानि ॥२५॥

उदा०—सह भरथ लक्ष्मन राम। बहु बिधि किये परनाम।
भृगु रिषिहि आयसु दीन। नर अजय हो परबीन।

संयुक्ता—(॥ऽ ।ऽ॥ ऽ। ऽ)

सगन एक रचि जगन द्वै अंत एक गुरु आनि।
दसधा बर्न बखानिजै *संजुक्ता* परमानि ॥२६॥

उदा०—बन नेह गेह सरीर सौं। भजि साध संगम धीर सौं।
जग कौं प्रपंचहि लेखियै। तब आप सो सब देखियै।

---

[२२] मो०—माँगेहि (चंद्रिका २।१३)। [२४] रिषि–मुनि (चंद्रिका २४।१)। श्रवन०—जग महँ सुख्ख न (वही)। [२५] भरथ–भर्थ (चंद्रिका ७।१७)। बहु०—चहुँ कीन आनि प्रनाम। रिषिहि०—नंद आसिष। मर०—रन होहु अजय प्रबीन (वही)।

अथ एकादशाक्षर—अनुकूला (ऽ।। ऽऽ ।।।। ऽऽ)

भगन तगन पुनि नगन दै द्वै गुरु अंतहि देखि।
अनुकूला यह छंद है ग्यारह अक्षर लेखि ॥२७॥

उदा०—श्रीहरिजू को त्रिभुवन मोहै। देखहु सोभा तनतन सोहै।
जा बिन देखे तन मन बाधा। सो यह पा लागत सुनि राधा।

सुपर्णप्रयात—(ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ। ऽऽ)

तगन तीनि गुरु अंत द्वै करि कबित्त अवदात।
ग्यारह अक्षर स्वच्छ पद देहु *सुपर्णप्रयात* ॥२८॥

उदा०—एकै यहै सब्द संसार भाख्यो। त्रैलोक को मंडि ब्रह्मांड नाख्यो।
मार्यो दसग्रीव संग्राम बीत्यो। श्रीराम श्रीराम श्रीराम जीत्यो।

इंद्रवज्रा—(ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽऽ)

आदि तगन द्वै जगन पुनि अंत देहु गुरु दोय।
ग्यारह अक्षर को सुमति *इंद्रबज्र* कहि लोय ॥२९॥

उदा०—राजा सुनौ बात बड़ी बखानौ। साधारनौ आपु कहाऽब ठानौ।
बाधाहि छाड़ौ बड़भाग जाग्यो। आधार जी को हरिपाव लाग्यो।

उपेंद्रवज्रा—(।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽऽ)

जगन तगन पुनि जगन करि द्वै गुरु अंत प्रकास।
उपेंद्रवज्रा छंद करि ग्यारह अक्षर जास ॥३०॥

उदा०—अनंत देवादि न अंत पायो। अनेकधा बेदनि गीत गायो।
निजेच्छया भूतल देहधारी। अधर्मसंहारक धर्मचारी।

अथ द्वादशाक्षर—मोतियदाम (।ऽ। ।ऽ। ।ऽ। ।ऽ।)

तीनि भगन दै आदि लघु अंतइ गुरु लघु लेखि।
छंद सु *मौक्तिकदाम* भनि द्वादसबर्न बिसेखि ॥३१॥

उदा०—गए जब राम जहाँ सुनि मात। कही यह बात सुनौ बन जात।
कछू जनि जी दुख पावहु भाइ। सु देहु असीस मिलौं फिरि आइ।

तोटक—(।।ऽ ।।ऽ।। ऽ।। ऽ)

रचि पद बारह बर्न को 'केसवराय' सुजान।
चारि सगन को चारुमति *तोटक* छंद प्रमान ॥३२॥

उदा०—रघुनाथ अनाथहि राखत हैं। सुनि बेद यहै मुख भाखत हैं।
कहि कौन वही तजि आन ररै। जिनको चरनोदक ईस धरै।

सुंदरी—(ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।।)

चारि भगन को *सुंदरी* छंद छबीलो होय।
रचि पद बारहबर्न को बरनत कबिकुललोय ॥३३॥

उदा०—राज तजै धन धाम तजै सब। नारि तजै सुतसोचु तजै अब।
आपुन यों जग झूठहि निंदह। सत्य न एक तजै हरिचंदह।

मोदक—(।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ)

बरह बर्न बखानिजै प्रतिपद आनँदकंद।
चारि सगन को कीजियत 'केसव' *मोदक* छंद ॥३४॥

उदा०—सब ही जग मैं मद को दुख है। अरु आनँद को सु महासुख है।
यह तौ मत बेदपुरान ररै। कहिजै सु कछू जु बिचार परै।

भुजंगप्रयात—(।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ)

बरनत बारह बरनमय 'केसव' कबि अवदात।
चारि यगन को जानिजै छंद *भुजंगप्रयात* ॥३५॥

उदा०—धरे एक बेनी मिलै मैलसारी। मृनाली मनो पंकसोकाधिकारी।
सदा राम रामै ररै दीनबानी। चहूँ ओर हैं राकसी क्लेसदानी।

तामरस—(।।।। ऽ।। ऽ।। ऽऽ)

आदि चारि लघु मध्य द्वै भगन अंत गुरु दोय।
'केसव' बारहबर्न को छंद *तामरस* होय ॥३६॥

उदा०—तन मन मैं अति लोभ बसाई। गनव न द्रोह बैर दुखदाई।
तपफल केहुँ न पावन पावै। पदुवन कै बलि देहु नपावै।

द्रुतविलंबित—(।।। ऽ।। ऽ।। ऽ।ऽ)

नगन आदि पुनि भगन द्वै रगनहि अंत बिचारु।
त्वरितबिलंबित छंद यह कहि 'केसव' मति चारु ॥३७॥

उदा०—बिपिनमारग राम बिराजहीं। सुखद नागर सुंदरि साजहीं।
बिबिध सिद्ध फलद्रु मनौ फले। सकल साधन तत्पर लै चले।

---

[३३] तजै-तज्यो (चंद्रिका २।२१)। नारि०—नारि तजी सु न सोच तज्यो तब। आपुन०—आपुनपौ जु तज्यो जगबंदह। तजै-तज्यो (वही)। [३५] मिलै—मिली (चंद्रिका १३।५३)। सोका०—तें काढ़ि डारी। रामै—नामै। क्लेस—दुख्ख (वही)। [३७] नागर०—सुंदरि सोदर भ्राजहीं (चंद्रिका ६।१६)। सिद्ध०—श्रीफल सिद्ध मनो फलो। तत्पर०—सिद्धिहि लै चलो (वही)।

कुसुमविचित्रा—(।।।।ऽऽ ।।।।ऽऽ)

चारि कला गुरु दोय पुनि चारि कला गुरु दोय।
रचि पद बारहबर्न को *कुसुमबिचित्रा* होय ॥३८॥

उदा०—तब कबिराजा रघुपति देखे। मनि नर-नारायन सम लेखे।
द्विजबपुधारी हनुवँत आए। बहुबिध दै आसिष मन भाए।

चंद्रब्रह्म—(ऽ।ऽ ।।। ऽ।। ।।ऽ)

रगन नगन पुनि भगन यह अंत सगन कौं आनि।
चंद्रब्रह्म यह छंद है बारह बरन बखानि ॥३९॥

०—स्नान दान जप जाप जु करियो। सोधि सोधि मत जो उर धरियो।
जोग जाग हम जा लगि गहियो। रामचंद्र सबको फल लहियो।

मालती—(।।।। ऽ।। ऽ।। ।ऽ)

चौकल रचि पुनि भगन द्वै लघु गुरु अंत बनाउ।
होय *मालती* छंद यह बारह बर्न प्रभाउ ॥४०॥

उदा०—बिपिन बिलोकिं बिलोकत दरी। बिचर बिभोर बिकास न करी।
बन निरखैं न रहै सुधि खरी। तुमहि न हौं दरसौं इत हरी।

वंशस्वनित—(।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ)

जगन तगन पुनि जगन करि अंत रगन रचि मित्र।
बंसस्वनित सु छंद यह बारह बर्न बिचित्र ॥४१॥

उदा०—अनेकधा पूजन अत्रिजू किये। कृपालु ह्वै श्रीरघुनाथजू हिये।
सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहाँ। पतिव्रता देव महर्षि की जहाँ।

प्रमिताक्षरा—(।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ।।ऽ)

आदि सगन पुनि जगन रचि सगन दोय दै अंत।
छंद होइ *प्रमिताक्षरा* बर्न जु द्वादस संत ॥४२॥

उदा०—हरुवाइ जाइ सिय पाँइ परी। रिषिनारि सूँघि सिरु अंक भरी।
बहु अंगराग सब अंग रयो। अति भाँति भाँति उपदेस दयो।

---

[३८] तब–जब (चंद्रिका १२।५२)। मनि–मन। धारी–कै श्री (वही)। [३९] जप–तप (चंद्रिका ११।२)। मन०–उर माँझ जु (वही)। [४१] किये–(चंद्रिका ११।३)। हिये–धर्यो। देव–देवि (वही)। [४२] अंक०–गोद धरी (११।६)। सब–अंग। अति–अरु (वही)।

स्रग्विणी—(ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ)

रगन चारि को *स्रग्विनी* छंद छबीलो होइ।
'केसवदास' प्रकास बस बरनत कबिजन लोइ ॥४३॥

उदा०—राम आगे चले मध्य सीता चली। बंधु पीछे भए सोभ सोभा भली।
देखि देही सबै कोटिधा कै भनो। जीव जीवेस के बीच माया मनो।

अथ त्रयोदशाक्षर—पंकजवाटिका—(ऽ।।। ।।। ।।ऽ ।।ऽ)

आदि एक गुरु नगन द्वै अंत सगन द्वै देखि।
छंद सु *पंकजबाटिका* तेरह अक्षर लेखि ॥४४॥

उदा०—राम चलत नृप के जुग लोचन। बारिज मिटे हुअ बारिदमोचन।
पाइनि परि रिषि के सजि मौनहिँ। 'केसव' उठि गए भीतर भौनहिँ।

तारक—(।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ऽ)

चारि सगन पुनि एक गुरु *तारक* छंद बनाउ।
सोभन तेरह बरन को 'केसव' ताहि सुनाउ ॥४५॥

उदा०—यह कीरति और नरेसन सोहै। सुनि देव अदेवन के मन मोहै।
हम को बपुरा सुनिजै रिषिराई। सब गाँव छ-सातक की ठकुराई।

कलहंस—(।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ।।ऽ ऽ)

आदि सगन तिहि जगन पुनि सगन दोय गुरु एक।
छंद भलो *कलहंस* यह तेरह बरन बिबेक ॥४६॥

उदा० —तजि राज आज घर तेँ बन जैयै। कहि कौन भाँति परमान न पैयै।
नृपनाथ आदि अपनो मनु कीजै। भजि आप रूप अपनो पदु लीजै।

अथ चतुर्दशाक्षर—हरिलीला—(ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ ।।। ।ऽ। ।)

रगन रगन रचि नगन पुनि जगन अंत लघु आनि।
चौदह अक्षर आदिगुरु *हरिलीला* उर आनि ॥४७॥

उदा०—हा राम हा राम हा जगतनाथ धीर।
लंकाधिनाथेस जानि तुम जो सु बीर।

---

[४३] सोभा–सोभै (चंद्रिका ११।७)। [४४] बारिज०–बारि भरित भए बारिद-रोचन (चंद्रिका २।२७)। [४५] के–को (चंद्रिका ५।२३)। [४७] हा राम०—(वसंततिलका) हा राम हा रमन हा रघुनाथ (चंद्रिका१२।२१)। लंका०—लंकाधिनाथ बस जानहु मोहि। ए०—हा पुत्र लक्ष्मन छुड़ावहु बेगि मोहीँ। मार्तंड-बंसजस की सब लाज तोहीँ (वही)।

ए देखि कोऊ छुड़ाइयत मोहि बीर।
मातंडबंसेस की सब जु तोहि भीर।

बसंततिलका—(ऽ।। ऽ।। ।ऽ। ।ऽ। ऽऽ)

भगन भगन जगनौ जगन द्वै गुरु अंत निहारि।
बसँततिलक यह जानियहु चौदह बर्न बिचारि ॥४८॥

उदा०—श्रीराम लक्ष्मन अगस्ति सनारि देखे।
स्वाहासमेत निजु पावकरूप लेखे।
अष्टांग बिप्र-अभिबंदन जाइ कीन्हो।
सौख्येन आसिष असेष रिषीस दीन्हो।

मनोरमा—(।।ऽ।।ऽ।।ऽ।।ऽ।।)

चारि सगन द्वै अंत लघु चौदह बर्न प्रमान।
मनोरमा यह छंद है 'केसवदास' सुजान ॥४९॥

उदा०—उर में अति कोप सबै गुनघायक। बड़वानल सागर ज्यौं दुखदायक।
अब ताकहँ तू फिरिकै किन दाहहि। कबहूँ अवतारन जौ चित चाहहि।

अथ पंचदशाक्षर—मालती—(।।।।।। ऽऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ)

आदि लघु पुनि तीनि गुरु अंत यगन द्वै मित्त।
होइ *मालती* छंद यह पंद्रह बर्न निमित्त ॥५०॥

उदा०—अति तनु धनुरेखा नेक नाँघी न जाकी।
खल खर सरधारा क्यौं सहै तीक्ष्न ताकी।
बिड़कन घुन घूरे भक्षि क्यौं बाजु जीवै।
सिवसिर ससि श्री कौं राहु कैसे सु छीवै।

सुप्रिय—(।।।।।।।।।।।।।।ऽ)

चौदह लघु गुरु एक अरु *सुप्रिय* छंद प्रकास।
अक्षर प्रतिपद पंचदस आनहु 'केसवदास' ॥५१॥

उदा०—बन महँ बिबिध बिकट दुख सुनिजै।
गिरि गह्वर मग अतिमति गुनिजै।
कहुँ अहि हरि कहुँ निसिचर रहहीँ।
कहुँ दव दहनु दुसह दुख सहहीँ।

---

[४८] देखे-देख्यो (चंद्रिका ११।१०)। निजु-सुभ। लेखे-लेख्यो। अष्टांग०-साष्टांग छिप्र। सौख्येन-सानंद (वही)। [५०] तीक्ष्न-तिक्ष (चंद्रिका १३।६२)। घुन-घन (वही)। [५१] अति०-अगमहि (चंद्रिका ६।२५)। रहहीँ-चरहीँ। सहहीँ-सरहीँ (वही)।

निशिपालिका—(ऽ।। ।ऽ। ।।ऽ ।।। ऽ।ऽ)

भगन जगन रचि सगन पुनि नगन रगन दै अंत।
छंद कहौं *निसिपालिका* पंद्रह बर्न कहंत ॥५२॥

उदा०—राजतनया तबहि बोल सुनि यों कहो। जाउ चलि देवर न जाइ हम पै रहो।
हेममृग होइ नहि रैनिचर जानियै। दीनसुर राम किहिं भाँति सुख मानियै

चामर—(ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ)

प्रतिपद गुरु लहु देहु क्रम पंद्रह बर्न बनाउ।
चामर छंद-कबित्त कहि 'केसवराइ' सुनाउ ॥५३॥

उदा०—देखि देखिकै असोक राजपुत्रिका कही।
मोहि आगि देहु देउ अंगि आगि ह्वै रही।
ठौर पाइ पौनपूत डारि मुंदरी दई।
आसपास देखिकै उठाइ हाथ मैं लई।

अथ षोडशाक्षर—नराच (।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ)

'केसव' चामर छंद के एक आदि लघु देउ।
प्रतिपद षोडस बर्नमय करि *नराच* कबि लेउ ॥५४॥

उदा०—अखर्ब गर्ब पर्बताग्र दुक्ख पुक्ख है चढ़ै।
अभूत कोप अग्नि लोह मोह बात तैं बढ़ै।
असंत काम बामसंग तूल फूल का नचै।
अकालमेघ ज्ञानदृष्टि-बृष्टि होइ तौ बचै।

मनहरण—(ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ)

अंत एक गुरु दै करौ षोडस अक्षर बर्न।
पंच भगन को होत है छंद भलो *मनहर्न* ॥५५॥

उदा०—साधुकथा कहिये जब 'केसवदास' जहाँ।
निग्रह केवल है मन को दिनमान तहाँ।
पावन बास सदा रिषि को सुख कौं बरषै।
को बरनै कवि ताहि बिलोकत ही हरषै।

---

[५२] मानियै–आनियो (चंद्रिका १२।१५)। [५३] कही–कह्यो (चंद्रिका १३।१५)। देउ–तैं जु। मुंदरी–मुद्रिका। मैं–कै (वहीं)।

ब्रह्मरूपक—(ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।)

गुरु लघु क्रमहीँ देहु पद षोडस बर्न निहारि।
छंद *ब्रह्मरूपक* करौ 'केसव' बर्न बिचारि ॥५६॥

उदा०—अन्न देइ सीख देइ राखि लेइ प्रान जात।
राज बाप मोल लै करै जु दीह पोषि गात।
दास होइ पुत्र होइ सिष्य होइ कोइ माइ।
सासना न मानई सु कोटिजन्म नर्क जाइ।

अथ सप्तदशाक्षर—रूपमाला (ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ। ।ऽ। ऽ।। ऽ।)

आदि देहु र स जगन द्वै भगन गुरू लघु अंत।
प्रगट *रूपमाला* करौ सज्जन लोग चहंत ॥५७॥

उदा०—रामचंद्रचरित्र कौं जु सुनै सदा सुख पाइ।
ताहि पुत्र कलत्र संपति देत हैं रघुराइ।
स्नान दान असेष तीरथ पुन्य को फल होइ।
नारि का नर बिप्र क्षत्रिय बैसु सूद्र जु कोइ।

पृथ्वी—(।ऽ। ।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ।ऽऽ ।ऽ)

जगन सगन जगनौ सगन यगन लहू गुरु अंत।
बर्न सप्तदस आदि लहुँ *पृथ्वी* छंद कहंत ॥५८॥

उदा०—अगस्ति रिषिराजजू बचन एक मेरो सुनौ।
प्रसस्त सब भाँति भूतल सुदेस जी मैं गुनौ।
सनीर तरुखंड मंडित समृद्धि सोभा धरैं।
जहाँ हम निवास कौं बिमल पर्नसाला करैं।

अथ अष्टादशाक्षर—चंचरी (ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ। ।ऽ। ऽ।। ऽ।ऽ)

सगन जगन द्वै भगन पुनि रगन आदि अरु अंत।
अष्टादस अक्षरन को *चँचरी* छंद कहंत ॥५९॥

उदा०—भूलिये नहि ग्राम धामहि बास कुंजर देखिकै।
पुत्र मित्र कलत्र सज्जन बंधु लोक बिसेषिकै।
पाइकै गुन जाति जोबन जोर सुंदरता घनी।
रामभक्तिबिहीन दीनहि देह होत न आपनी।

---

[५६] माइ—माइ (चंद्रिका ६।१६) । सु—तौ (वही) । [५७] सुख०—चित लाइ (चंद्रिका ३१।३८) । हैं—श्री । स्नान—जज्ञ । असेष—अनेक । पुन्य—न्हान (वही) । [५८] कौं—की (चंद्रिका ११।१४) ।

अथ एकोनविंशाक्षर--करुणा (ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ)

षट भगन रचि अंत गुरु उनइस अक्षर आनि।
प्रतिपद 'केसवदास' यह *करुना* छंद बखानि ॥६०॥

उदा०—देव अदेव जिते नरदेव सबै गुन मानत हैँ।
सेवत हैँ दिनहीँ तिनसौँ कछु पावत जानत हैँ।
श्रीरघुनाथ बिना परमानँद जी जनि जानहि रे।
बारहि बार कहै तिन 'केसव' काहि न गानहि रे।

मूल--(।।ऽ ।ऽ। ।ऽ। ।।ऽ ऽ।ऽ ।।ऽ ।)

सगन जगन पुनि जगन भनि सगन रगन करि लेखि।
सगन अंत लहु *मूल* भनि उनइस अक्षर देखि ॥६१॥

उदा० करि जज्ञ पूरन जानकीपति दान देत असेष।
बहु हीर चीर सनीर मानिक बर्षि बारिद बेष।
सुभ अंगराग तड़ाग बागनि बाजि रथ बहु भाँति।
अति भौन भूषन भूमि भोजन भूरि बासर राति।

अथ विंशाक्षर--गीतिका (।। ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ। ।ऽ। ऽ।। ऽ।ऽ)

आदि चंचरी छंद के लघु द्वै देहु सुजान।
होइ *गीतिका* छंद यह अक्षर बीस प्रमान ॥६२॥

उदा०—मुख एक है नत लोल लोचन लोक लोकन कौँ धरै।
... ...
तहँ एक मोतिन के बिभूषन एक फूलनि के किये।
जनु देवतागन छीरसागर-छीर कौं छीटनि-छिये।

अथ एक विंशाक्षर—धर्म (ऽ।।।ऽ।।।ऽ।।।ऽ।।।ऽ)

चौकल प्रति गुरु चारि पुनि आदि देहु गुरु और।
इकइस अक्षर को करौ *धर्म* छंद सिरमौर ॥६३॥

उदा०—कीरति अति पावन मति श्रीपति रति तू न गहतु रे।
आवत मग जात जगत दारुन दुख जानु सहतु रे।
काम भरहि दूर करहि भीर धरहि हौँ जु कहतु रे।
भेद भरम कोटि करम भूरि जनम को न दहतु रे।

अथ द्वाविंशाक्षर—मदिरा (ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ)

सात भगन करि अंत गुरु बाइस अक्षर छंद।
'केसव' *मदिरा* छंद यह कुसुमस्वेद मकरंद ॥६४॥

उदा०—बाग तड़ाग तरंगिनि तीर तमाल की छाँह बिलोकि भली।
तौ घटिका इक बैठि रहैं सुखु पाइ बिछाइ सु कास थली।
औ मग को श्रम दूरि करैं सिय को सुभ बाकल अंचल कै।
हैं श्रम तेउ हरैं तिनको कहि 'केसव' चारु हगंचल कै।

अथ त्रयोविंशाक्षर—विजय (भ भ भ भ भ भ भ ग ग)

सात भगन करि दोय गुरु तिनको दीजौ अंत।
तेइस अक्षर को करौ *विजय* छंद बुधिवंत ॥६५॥

उदा०—आसन डासन बासु सुबासु बिलास रँगे अनुराग जिये हैं।
बारिन बाजि गुनी गुन धाम न बाम रहै मन हाथ लिये हैं।
भाँतिन भाँतिन भाजन भोजन भूषन भूरि भए न किये हैं।
रे चित चेत कहा परि पेलहि जानकिनाथहि आनि हिये हैं।

सुधा—(ल भ भ भ भ भ भ भ ग)

मदिरा सिर लघु एक दै *सुधा* छंद मन आनि।
अंत एक लघु देतहीं *बसुधा* छंद बखानि ॥६६॥

उदा०—हरोहर बाइ मनोहर को मनु माँगत है करि आरि घनी।
झुकाउ न 'केसव' कौं कहि देउ दुराउ न अंगन मैं सजनी।
उघारहि घूँघट अंचल डारि उतारिकै कंचुकि तोरि तनी।
न पाइहि तौ फिरि जैहै भटू अरु पाइहि तौ सब बात बनी।

बसुधा—(भ भ भ भ भ भ भ ग ल)

उदा०—जा दिन तैं ब्रजनाथ चले तब तैं जग जानत झूठहि गेहु।
झूठहि केतिक धर्म सने अरु झूठ यहै बर भावत देहु।
'केसव' पापहि क्यौं सरिहै मिलिबे बिन जानिय साँच सनेहु।
बातन के मिस या ब्रज मैं तुम आयहु ऊधव लेन सु लेहु।

---

[६४] बाग-(दुर्मिल) कहुँ बाग (चंद्रिका ६।४४)। तौ···रहैं–घटिका इक बैठत हैं। सु०–तहाँ कुस। औ···श्रम–मग को श्रम श्रीपति। कै–सौं। है·····केसव–श्रम नेऊ हरैं तिनको कहि केसव चंचल। कै–सौं (वही)।

अथ चतुर्विंशाक्षर—माधवी (ल भ भ भ भ भ भ भ ग ल)

बसुधा के सिर एक लघु होइ *माधवी* छंद ।
'केसव' चौबिस बर्न को प्रतिपद आनँदकंद ॥६७॥

उदा०—सुपूरन प्रेम सुभावनि कौन सुनै समुझै न षडानन सेसु ।
प्रबोध बियोग बिसेष असेषनि 'केसव' लै बिसरो उपदेसु ।
धरै सब देस के काम तथापि बिलोकि बिदेहन को गुरु बेसु ।
सुभावहि ऊधव गोपिन पास जु आए सिखावन सीखि चले सु ।

चंद्रकला—(८ सगण = ।।ऽ)

आठ सगन को चरन रचि बर्न चारु चौबीस ।
चंद्रकला 'केसव' करी धरी माल भव सीस ॥६८॥

उदा०—भवसागर को जन सेत उजागर सुंदरता सिगरी बस की ।
तिहु देवन की अति सुंदर सो गति सोध त्रिदोषन के रस की ।
कहि 'केसव' बेदत्रयी मति सी परितापत्रयी तल कौं मसकी ।
सब बेद त्रिकाल त्रिलोक त्रिबेनिहि केसव-त्रिक्रम के जस की ।

अमलकमल—(८ भगण = ऽ।।)

आठ भगन को चरन रचि अक्षरमय चौबीस ।
अमलकमल यह छंद है अक्षय 'केसव' ईस ॥६९॥

उदा०—मारहितैं सुकुमार मनोहर मानिनि कामिनि मानसफंदन ।
सोभन सूध सुधानिधि सीतल सूर सदा सब दूर निकंदन ।
'केसवदास' कलानिधि कोमल केलिकला कुहु की जगबंदन ।
ए सक का हिअ साभ करै रजनीकर कै सजनी नँदनंदन ।

मकरंद—(७ भगण = ऽ।।, १ रगण = ऽ।ऽ)

सात भगन मइ छंद रचि अंत रगन सुखकंद ।
चौबिस अक्षर को सुनौ छंद भलो *मकरंद* ॥७०॥

उदा०—अंक लिये मृगनैननि कौं ससि सी उपमा सु तहाँ अवरेखियै ।
पंकज मैं कमला बिलसै सुखलीन तहाँ जलकेलि बिसेखियै ।
आनँदपूर रसै बरसै सखि ईछन के सम और न लेखियै ।
भास कटाछ अनूप करै सखि तो सम रूपक तोहि मैं देखियै ।

गंगोदक—(८ रगण = ऽ।ऽ)

आठ रगन को छंद रचि चौबिस जानहु [illegible] ।
गंगोदक यह छंद है 'केसव' पातकहर्न ॥७१॥

उदा०—राम राजान के राज आए इहाँ धाम तेरे महाभाग जागे अबै।
देवि मंदोदरी कुंभकर्नादि दै मित्र मंत्री जिते पूछि देखौ सबै।
राखिजै जाति कौं भाँति कौं काँति कौं बंस कौं साधिजै लोक पर्लोक कौं।
आनिकै पाँ परौ देस लै कोस लै आसुहीं ईस सीता चलै ओक कौं।

तन्वी—(भ त न स भ भ न य)

भगन तगन नगनौ सगन भगन भगन फिरि जानि।
नगन यगन चौबिस बरन *तन्वी* छंद बखानि ॥७२॥

उदा०—बोलत कैसें भृगुपति सुनिजै सो कहिजै तन मन बनि आवै।
आदि बड़े हौ बड़प्पन राखियै जा हित कै जन जग सुख पावै।
चंदन ही मैं अति तन घरषैं आगि उठै यह सब गुनि लीजै।
हैहय मारे नृपति सँघारे सो जसु लै किन जुग जुग जीजै।

अथ पंचविंशाक्षर—विजया (ल भ भ भ भ भ भ भ ग ल ल)

देहु माधवी के बरन अंत एक लघु आनि।
'केसव' पच्चिस बर्न को *बिजया* छंद बखानि ॥७३॥

उदा०—चढ़ीं प्रतिमंदिर सोभ चढ़ी तरुनी अवलोकन कौं रघुनंदनु।
मनो गृहदीपति देह धरैं सु किधौं गृहदेवि कै मोहति है मनु।
किधौं कुलदेवि दिपैं कहि 'केसव' कै पुरदेविन को दरस्यो तनु।
जहीं सु तहीं इहि भाँति लसैं दिविदेविन को मद घालति हैं जनु।

मदनमनोहर—(८ सगन ग)।

आठ सगन को एक पद अंत एक गुरु देखि।
मदनमनोहर छंद यह पच्चिस अक्षर लेखि ॥७४॥

उदा०—अँखियान मिली सखियान मिली पति आवत जाने मिली तजि भौने।
सुभ ध्यान बिधान मिली मनहीं मन ज्यों मिल नैक मनोमय सौने।
कहि 'केसव' कैसेहु बेगि मिलौ ननु हैहय हे हरि जो कछु हौने।
तहँ पूरन प्रेमसमाधि मिलैं मिलि जैहै तुम्हैं मिलिहौ फिरि कौने।

माननी—(८ सगन ल)

आठ सगन के अंत लघु लहहु *माननी* छंद।
चारि छंद 'केसव' बरन पंचबीस आनंद ॥७५॥

---

[७१] भाँति०—पाँति कौं बंस कौं गोत कौं (चंद्रिका १६।६)। [७२] कै०—तूँ सब जग जस (चंद्रिका ७।२२)। [७३] चढ़ी—बढ़ी (चंद्रिका २२।८)। कै—बि। कहि—अति। दरस्यो—हुलस्यो (वहीं)।

उदा०—सँग आए हैं एक रिषीसुर के नरदेवकुमार कि देवकुमार।
सरकोस कसैं करिहाँ जु धरैं धनुबानु मनोजहूँ के अवतार।
अति दीरघ लोचन बाल बहिक्रम स्यामल बीर सरीर उदार।
इनहीं महँ एकहि देइ सुता नृप ऐसि जौ क्यौंहु करै करतार।

अथ षड्विंशाक्षर—हार (ल ज ज ज ज ज ज ज ज ल)

आठ जगन को होत पद आदि अंत लघु जानि।
हार छंद 'केसव' बरन छब्बिस अक्षर ठानि ॥७६॥

उदा०—सुनि सोधि सखी भरि लेत बिलोचन काँपत देखत फूले तमालहि।
अति भूले से डोलत बोलत नाहिन बाग गए किधौं तेरेई तालहि।
मुख देख्यो जौ चाहति देखि न आवति ऐसे मैं हौं न दिखाऊँ री लालहि।
कहि आजु कहा दिखसाध लगी जब देख्यो सुहाइ कछू न गोपालहि।

बर्नबृत्ति इहि भाँति करि बुधिबल जिय मैं आनि।
छब्बिस अक्षर तें उपर 'केसव' दंडक जानि ॥७७॥

अनंगशेखर

क्रमहीं लघु गुरु देइ पद, बत्तिस अक्षर जानि।
यह *अनंगशेखर* सदा दंडक छंद बखानि ॥७८॥

उदा०—

तड़ाग हीननीर के सनीर होत 'केसोदास' पुंडरीक-झुंड भौंर-मंडलीन मंडही।
तमालबल्लरी समेत सूखि सूखिकै रहे ति बाग फूलि फूलिकै समूल सूल खंडही।
चितै चकोरनी चकोर मोर मोरनी समेत हंस हंसनी सुकादि सारिका सबै पढ़ैं।
जहाँ जहाँ बिराम लेत रामजू तहाँ तहाँ अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सौं बढ़ैं।

इत्यादि षड्विंशादिद्वात्रिंशांतं प्रथमचरणे गणागणं विलोक्य दंडकेति प्रसिद्धः।
इति श्रीकेशवरायविरचितायां छंदमालायां वर्णवृत्तिः समाप्ता।

---

[७८] जहाँ०—जहीं जहीं (चंद्रिका ६।३६)। तहाँ०—तहीं तहीं (वही)।

अथ छंदनामानि

२

बिघनगन बिनासै बुद्धिदाता सदा है, सुर नर मुनि बंदै दीह दोषीन दाहै।
बदन रदन एकै एक रूपै बतावै, जगतबिदित माया चित्तजीवै दिखावै ॥१॥
सकल भुजगराजा पिंगलौ एक चंदै, दिसि दिसि सुखभर्ता दुख्खकर्ता निकंदै।
सुभर चरन जाके जुग्म नौका बिचारै, बिसद बिबिध मात्रा बर्न कौं पार तारै ॥२॥

(दोहरा)—भाषा सुरतरु की प्रगट साखा तीनि प्रकार।
सुरभाषा भाषा-सरप नरभाषा संसार ॥३॥
सुरभाषा के प्रथम ही बालमीकि बड़भाग।
अहिभाषा के महसु नरभाषा पिंगल नाग ॥४॥
भाषा तीनहु के सुकबि द्वैबिध करत कबित्त।
बर्नबृत्ति है एक औ कलाबृत्ति फिर मित्त ॥५॥
बर्नबृत्ति के सम बरन चारौं चरन प्रकास।
कलाबृत्ति के सम बिषम पद करि 'केसवदास' ॥६॥
कनकतुला जो सहत नहिं तोलत अधतिल अंग।
श्रवनतुला तें जानियो 'केसव' छंदोभंग ॥७॥
अबुध बुधनि में पढ़तहौं निझुकत लक्षनहीन।
भृकुटी अग्र खरग सिर कटतु तथापि अदीन ॥८॥
बरनबृत्ति के बरन लिय बिबिध भाँति के छंद।
कल्पबृक्ष कहि कहत अब सुनियहि आनँदकंद ॥९॥
....
गनागनन के दोषजुत गुन षटपद मति बुद्धि ॥१०॥

अथ गाथा

प्रथम चरन बारह कला दूजें दस अरु आठ।
तीजें बारह पंचदस चौथें पढ़ियत पाठ ॥११॥

यथा—रामचंद्रपदपद्मं वृंदारकवृंदाभिवंदनीयम्।
केशवमतिभूतनयालोचनं चंचरीकायते।

सत्ताइस गुरु तीन लहु लक्ष्मी गाथा जानि।
गुरु टूटै जहँ लहु बढ़ै सप्तबीस परमानि ॥१२॥

१ लक्ष्मी, २ सिद्धि, ३ बुद्धि, ४ लज्जा, ५ विद्या, ६ क्षमा, ७ देही, ८ गौरी, ९ धात्री, १० घूर्णा, ११ छाया, १२ कांति, १३ महामाया, १४ कीर्ति, १५ सिद्धा, १६ मनोरमा, १७ रामा, १८ गाहनी, १९ विश्वा, २० वासिता, २१ शोभा, २२ हरिणी, २३ चित्रा, २४ सारसी, २५ कुररी, २६ सिंही, २७ हंसा ।

तेरह लघु लौं बाँभनी क्षत्रिय लघु इकईस ।
सत्ताइस लघु बैसिका और सूद्रिका तीस ॥१३॥

जा गाहा के प्रथम कल तीजैं जगनहि जानु ।
पाँचैं सप्तैं गुरु रहत ताहि *गुर्वनी* मानु ॥१४॥

अथ बिग्गाहा

'केसव' करियहि प्रथम पदु मात्रा सत्ताईस ।
बिग्गाहा दल दूसरैं कला करहु भरि तीस ॥१५॥

यथा—सुनहु सुहागिनि सुंदरी प्रीतम पाय परो तिहि देखि ।
कंठ उठाइ लगावहि सज्जन सखी जनम सुफल करि लेखि ।

इहिं बिधि सब गाथान के जानहु भेद अपार ।
ग्रंथ बढ़ै तेहि तें न मैं बरनी एकहिं बार ॥१६॥

अथ दोहा

प्रथम पाद तेरह कला दूजैं ग्यारह आनि ।
तीजैं तेरह जानियै चौथैं ग्यारह जानि ॥१७॥

भँवरु भावँरु सरभु स्येन मँडुक मर्कट करम मराल ।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
मनुष मत्तगजराज पयोहर बल बानर 'रु त्रिकलल ।
९ १० ११ १२ १३ १४
मीन कछप करि देखहु सर्दुल अहिबर और बिडाल ।
१५ १६ १७ १८ १९
पुनि बाघहि लेखहु कहि 'केसव' उँदर सर्प अरु ब्याल ॥१८॥
२० २१ २२ २३

........................दोहान भेद बखानियो ।
अब जो गुरु करै लघु बढ़ै सो सो नामहि जानियो ॥१९॥

भ्रमरु होइ लघु चारि को षट लघु भ्रामरु जानि ।
सरभु आठ लघु स्येन दस क्रमहीं नाम बखानि ॥२०॥

लघु जिनमें ऐसो यथाक्रम नाम—मंडूक १२, मर्कट १४, करभ १६, मराल १८, मनुष्य २०, गजराज २२, पयोहर २४, बल २६, बानरु २८, त्रिकलु ३० मीन ३२, कच्छप ३४, सार्दूल ३६, अहिबर ३८, बिडाल ४०, बाघ ४२, ऊँदर ४४, सर्प ४६ ।

बारह लघु को बिप्र कहि क्षत्रिय बाइस जानि।
बत्तिस लघु को बैस है और सूद्र करि मानि ॥२१॥

जा दोहा के प्रथम पद जगन तीसरैं देखि।
जानहु ताहि बिडारिकै मन क्रम बचन बिसेखि ॥२२॥

अथ कबित्त

प्रतिपद 'केसवदास' भनि करि मत्ता चौबीस।
चौपद करहु *कबित्त* जग प्रगट कह्यो अहिईस ॥२३॥

यथा—रामचंद्र संग्राम जुरे रावन जग रावन।
बान चलत परिमान दीन दुख ससि दुखदावन।
कटत बृक्ष उचटत पखान गिरि घटत दीह गन।
उठत अगिन सूखत समुद्र जल होत छीन छन।

अथ चतुष्पदी

सात चतुष्कल को चरन अंत एक गुरु जानि।
ऐसे चारौ चरन *चौपैया* छंद बखानि ॥२४॥

यथा—जिनको जसहंसा जगतप्रसंसा मुनिजनमानसरंता।
लोचनअनुरूपनि स्यामसरूपनि अंजनअंजित संता।
कालत्रयदरसी त्रयगुनपरसी होत बिलंबु न लागै।
तिनको गुन कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै।

अथ घत्ता

सात चतुष्कल आदि दै अंत तीन लघु देखु।
दुहूँ चरन 'केसव' कला जग *घत्ता* अवलेखु ॥२५॥

यथा— मन मति कहँ रोकहु जग अवलोकहु आप रूप जहँ सत्य गुन।
परमानँद पावहि जनम नसावहि राम रूप जहँ होइ तन।

अथ नंद

ग्यारह कला बिराम रचि बहुरि सात पै जानु।
तेरह कला बिराम पुनि छ-पद *नंद* परमानु ॥२६॥

यथा—सरि साधनि के संग, एकहि रंग, काम कामना संगरहि।
होइ सकल संसार, बित्त अपार, राम राम रसिबो करहि।

अथ उल्लाल

पंद्रह कला बिराम करि, तेरह बहुरि निहारि।
पुनि पंद्रह तेरह द्विपद, *उल्लालहिं* सु बिचारि ॥२७॥

---

[२४] त्रयगुन–निर्गुन (चंद्रिका १।२०)। तिनको–तिनके (वही)।

यथा—सुभ छत्र धरैं श्रीरामजू छबि बर्नत 'केसवदास'।
जनु मूरतिवंत सिँगार सिर सुभ कीन्हों सुजस प्रकास।

अथ षट्पद

पहिले चरन कबित्त कहि पुनि उल्लालहि देउ।
'केसवदास' बिचारिज्यो यों षटपद को भेउ॥२८॥

यथा—सिखावान कर कलित जलज अक्षत सिर सोहै।
हरिचरनोदकबूंद कुंददुति अति मन मोहै।
अंग बिभूति बिभूतिसहित गनपति सुखदायक।
बृषबाहन संग्रामसिद्ध 'केसव' जसलायक।
उर चतुर चोर चक्री बसतु संग कुमारह रमापति।
जय जयकारन संकाहरन पारबतीपति सिद्धगति।

चवालीस गुरु कबित के उल्लालहि छब्बीस।
एकत्रह दुहूँ छंद गुरु 'केसव' सत्त गिरीस॥२९॥

सत्तर गुरु गनि *अजय* के बारह लघु उच्चारि।
जो गुरु टूटै लघु बढ़ै सो सो नाम बिचारि॥३०॥

बारह मत्ता *अजय बिजय* चौदह कल जानहु।
सोरह लघु *बरिबंड बीर* अट्ठारह मानहु।
बीस कला *बेताल* होय बाईस बिहंकरु।
... ...।

हरि अट्ठाइस कला करि *ब्रह्म* तीस लघु लेखिजै।
करि इंद्र कला बत्तीस चंदन चौंतिस देखिजै॥३१॥

शुभकर्ण ३६, श्वान ३८, सिंह ४०, शार्दूल ४२, कूर्म ४४, कोकिला ४६, खर ४८, कुंजर ५०, मदन ५२, मत्स्य ५४, तालक ५६, शेष ५८, सारंग ६०, पयोहर ६२, कमल ६४, कंद ६६, वारण ६८, शरभ ७०, धाम ७२, जड़ ७४, जंगम ७६, सुरगुरु ७८, समर ८०, सारस ८२, करभ ८४, मेरु ८६, मंदर ८८, मलय ९०, सम ९२, सिद्ध ९४, बुद्धि ९६, कलाकर ९८, कमलाकर १००, सुखद १०२, धवल १०४, अरुण १०६, हरित १०८, पीत ११०, दरदय ११२, रजत ११४, मोह ११६, गरुड़ ११८, शशि १२०, सूर १२२, नवरंग १२४, गण १२६, रतन १२८, हीर १३०, भ्रमर १३२, सेहर १३४, कुसुमकर १३६, विप्र १३८, क्षत्रिय १४०, वैश्य १४२, शूद्र १४४, गुरु १४६, गणेश १४८, सबद १५०, मुनि १५२।

अथ जाति

बत्तिस लघु लौं बिप्र गनि क्षत्रिय चालिस चारि।
वैश्य अट्ठतालीस लौं सेषन सूद्र बिचारि॥३२॥

दोष महा—मत्त अधिक बावरो मत्त घटि पंगु गनिज्जै।
बधिर ति सबद्‌बिरुद्ध अंध अति अज्ञ मनिज्जै।
अलंकार बिनु नगन अर्थ बिनु मृतक कहावै।
बालक गनि पुनिरुक्ति ब्यर्थ क्रमहीनहि गावै।
अतिमित्त अमित्त जु पद अपर अर्थबिरोध न आनियौ।
दोषसहित रसरहित सब छप्पय ये न बखानियौ ॥३३॥

अथ पद्धटिका

प्रथम चतुष्कल तीन करि एक जगन दै अंत।
इहि बिधि *पद्धटिका* करहु 'केसव' कबि बुधिवंत ॥३४॥

यथा—हरिबदन सोभसरसी सुरंग। जनु कमल नयन नासा तरंग।
जनु भृकुटि भृंग सौरभ प्रसंस। सुभ श्रवननि मुक्ताफल सु हंस।
अतिअमल कमलिनीदल कपोल। तिनपर श्रमजल सीकर अमोल।
सब ब्रजजनमन मति लीन मीन। यौं केसवरायहिँ भजि प्रबीन।

अथ अरिल्ल

अंत भगन भनि पाय पुनि बारह मत्त बखान।
चौसठ मत्ता पाय चहूँ यौं *अरिल्ल* मन मान ॥३४॥

यथा—देखि बाग अनुराग उपज्जिय। बोलत कोकिल कल धुनि सज्जिय।
राजति रति की सखिय सुबेषनि। कहत मनहु मनमथसंदेसनि।

अथ पादाकुलिक

बारह मत्ता प्रथम चहुँ दोइ देउ गुरु अंत।
सोरह मत्ता चरन प्रति *पादाकुलिक* कहंत ॥३५॥

यथा—बहुबनवारी सोभित भारी। तपमय लेखी ग्रहयिति देखी।
सुभ सर सोभैं मुनिमन लोभैं। सरसिज फूले अलि रसभूले।

अथ राजसैन की नवपदी

तीजैं पाँचैं प्रथम पद पंद्रह मत्त प्रभाउ।
चौथैं ग्यारह दूसरैं बारह कला बनाउ ॥३६॥
आगैं दोहा देखि इक नवपद ताकैं जान।
राजसैन की एक सौ सोरह मात्र प्रमान ॥३७॥

यथा—१ इमि अमल कमल फूले सरनि,
२ सुदिसि बिदिसिहि उपबंग।
३ छबि देखि देखि सखि फूलियो,

---

[३४] कोकिल०—कल ध्वनि कोकिल (चंद्रिका ३।३०)।

४ भँवर मनोहर संग।
५ हम भौंरनि ज्यों किमि भूलियो,
६ साधि केलि कुल राधिके,
७ सौतिन के उर दाह।
८ पाए पूरब पुन्य तें,
९ सुखदायक हरि नाह।

अथ पद्मावती

मत्त अठारह बिरम करि पुनि चौदह परमान।
प्रतिपद केवल बत्तिसै *पदमावती* बखान ॥३८॥

यथा—रघुनंदन आए सुनि सब धाए पुरजन जैसे कहु तैसे।
दरसनरस भूले तन मन फूले बहु बरने जाहिँ न वैसे।
पिय के सँग नारी सब सुखकारी तिन यों रामहि दृग जोरी।
जहँ तहँ चहुँ ओरनि मिली चकोरनि ज्यों चाहत चंद चकोरी।

अथ सोरठा

उलटो दोहा पढ़तहीं तहीं *सोरठा* होइ।
'केसवदास' प्रकासहीं समुझत हैं सब कोइ ॥३९॥

यथा—जग जसवंत बिसाल, राजा दसरथ की पुरी।
चंद्र सहित सुभ काल, भालथली जनु ईस की।

अथ कुंडलिया

कीजै दोहा प्रथम पद पुनि अघ कबित बखान।
अंत सोरठा सोहिये *कुंडलिया* परमान।
कुंडलिया परमान मगन चौथें फिरि पढ़ियै।
ग्यारह मत्ता अंत तहाँ तैसी बिधि बढ़ियै।
हरिगुन गनहु अनंत संत पदवी पदु दीजै।
'केसवदास' प्रकास आदिपद अंतहि कीजै ॥४०॥

यथा—देही अबिनासी सदा देह बिनास बिचारु।
... ... घटत बढ़त नहि बारु।
घटत बढ़त नहि बारु चारुमति बूझि देखि अब।
बेद पुरान अनंत साधु भगवंत सिद्धि सब।

---

[३८] वैसे–जैसे (चंद्रिका २२।११)। पिय–पति (वही०)। [३९] सुभ–सब (चंद्रिका १।४६)।

बेद पुरान अनंत कहत आपुनपौ नेही।
यौं छाड़त जग संत देह ज्यौं छाड़त देही।

अथ चूड़ामणि

दोहा के दुहुँ पदन दै पंच पंच कल देख।
सब *चूड़ामनि* छंद के मत्त अठावन लेख ॥४१॥

यथा—राधा बाधा मीन के बेधहु जिनि तू रूप तपोधनु।
जगजीवन की जीविका ब्रजजन लेखन पृष्ठ देवगनु।

अथ हाकलिका (सोरठा)

करै सुकबि नृप जानि, मगन तीनि दै अंत गुरु।
हाकलिका परमानि, प्रतिपद चौदह मत्त सब ॥४२॥

यथा—आवत श्री ब्रजराज बने। केवल तेरेहि रूप सने।
तूँ तिनसौं हँसि बात कहै। सौतिन को गन दुक्ख दहै।

अथ मधुभार (दोहा)

चारि मत्त के दोइ गन छंद गनौ *मधुभार*।
चौहूँ पद बत्तीस कल छंदहु कोटि बिचार ॥४३॥

यथा—ऊँचे अवास। प्रतिधुज प्रकास। सोभा बिलास। सोभै अकास।

अथ आभीर

ग्यारह मत्ता को चरन जगनहि अंत निहारि।
कला जानि *आभीर* की चहुँ पद चारहिँ चारि ॥४४॥

यथा—सुंदर दूलह राम। देह धरैं जनु काम।
धनुष चढ़ावहिँ ईस। सब मिलि देहिँ असीस।

अथ हरिगीत

मध्य कला करि बीस रुचि देहु रगन इक अंत।
द्वै लघु आदि बनाइ *हरिगीत*हिँ गावत संत ॥४५॥

यथा—कुस मुद्रिका समिधै श्रुवा कुस के कमंडल कौं लिये।
कटिमूल सुबरन तरकसी भृगुलता सी समुझै हिये।
धनुबान तिच्छ कुठार 'केसव' मेखला मृगचर्म स्यौं।
रघुबीर को यह देखियै रसबीर सात्विक धर्म स्यौं।

---

[४५] समुझै–दरसै (चंद्रिका ७।१५)।

अथ त्रिभंगी

बिरमहु दस पर आठ पर बसु पर पुनि रस रेख।
करहु *त्रिभंगी* छंद कहँ जगनहीन इहि बेष ॥४६॥

यथा—बाजे बहु बाजत तारिन साजत सुनि सुर लाजत दुख भारी।
नाचत नव नारी सुमनसिंगारी गति मनहारी सुखकारी।
बीनानि बजावैं गीतनि गावैं मुनिन रिझावैं मन भीजै।
भूषन पट दीजै सब रस भीजै देखत जीजै हँसि लीजै।

अथ हीर

एक गुरुहि तर चारि लघु तीनि ठौर मति धीर।
अंत रगन तेईस कल होइ एक पद *हीर* ॥४७॥

यथा—सुंदरि सब सुंदर प्रति मंदिर पर यौं बनी।
मोहन गिरि सृंगनि पर मानहु मनमोहनी।
भूषन नग भूषित तन भूरि चितनि चोरहीँ।
देखत तनु रेखति जनु बान-नयन-कोरहीँ।

अथ मदनमनोहर

मदनमनोहर छंद की कला एक सौ साठ।
प्रतिपद अक्षर तीस को तब पढ़ियत है पाठ ॥४८॥

यथा—यह मदनमनोहर आवत ता घर उठि आगैं कै लै सजनी सुखदै रजनी।
सुनि राधाकरनी हरि अभिमानी जानी समान सब लायक अरु बहुनायक।
सुख साधन साधहि मौन समाधहि पतिहिं अराधहि रामथली सब भाँति भली
पिय के सँग बसिकै रतिरस रसिकै गोपसुता गुनग्रामयुता··· ··· ··· ··· ।

अथ मरहठा

दस पर बिरमहु आठ पुनि ग्यारह कला बखान।
गुरु लहु दीजै अंत यह *मरहट्टा* परमान ॥४९॥

यथा—पुरजन सुख पावत रघुपति आवत करत तिदौरा दौरि।
आरती उतारैं सर्बसु वारैं अपनी अपनी पौरि।
पढ़ि मंत्र असेषनि करि अभिषेकनि पै आसिष सबिसेष।
कुंकुम कर्पूरनि मृगमय चूरनि बरषत वर्षा बेष।

इति श्रीसमस्तपंडितमंडलीमंडितकेशवदासविरचिता छंदमाला समाप्ता।

---

[४७] पर—पुर (चंद्रिका ८।८)। तनु—जनु। जनु—तनु (वही)। [४९] पुरजन०—आनंद प्रकासी सब पुरबासी (चंद्रिका ८।१६)।

शिखनख

गीर्वाणवाणीषु विशेषबुद्धिस्तथापि भाषारसलोलुपोऽहम्।
यथा सुराणाममृतेषु सत्सु स्वर्गाङ्गनानामधरासवे रुचिः ॥

अथ केश-वर्णन —(कवित्त)

जोबन-सरोवर के कोमल सिवारमूल मखतूल कामतंतु-तूल के से तार हैं।
पंचसर-सिंधुर के स्याम चौंर किधौं भौंर किधौं सिर सहज सिंगाररस सार हैं।
माथे मार-मरकतमनि के मयूख किधौं किधौं घेरे चंद कौं तिमिर-परिवार हैं।
लामे लामे जामे जोतिलता के बितान किधौं किधौं स्यामबरन छबीले छूटे बार हैं ॥१॥

अथ माँग-वर्णन

किधौं तरुनी की तरुनाई ही के तोलिबो कौं अति ही अनूपरूप तुला की सी डाँडी है।
सरिता सुधा की मुखसुधाकर-मंडल तें ऊरध कौं उठी मिली धाराधर चाँडी है।
ऊवत अकेली पाइ कचतमतोम किधौं दिनकरकिरनि नवीन बाँधि छाँडी है।
सीस पर सखी की सँवारी माँग सोभियत किधौं दुहूँ पाटिन की मेड़रेख माँडी है ॥२

अथ पाटी-वर्णन

चंद के उपर-भाग किधौं उठी घनघटा किधौं स्यामघन-मन घेरिबे की घाटी है।
लीलामृग-नैन तिनपर बाँधी सोधि मैन मरकतमनि के मयूखनि की टाटी है।
तकिया सौं ठिकि बैठी पीठि की चपेट परैं किधौं बेनी पन्नग की फन परिपाटी है।
औंछिऔंछि करतल पौंछिपौंछि घोटिघोटि पाटी किधौं कामबिद्या पढ़िबे की पाटी है ३

अथ वेणी-वर्णन

सीस तें सरस ह्वैकै पीठ की पनारी छ्वैकै किधौं धँसी धार रस सिंगार रसाल की।
निसापति-अंक तें किधौं निसा रिसाइ चली छाँह कै छबीली मुखनलिन के नाल की।

---

[१] तंतु-तन (सुधा०)। मखतूल—फूलसूल (बाल०)। मार—मनि (वही)। मनि के—मन के (वही)। घेरे—धरे (सुधा०)। किधौं स्याम०—लीले लेत मन कौं (बाल०)। [२] सरिता—तारिनि (अभय०)। [३] तिन—जिन (बाल०)। ठिकि—तकि (वही)। चपेट०—चपेट पर (वही)। पन्नग—फनिग (वही)। परि०—पर फाटी (वही)। घोटि०—घोटी पाटी (वही)।

तम की तरंगिनी कि चढ़ी तरुनी के तन किधौं अवलंबी बेलि असनु-तमाल की।
काम के बिलासनि की बिजैमाला किधौं किधौं नागरूप काछे आछी बेनी सोहै बाल की ४

अथ भाल-वर्णन

बार अंधकार सम सीसफूल तारागन पाटी-नभ नीचे अर्धचंद को सो घाटु है।
बंदन को बिंदु अरुनोदय को प्राचीभागु तिलक तखतभाग को सुहाग-पाटु है।
रूप के रतन जड़्यो हाटक के पाट पर घूँघट मैं प्रगट अखिल अंगराटु है।
केलि के समय प्रिय प्रतिबिंब को बैठकु 'केसोदास' भामिनी को सोभित ललाटु है ॥५॥

अथ भृकुटी-वर्णन

किधौं नैन-दीपकनि ऊपर काजर-लीक किधौं महराब मुखसुधाकर-धाम की।
किधौं जुग कुंभरेख लिखी है आँखिन पर किधौं दलदुति नासाबंस अभिराम की।
किधौं पाटी भौंरन की झाईं झिलमिलै स्याम किधौं भयभूमि बंक भाइनि सुभाम की।
रोष ही चढ़ति उतरति नेक ही के भाइ भामिनी की भृकुटी किधौं कमान काम की॥६

अथ नेत्र-वर्णन

बंधु-बिधु-कोरा मैं चकोर को सो जोरा बैठ्यो किधौं मैन मृगबाल हित कै बढ़ाए हैं।
किधौं मीनकेत के जुगल मीन जंग जुरे किधौं खंजरीट एक पिंजर पढ़ाए हैं।
मिलत जिवाइबे कौं बिछुरत मारिबे कौं बान कै पियूष बिष बोरिकै कढ़ाए हैं।
किधौं बिधु पूरन मयंकमुख पूजा करी अलिन सहित किधौं नलिन न्हढ़ाए हैं ॥७॥

अथ तारे-वर्णन

पलक-संपुट मधि सालिग्राम-सिला एक कमलदलनि पर भौंरनि के बारे हैं।
किधौं मरकतमनि मुकतनि पर खँचे किधौं रतिनायक के सायक बिसारे हैं।
मृगमद-बिंद के लसत प्रतिबिंब किधौं दीपक-दृगनि पर काजर के पारे हैं।
पियमन तारिबे कौं अवतारे कारे भारे बरुनी-किंवारि माँझ तरुनी के तारे हैं ॥८॥

---

[४] छूकै-पूरि (बाल०)। चढ़ी-चटी (वही)। आछी०-पाछै आली बेनी बाल की (अभय०)। [५] भागु-भामु (बाल०)। जड़्यो-जटे (अभय)। पिय०-प्रतिबिंब को मुकुर अति (बाल०)। 'केसोदास'०-सुंदर सुहागिन को लसत (अभय०)। [६] दीपकनि०-दीप काली काजर की लीक किधौं (बाल०)। जुग-गज (अभय०)। भौंरन-डोरन (बाल०); औरनि (अभय०)। भय०-भूमि बंक भाइ सुंदरी (बाल०)। [७] मैन०-मैन साथ मृगबाल द्वै (अभय०(; मृग मीनबाल हित कै (सुधा०)। मीनकेत-कामराज (वही)। किधौं खंजरीट०-खंजरीट राखि मानौ पींजर (वही)। बान०-बानिक (बाल०, सुधा०)। बोरि-घोरि (बाल०)। कढ़ाए-गढ़ाए (वही)। सहित-समेत (अभय०)। किधौं-नैन (अभय०); मानौ (सुधा०)। [८] पलक०-फटिक के संपुट मैं (सुधा०)। मधि-सोई (अभय०)। सम-सोई (सुधा०)। भौंरनि०-

अथ श्रवण-वर्णन

किधौँ उर आइबे कौँ पिय के सुभग मग किधौँ साखीभूत दूत गुनगीत नाम के।
साजन की कीरति के सहज भाजन किधौँ ताटंक झाँपे केलिकिंसुक कै काम के।
किधौँ केलिकलह निमित्त बिबि पीढ़े मित्त सुखदै सुनैया चित्तचरित ललाम के।
किधौँ रसबातनि कौँ रसायन राखे भरि सोने की सुकति किधौँ श्रवन सुबाम के॥६

अथ नासा-वर्णन

लोचन-सरोजनि के नालटूक एक बेह बिरचे उभय बेह सौँ सँवारि सूल की।
भौँह के जराय जरी नावक सी नीकी लागै मार-राजकुमार के तूनीर के तूल की।
बाम के दछिन बाम अंगन की मधिबेला मुख को मंडन मीन लाजबेली मूल की।
नासिका सुबास की प्रकासिका प्रकासमान डारौँ वारि तापर तिरष तिलफूल की॥१०

अथ कपोल-वर्णन

ढारि के सुढारि लीने मेदुर बँधूकफूल किधौँ अति नवरस माधुरी के बाढ़े हैँ।
किधौँ दरदले मुख कनककमल-दल कुंकुमरंजित लाल गोरताई गाढ़े हैँ।
किधौँ दोऊ कंदर्प के दर्पनमंडल माँजे देखियत तिन माँझ प्रतिबिंब ठाढ़े हैँ।
किधौँ कमनीय गोल कामिनी-कपोलतल किधौँ कलधौत के तबक ताइ काढ़े हैँ॥११

अथ अधर-वर्णन

प्रीति की अमरबेलि ताके किसलय किधौँ किधौँ हेत पुरवत सुरनि के साके हैँ।
दाभ ही के बीरे हैँ कि बिद्रुम उकीरे हैँ कि किधौँ बरबंधु बर बंधुकप्रभा के हैँ।
लाल लाल ओप सब अंगनि ऊपर लसै दंत दाख्यौं-बीजन के रूप जिहिँ ढाके हैँ।
सौति के सुरत-सुखभूतनि भुलाइबे कौँ अधर अरुन किधौँ बिंब रसपाके हैँ॥१२॥

अथ दंत-वर्णन

बिद्रुम के संपुट मैँ किधौँ मोतीलर किधौँ कंजकोस बीच बीज दाख्यौं से लसत हैँ।
बीजुरी सी दमकति किधौँ चूनी चमकति जोति के जराउ मधि हीरा से हसत हैँ।

भौँरै से निहारे (अभय०, सुधा०)। सुकतिन०—मुक्ति सुकतिन पर (अभय०)। मुकुत सुकुत पर (सुधा०)। के—ने (वही)। दीपक—दीपत (वही)। पारे-बारे (वही)। कारे—तारे—(वही)। किँवारि—कीबरी (अभय०)। माँझ—मानो (सुधा०)। [६] दूत—पूत (अभय०)। के०—सहज सुभाजन (बाल०)। चरित—तरुन (वही)। किधौँ रस०—रहस-बातनि के (अभय०)। [११] बँधूक—मधूक (अभय०)। अति०—अमित सुरस (बाल०)। कंदर्प—मदन (वही)। तल—लोल (वही)। [१२] किधौँ हेत—दयित के (अभय०)। बीरे—चीरे (बाल०)। हैँ कि—किधौँ (बाल०)। ओप—आप (बाल०)। भूतनि०—भूलत चाखत रस (अभय०)। अरुन—सधर (वही)।

भोर-कुंदकोरक कि तारिका-किसोरक कि तारापति-बिंब में बिलास बिलसत हैं।
सुदती के दंत किधौं किधौं बर मेरे जान बत्तिस बदन मांझ अक्षत बसत हैं ॥१३॥

अथ चिबुक-वर्णन

किधौं यह प्रभा के प्रबाह की भाँवरी परी उपमा सुरंग किधौं नारँग अनूप की।
कंदर्प के दर्पन अमोल की कि मूल गाँठि किधौं सीवाँ सोभित मनोज-जयजूप की।
अध अरु ऊरध की सोभा की अवधि किधौं बिधि बानीमुख मधि बेदी सोहै रूप की
किधौं चंदबदनी को चिबुक बिराजमान किधौं चारु चावरी बदन-चंदभूप की ॥१४॥

अथ मुख-वर्णन

जीत्यो न जुवति-मुख मंद न सूरजतेज अमरसमूह याको करत न पानु है।
चारहू दिसा तें उए राहु न रोकत राह कलँकरहित सुद्ध सुख को निधानु है।
छ-दस कला को कुहू कौमुदीबिलास लसै पून्यौ सो पूरन निसि दिवस समानु है।
चारु चंदबदनी को बदन बिचारु किधौं बैठ्यो हेमखंभ पर हिमकरु आनु है ॥१५॥

अथ ग्रीवा-वर्णन

पंचबान किंनर को किधौं बर बीनदंड सुललित सातौ सुर ताको अंतरालु है।
किधौं पियभुजबेलि-अवलंबु किधौं कंबु अंबुनिधि नातें याकौं मिल्यो मुत्तिजालु है।
लाजत कपोत देखें राजत त्रिबलिरेखैं मारमल्ल खंतुखाँडु रंग को रसालु है।
कुंदन को भाथो सो कुँवरि राधिका को कंठ किधौं साँचे ढार्‍यो मुखपंकज को नालु है

अथ भुजमूल-वर्णन

कंचन के कलस कि जोबन-भवन तन किधौं एक सूल कूल हारावलि-गंग के।
मानगढ़-गुरजैं बिराजमान दोऊ किधौं चवगान-गाँस किधौं भूपति अनंग के।
सबै बर अंगनि के मंडलीक मेरे जान किधौं सेल-सामुहे सुरत-रसरंग के।
जोबन सुढार भार भामिनी के भुजमूल बाढ़े हैं कुसुमसर साहिब के संग के॥१७॥

---

[१३] के संपुट०–दुबीच किधौं मोती की दुबर लर (अभय०)। कंब०–किधौं कंबकोस बीज (वही)। से–के (वही)। बीजुरी०–किधौं मन्यै (वही)। सुदती–सुंदरी (बाल०)। अक्षत–लछन (अभय०)। [१४] नारँग–इंगति (बाल०)। कंदर्प०–मदन के मुकुरक आगोल की कि मूल (वही)। सीवाँ–गाँठि (वही)। बिधि०–किधौं बिधि बानी मुख मधि बेदी रूप की (अभय०)। सुद्ध–सब (बाल०)। खंभ–बल्ली (अभय०)। [१६] ताको–याको (अभय०)। किधौं पिय०–अंबुनिधि नाते चंद्रमा सौं मिल्यो आनि पाँति पाँति ग्रीवा मधि बन्यो मोतीमालु है (बाल०)। भाथो–थाँभ (वही)। कुँवरि–कुँवर कामकामिनी को (अभय०)। किधौं०–कंठ किधौं किधौं मुख (वही)। [१७] गाँस–गोइ (बाल०)। जोबन–सोबन (अभय०)।

अथ भुज-वर्णन

इकसरे चंपे के चौसर किधौं एक खंभ बाँधे नवकामरस-ऊक से हैं नेम के।
किधौं बिपरीत नाल उए करकंजन तें किधौं आदिकोरक सुरत-बेलि खेम के।
केलि-अवसान उपधान होत सेज पर सहज बिराजत मृनाल किधौं हेम के।
चलत हलत पलपल पुलकत अलि किधौं पियकंठ के सुदृढ़ पास प्रेम के ॥१८॥

अथ अंगुली-वर्णन

अंगुल सदल दल बसन बरन तल मिलित मयूख नखमनि को प्रकासु है।
लेखनी बिरंचि रची निकाई की लिखिबे कौं देखियै सुरेखा सी सोभा को सुबासु है।
मानिनी-आनन पर किरन-मयंक ढरि नीचेई रहत जंघ-कदली के पासु है।
किधौं कर जमल कि काम के कमल दोऊ किधौं ये सहज कामदेव के खवासु है ॥१९॥

अथ कुच-वर्णन

किधौं मत्त-मनोभव-इभ-कुंभ देखियत अंचल ते ऊपजे सुभाव ही के ढाल के।
किधौं चक्रवाक जुग किधौं एकताल गिरि किधौं पकबेलफल किधौं फल ताल के।
द्वै स्वयंभु संभु किधौं रहे अंग अंग मिलि मंगल-कलस किधौं काम-नरपाल के।
रोमावली एकनाल कमलकोरक जुग किधौं उच्च ओरनि कठोर कुच बाल के ॥२०॥

अथ कुचाग्र-वर्णन

तरनि के प्रतिबिंब किधौं देखियत किधौं कमलकलीन पर भँवर सुसीले हैं।
पीय-परिरंभन के प्रथम मिलन किधौं हेमकलसनि पर खँचे मनि नीले हैं।
किधौं रतिपति स्याम उभै संभुसीस पर किधौं पति-पानिन के परस सलीले हैं।
किधौं काम जीति जग उलटि नगारे पूजे अतसी-पुहुप किधौं चूचक छबीले हैं ॥२१॥

अथ कुचांत-वर्णन

मोती-जोन्ह-जोति मिली एक होत मंडल सो भूषन-प्रभा सुभासि कंठ के निकट की।
बंकट अटक किधौं मन के निवास कौं कि बिरचि सँवारी रंगभूमि काम-नट की।

---

[१८] चंपे०—सौं सुरस किधौं खंभ बाँधे (बाल०)। बाँधे०—नवरस कामरस (वही)। ऊक०-ऊक के (अभय०)। कोरक—कारन (वही)। बेल-खेल (वही)। सहज०—चलत हलत किधौं दोलादंड (वही)। चलत०—बेलि यौं बलित सु ललित भुज भामिनी के (वही)। [१९] दल-अरु (बाल०)। लिखी—ताकि (वही)। [२०] अंचल—अचल (अभय०)। ऊपजे०—उपजत सुभाउ ही ढाल (वही)। पक०—प्रीति-बेलि फली (बाल०)। फल—पल (अभय०)। अंग०—अैन अंग (बाल०)। ओरनि०—डोरनि कटोरे (वही)। [२१] भँवर०-भौंरे सु लीले (बाल०)। खँचे—धरे (अभय०)। रतिपति—रतिपिय (वही)। पानिन०—पान के सुपरसन लीले (बाल०)।

यहै जानि कोमल सुकंचुकी लपेटिजति पंचबान लगे प्रियग्रीवा रहे लटकी।
ऊँची नीची छाती कि उरोजन के आसपास सोने की सी सीमा कि सुमेरुगिरितट की

अथ रोमराजि-वर्णन

किधौं अलिमाल उड़ी नाभि नीके नीरज तैं किधौं चित्ररेख एक रेख की सिंगार की
गोरे थोरे तन किधौं बेनी की परति झाईं किधौं सुललित सिरी मत्तगज-मार की।
किधौं नीबी मरकतमनि की मयूख मिली कटि के सहाइ कौं किधौं सलाका सार की।
कुच चक्रवाकनि के नीचे रोमावली किधौं गिरि-पारि मानौ मंजु मंजरी सिवार की ॥२३

अथ उदर-वर्णन

पान ऐसो पेखियत जलजात देखियत बास ही अघान महँ साँस ही डगतु है।
चंपे के कोमल दल एक ही सों दबि रहे काम की यों छीन तनु त्रिबली बगतु है।
तिनु अनुधासु काम किधौं तपसिद्धि स्याम हेमकंजकूल सूल कहतु जगतु है।
कबिबर बरनत उदर परमलघु है कि नाहीं मेरे जान भ्रमु सो लगतु है ॥२४॥

अथ नाभि-वर्णन

किधौं कूप किधौं रूपनदी माँझ भौंर उठ्यो कै अमी अनंग को गभीर नद भर्यो है।
आदिबेदपाठक बिरंचि किधौं रचि पचि केलिकृत-काजैं ओड़ो कुंडु खोदि धर्यो है।
किधौं भयभीत भवनैननि अदृष्ट ठौर मानि कामदेव आनि निम्नधाम कर्यो है।
बहुत बिचारत हौं बरन्यो न जात तऊ बूड़ि गयो चित्त नाभिचक्र माँझ पर्यो है ॥२५॥

अथ त्रिबली-वर्णन

किधौं नवजोबन-तरंगिनि-तरंग उठै समर सँवारे किधौं सोपान बिसेष है।
किधौं करतार कर अंगुली की लीक लघु, उच्च कुच-गढ़ तर किधौं खाईं भेष है।
किधौं कामरथ-नेमि, उदित उदर माँझ देखियत कोऊ अरु कोऊ कौं अदेख है।
तरुनी तरुन तनु तुल्य कौं न त्रिभुवन त्रिबली न होइ तीन्यौ निकाई की रेख है ॥२६

---

[२२] मोती०-पोति मोतिजोनि (अभय०)। सुभासि-सभा कि (वही)। बंकट०-टाँक टकटक (बाल०)। यहै०-यहै जिय जानिकै मिले (वही)। [२३] नीके-नव (अभय०)। सिंगार-मगार (वही)। मत्त०-मन गजराज (बाल०)। सलाका-सरागैं (अभय०)। मंजु-मख (वही)। [२४] पान-पात (बाल०)। [२५] कूप०-बरकूप (बाल०)। उठ्यो-घोर (वही)। अमी-आनि (वही)। नैननि-नैनहू (अभय)। मानि०-मानौ कामदेव जू ने भुवि (बाल०)। बहुत०-भाँति भाँति बिचारत बरन्यो बरन्यो न जात (अभय०)।

अथ श्रोणी-वर्णन

अंगनि मैं महागुरु जोबन-गरब-गाँठि कुच गिरि रहे किधौं हेतु मंद चाल की।
कामरथ चक्र की आकृति यामैं पाइयत केलि कौं बैठकि पिय रसिक रसाल की।
बिपरीतिमंडित जघन-खंभ नीवँ किधौं लाह की गिरद गादी मैन महिपाल की।
अंमृत सौं सानी किधौं सोने की सरस पौंडि सोभियत सुंदर सुबर्न श्रोनी बाल की॥२७

अथ चरण-नख-वर्णन

कंज के दलनि पर हिमकर-बिंदु किधौं किधौं अरबिंद इंदु कामतेज भाम के।
किधौं गति रानी के तखत लसैं बैठकैं ये किधौं दीपमाल सोभियत गतिधाम के।
किधौं रतिराज पंच पंच परिपंच जोरि सेवत सुभाइ यान कमला ललाम के।
किधौं कामसायक के जोति वंत मानियत फल किधौं मेरे जान सुनख सुबाम के॥२८

इति श्रीकेशवपंडितविरचितशिखनखवर्णनं समाप्तम्।

---

[२७] रहे०—हेतु कोऊ (अभय०)। चक्र०—चक्रिका अतीत (बाल०)। सुबर्न—सोकन (अभय०)। [२८] 'बाल०' मैं नहीं है। 'अभय' मैं इसके अनंतर सारी, समस्त भूषण और अंगवास वर्णन के वे ही छंद हैं जो 'कविप्रिया' के चौदहवें प्रभाव मैं क्रमशः ८५, ८६, ८४ हैं। इसके अनंतर उसी प्रभाव का ६३ छंद है। 'बाल०' के अंत मैं 'कविप्रिया' के उक्त प्रभाव का छंद ६४ है।